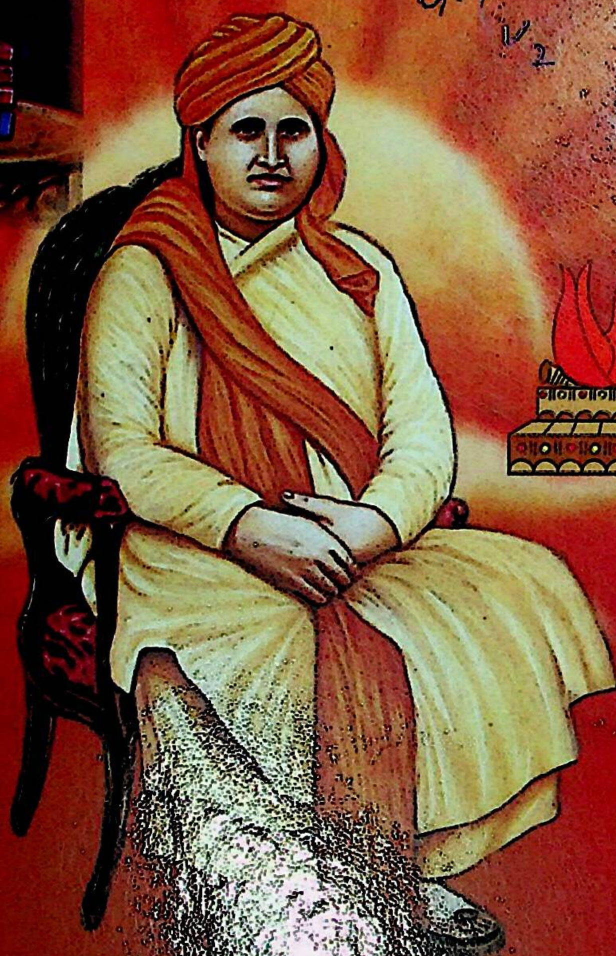
"ब्रह्मवेद है अथर्ववेद"

"जादू-टोने का वेद नहीं"



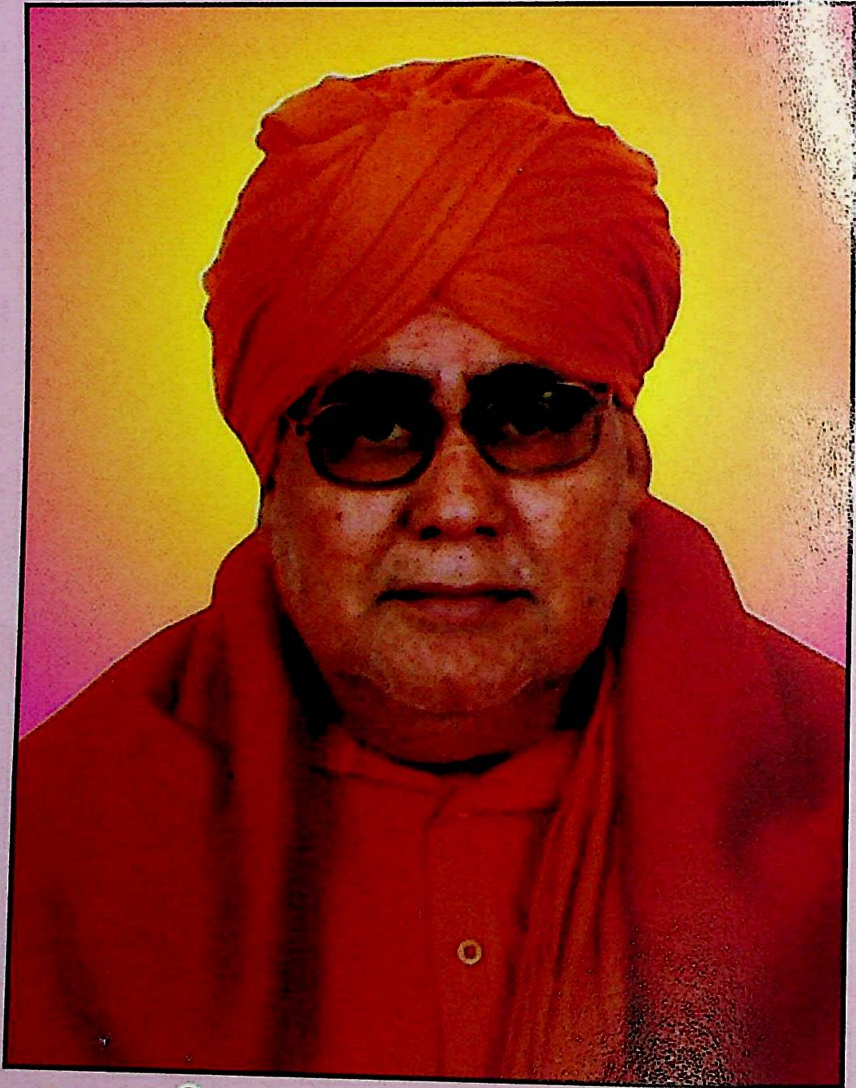
अथर्व वेद - म[illegible]क

महर्षि दयानंद सरस्वती

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

॥ ओ३म् ॥

वैदिक विद्वानों एवं उपदेशकों के हितचिन्तक,
अनेक गुरुकुलों के संस्थापक एवं संचालक
यजुर्वेद सम्मेलन २०११ के अध्यक्ष



स्वामी प्रणवानन्दजी सरस्वती

आचार्य

गुरुकुल गौतमनगर, दिल्ली

॥ ओ३म् ॥

निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्

"ब्रह्मवेद है अथर्ववेद"

जादू-टोने का वेद नहीं

• लेखिका •

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा - व्याकरणाचार्य



• सम्पादक •

डा. सोमदेव शास्त्री

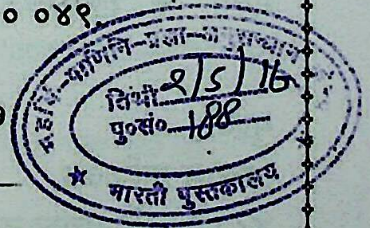
• प्रकाशक •

वैदिक मिशन मुम्बई

३०९ मिल्टन अपार्टमेन्ट,

जुहू कोलीवाड़ा, मुम्बई - ४०० ०४९.

विक्रम संवत् २०६७



प्रथम संस्करण — १००० प्रति — सन् २०११

● लेखिका
आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा
पाणिनी कन्या महाविद्यालय वाराणसी-१० (उ.प्र.)
चलभाष : ०९६८०६७४७८९/०९९१८०५९००६

● पुस्तक प्राप्ति स्थान ●

१. **आचार्या धारणा**
आर्य कन्या गुरुकुल
शिवगंज, जिला सिरोही (राज.)

२. **डा. सोमदेव शास्त्री**
३०९, मिल्टन अपार्टमेन्ट,
जुहू कोलिवाड़ा, मुम्बई - ४९.
चलभाष - ०९८६९६६८१३०

प्रथम संस्करण
ईसवी सन् १३ मार्च २०११
विक्रम संवत् २०६७
मूल्य - रु. १००/- (सौ रुपये)

मुद्रक
विकास ग्राफिक्स,
४८१/९, विनायक वासुदेव चाल,
ना.म.जोशी मार्ग, मुम्बई - ११.

''ओ३म''

समर्पणम्

यावद् दीव्यतः लोके महच्चन्द्रदिवाकरौ।
तावत् पूज्याचार्या मेधादेवी लोके प्रचरिष्यति ॥

जिन पूज्या आचार्यप्रवरा ने सम्पूर्ण
व्याकरण, महाभाष्य, निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों का
ज्ञान दिया। जिन्होंने **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** में नींव की ईंट बनकर
आचार्य परम्परा का निर्वहन किया। निरन्तर ५४ वर्ष तक अष्टाध्यायी, महाभाष्य,
दर्शन आदि विद्या की शिक्षा का दीप जलाया। मुझ जैसी अनेकों विदुषियां
आर्य जगत् को दीं। विद्यालय परिसर में अष्टाध्यायी सूत्रों से अंकित
पाणिनिमन्दिरम् बनाया। अपनी **पूज्या बहिन आचार्या प्रज्ञा देवी जी** को
ससमर्पण सहयोग किया। वेद और संस्कृत के लिए जीवन जिया।



स्व. आचार्या मेधा देवी जी

जन्म : २० जुलाई १९४२ प्रयाण : २६ अगस्त २०१०

उन
नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी अपनी अपनी पूज्या आचार्या मेधा देवी जी
के पावन चरणों में -

ब्रह्मवेद है अथर्ववेद यह जादू टोना का वेद नहीं है

अर्पित है अन्तेवासिनी पाणिनि विद्यालय की
आचार्या सूर्यादेवी के ये पत्र पुष्प



॥ अनुक्रमणिका ॥

सम्पादकीय

सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू परमात्मा ने दिव्य वेदों का ज्ञान दिया। इनमें मनुष्यों के हितकारक सभी कर्मों का उपदेश दिया है। परमात्मा का ज्ञान होने के कारण यह अनादि और नित्य है ऐसा महर्षि वेद व्यास ने महाभारत में लिखा है-

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा: ।

आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ (महा.शा.प. २३२-२४)

परमात्मा ने वेदों का ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में दिया इस लिये उसे गुरुओं का भी शुरु कहा जाता है। (**स: पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।** यो.द.) वेद समस्त ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं। सर्व ज्ञानमयौ हिसः....मनु.) वेदों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही स्मृति ग्रन्थों में यहां तक लिखा दिया कि जिसने वेद नहीं पढ़े उस का विवाह नहीं होना चाहिये। (**वेदानधीत्य...गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥** मनु.) सृष्टि के आदि काल से वेदों का पठन पाठन होता रहा है। उपवेद-ब्राह्मण-आरण्यक उपनिषद्-वेदांग-उपांगादि सभी शास्त्रों ने वेदों की महत्ता को स्वीकार किया है और जिसने वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं किया उसको "नास्तिक" तक कह दिया।

महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदों के पठन पाठन में शिथिलता आयी, अनेक प्रकार की मिथ्या विचार धाराएं प्रचलित हो गयी। वेद मन्त्रों की रचना गद्य-पद्य और गान की दृष्टि से तीन प्रकार से की गयी है-जिसके लिये **'वेदत्रयी'** शब्द का प्रयोग होने लगा जिसके कारण यह भ्रान्ति पैदा हो गयी कि **प्राचीन वेद तीन** ऋग्वेद-यजुर्वेद और समावेद हैं चौथा **अथर्ववेद** बहुत ही **अर्वाचीन** है। जिसकी बाद में रचना की गयी और इसमें भी जादू टोना-भूत-प्रेतादि का वर्णन है। इसलिये अथर्ववेद को उतना महत्त्व और सम्मान अनेक वर्षों से नहीं दिया जा रहा था। महर्षि दयानन्द की महती कृपा है कि उन्होंने याद दिलाया कि जितने पुराने ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद हैं उतना ही पुराना 'अथर्ववेद' है। इस विषय में ऋषि दयानन्द ने अनेक तर्क और प्रमाण दिये हैं। अथर्ववेद में शिक्षा-चिकित्सा-गृहस्थ धर्म-राज धर्म-ईश्वर प्राप्ति के उपाय आदि सभी विषयों का वर्णन है। गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो अथर्वा है वह भेषज (दवा) है और जो भेषाज है वह अमृत है और जो अमृत है वह ब्रह्म है। (गो.ब्रा. ३-४) अर्थात् **अथर्ववेद ब्रह्मवेद है।**

अथर्ववेद में भूत-प्रेत-जादू-टोना है, इसका उल्लेख **आचार्य सायण** ने अथर्ववेद भाष्य करते हुए किया और उसने **'कौशिक सूत्र'** नामक तान्त्रिक ग्रन्थ के विनियोगों का उल्लेख मन्त्र की व्याख्या करते हुए किया। सायण का अथर्ववेद भाष्य उन पाश्चात्त्य विद्वानों को एक अमोघ शस्त्र के रूप में मिल गया जो भारतीयों को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र कर रहे थे, उन्होंने **वेदों में जादू-टोना, भूत-प्रेतादि का वर्णन है**, इनमें अनेक मूर्खतापूर्ण बातें लिखी हुई हैं। अंग्रेजी में लिखी पाश्चात्त्य विद्वानों की व्याख्या और आक्षेपों पढ़कर तथाकथित अहंमन्य भारतीय विद्वान् भी वेदों पर आक्षेप करने में अपना गौरव समझने लगे। इसी महत्वाकांक्षा के शिकार श्री आदित्यमुनि और श्री वी. उपेन्द्रराव हुए हैं।

गत वर्ष (६-७ मार्च २०११) को वैदिक मिशन मुम्बई की ओर से आयोजित 'अथर्ववेद' संगोष्ठी के अवसर 'अथर्ववेद पर अनेक आक्षेप लिखकर भेजे। आक्षेप लिखते हुए इन्होंने भाषा में **शालीनता** का भी ध्यान नहीं रखा और ऋषि दयानन्द पर भी **कटाक्ष करने** में कोई संकोच नहीं किया। जिस ऋषि की कृपा से ये महानुभाव वेदों को देख व पढ़ सके। इन दोनों महानुभावों के द्वारा किये गये अनर्गल और मिथ्या आक्षेपों का उत्तर देना आवश्यक नहीं था (उपेक्षा भाव ही रखना चाहिये था) किन्तु पिष्टपेषणवत् ये बार बार यही लिखकर वेदभक्त आर्य जनता में भ्रान्ति फैलाते रहते कि **अथर्ववेद में जादू टोना है, यह** अर्वाचीन और **तान्त्रिक है**, आदि आदि। **हमारे प्रश्नों का उत्तर कोई विद्वान् नहीं दे सका।** इनके आक्षेपों का अनेक तर्क और प्रमाणों के साथ सटीक उत्तर वेद विदुषी आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा ने देकर श्लाघनीय कार्य किया है। इस कार्य के लिये इन्होंने मेरे आग्रह को स्वीकार करके अनेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए तथा अनेक विघ्न और बाधाओं के आने पर भी वेद रक्षा के इस पुण्यतम कार्य को करके अथर्ववेद को गौरवान्वित किया है। इसके लिये मैं इनका आभारी हूँ। आशा है श्री आदित्यमुनि और वी उपेन्द्रराव अपना दुराग्रह छोड़कर ऋषि दयानन्द के उपकार को मानते हुए अथर्ववेद की महिमा समझेंगे तथा वेदज्ञ विद्वान् और वेदानुरागी सज्जन इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करके अथर्ववेद की महत्ता से लाभान्वित हो सकेंगे। सुविज्ञ पाठकों से निवेदन है कि यदि मुद्रणादि में कोई त्रुटि या न्यूनता रह गयी हो तो अवगत कराने की कृपा करें जिससे अगले संस्करण में ठीक किया जा सके।

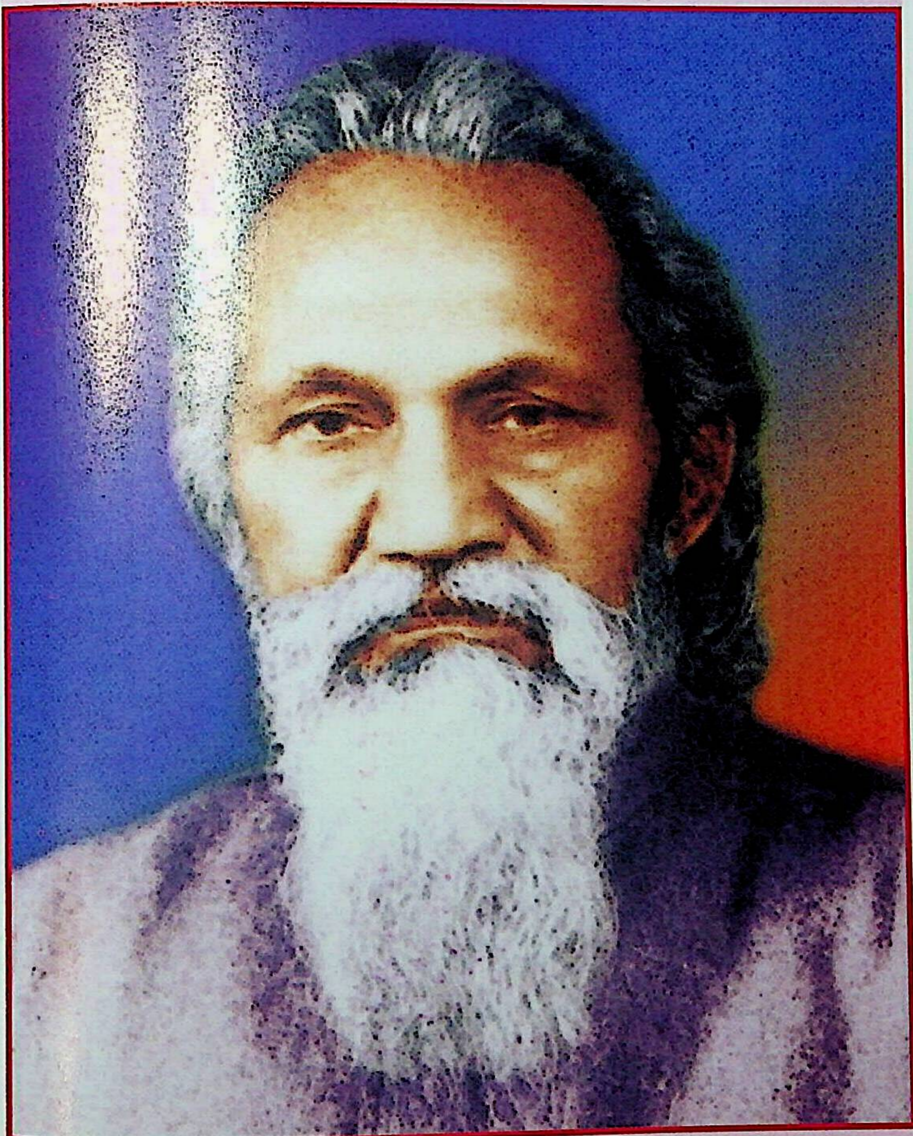
डा. सोमदेव शास्त्री

अध्यक्ष

वैदिक मिशन, मुम्बई

॥ ओ३म् ॥

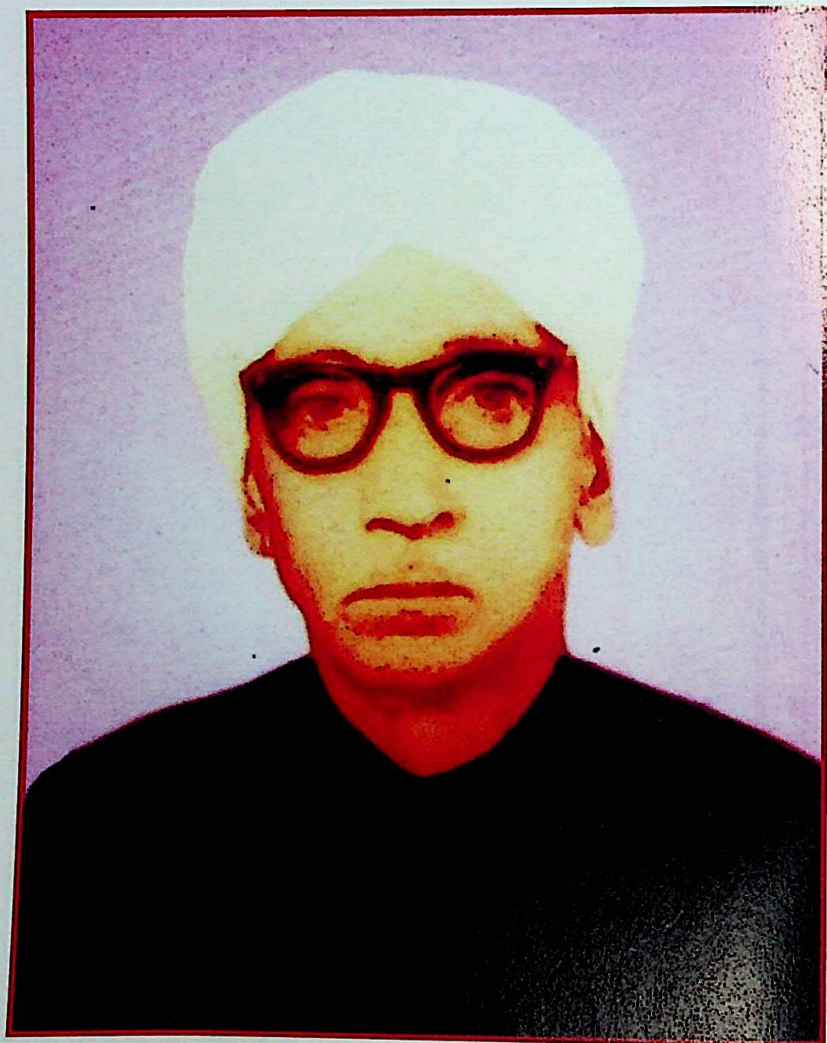
आर्ष पाठविधि के प्रबल समर्थक



पदवाक्य प्रमाणज्ञ श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के तलस्पर्शी अध्येता,
आधुनिक पाणिनि, वेद वेदांगों के अद्भुत वेत्ता,
गुरुवर्य पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के अनुपम शिष्य,
महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त



महामहोपाध्याय पं. युधिष्ठिरजी मीमांसक

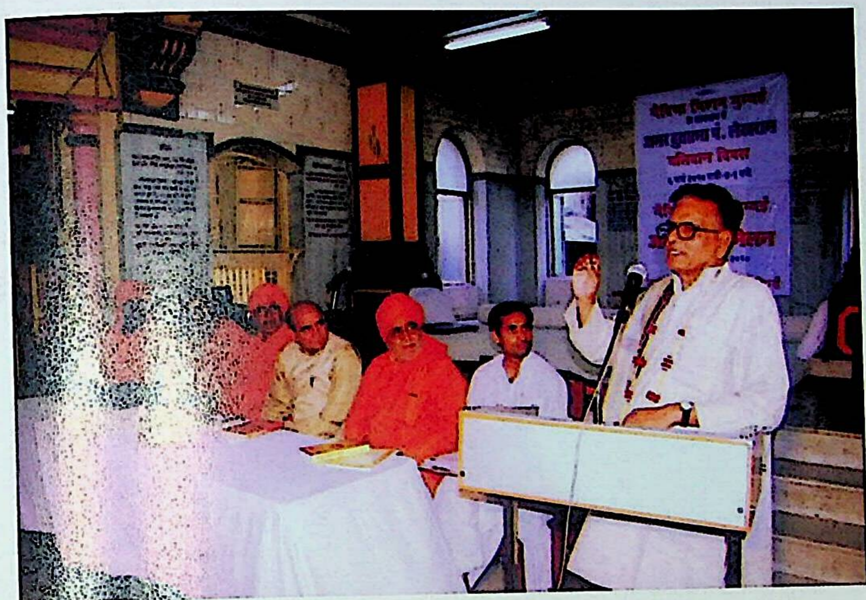
पदाधिकारी एवं ट्रस्टी गण
वैदिक मिशन मुम्बई



"ब्रह्मवेद है अथर्ववेद"

की लेखिका

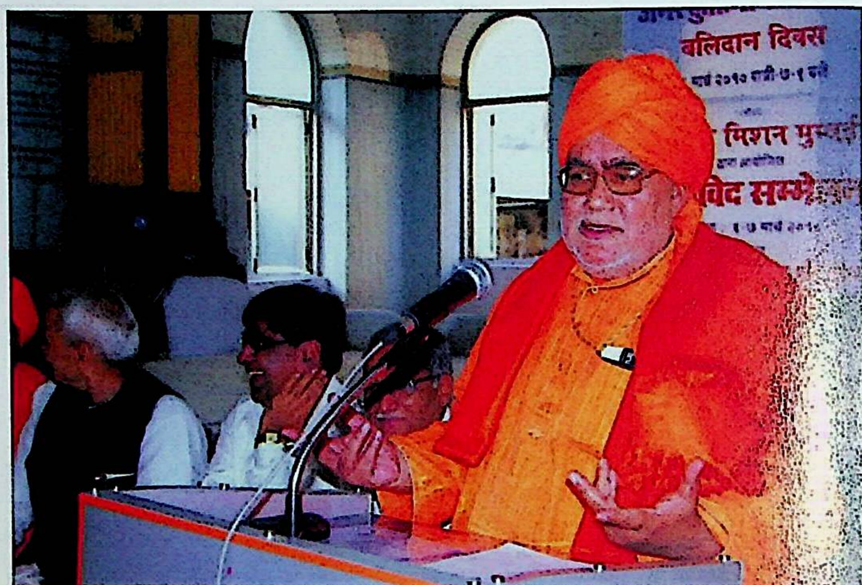
आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा



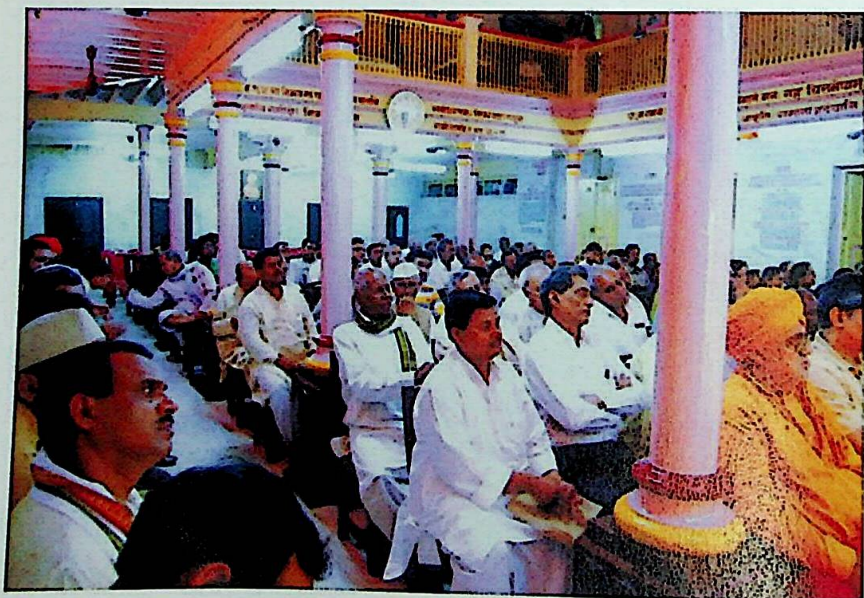
डा. प्रशस्यमित्र शास्त्री अथर्ववेद सम्मेलन २०१० में भाषण देते हुए



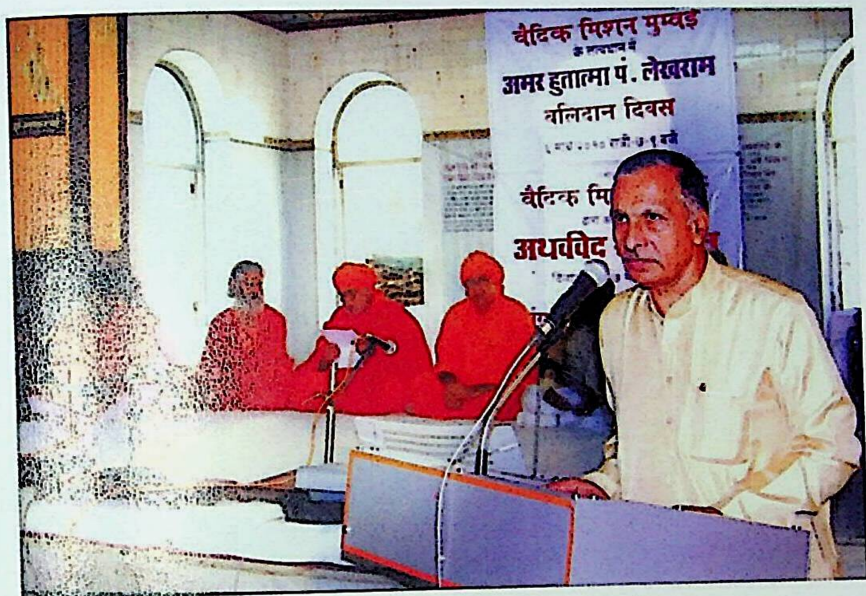
अथर्ववेद सम्मेलन में श्रोताओं के बीच बैठी हुई श्रीमती शन्नोदेवी, आचार्या सुयदेवी, डा. माधुरी, श्रीमती सुदक्षिणा शास्त्री, श्रीमती शारदा परगल (पुत्री स्व. मेहरचन्द महाजन)



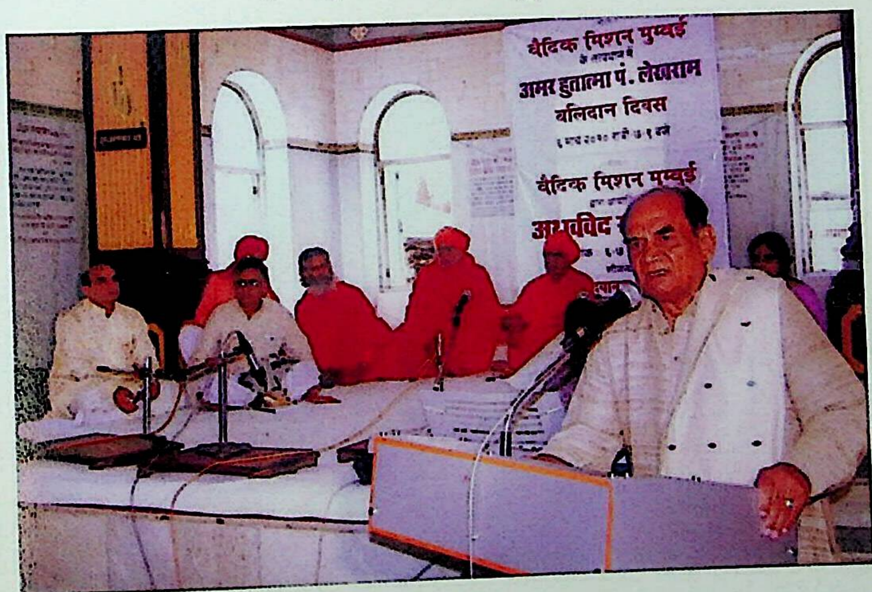
स्वामी प्रणवानन्दजी, अध्यक्ष-अथर्ववेद सम्मेलन २०१०
में अध्यक्षीय भाषण देते हुए



अथर्ववेद सम्मेलन २०१० में आचार्य रणधीर शास्त्री,
डा. नागेन्द्रकुमार शास्त्री, स्वामी प्रणवानन्दजी आदि



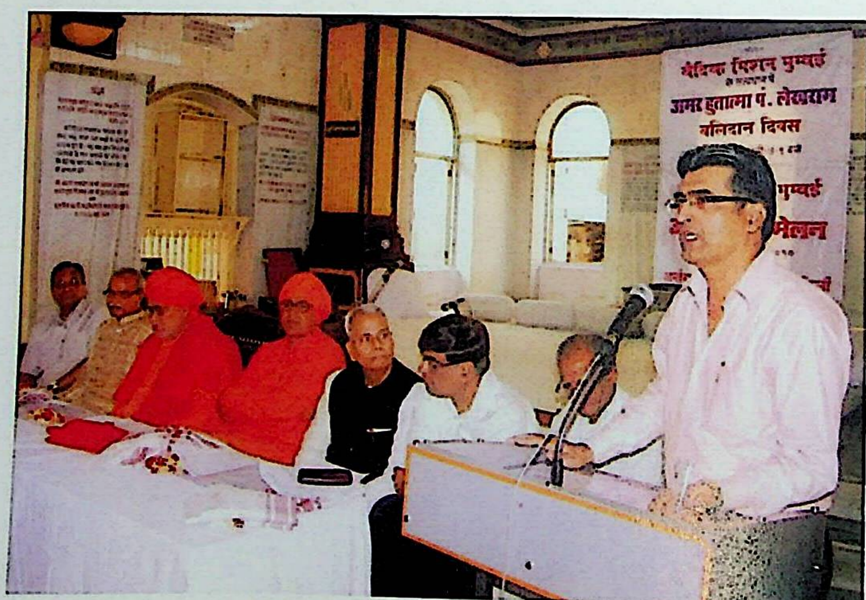
अथर्ववेद सम्मेलन में स्वागत भाषण करते हुए
डा. सोमदेव शास्त्री
अध्यक्ष, वैदिक मिशन मुम्बई



डा. महावीरजी मीमांसक (दिल्ली),
अथर्ववेद सम्मेलन को संबोधित करते हुए



अथर्ववेद सम्मेलन में भाषण देती हुई
आचार्या सूर्यदेवी चतुर्वेदा



सन्दीप आर्य, मंत्री-वैदीक मिशन मुंबई
अथर्ववेद सम्मेलन में धन्यवाद देते हुए

''वैदिक मिशन मुम्बई'' का संक्षिप्त कार्य-विवरण

विगत ६ वर्षों से 'वैदिक मिशन मुम्बई' वैदिक धर्म प्रचार व प्रसार के कार्यों में संलग्न है। अंग्रेजी पठित व्यक्तियों को संस्कृत भाषा का शिक्षण तथा वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान देना इस मिशन का उद्देश्य रहा है। पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा घर बैठे हुए व्यक्ति वैदिक मान्यताओं का हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में ज्ञान प्राप्त कर सके इसके लिए यह संस्था प्रयत्नशील है।

वैदिक मान्यताओं के प्रचार हेतु वैदिक मिशन की ओर से सन् २००६ में 'वेद-गोष्ठी' का आयोजन किया गया जिसमें **''वेदों में सामाजिक संगठन और याज्ञिक प्रक्रिया''** विषय पर शोधपत्र पढ़े गये और उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया जिसमें लगभग १०० पुरोहितों ने भाग लिया जिसमें याज्ञिक प्रक्रिया में एकरूपता हो इस विषय पर विचार मन्थन हुआ। **'सार्वदेशिक धर्मार्य सभा'** द्वारा निर्धारित याज्ञिक प्रक्रिया को समस्त आर्य समाजें पूर्ण रूप से अपनाएं यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया।

सन् २००८ में आर्य भजनोपदेशक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें ६२ उपदेशकों ने भाग लिया। भजनोपदेशों का संगठन **''आर्य भजनोपदेशक परिषद्''** को गठन किया गया। इस अवसर पर आये गये भजनों की कैसेट व सी.डी. भी तैयार की गयी। इस कार्यक्रम का सफल संचालन वैदिक मिशन मुम्बई के अध्यक्ष डा. सोमदेव शास्त्री जी ने किया।

१४-१५ मार्च २००९ की **'आर्य महिला उपदेशिका सम्मेलन'** किया गया। जिसमें 'नारी उत्थान में ऋषि दयानन्द और आर्य समाज का योगदान' इस विषय पर परिचर्चा का आयोजन किया गया तथा डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित पुस्तक **'आर्य भजनोपदेशक व्यक्तित्व और कृतित्व'** का विमोचन किया गया।

अभिनन्दन एवं सम्मान : उक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त यह मिशन प्रतिवर्ष विद्वानों का अभिनन्दन भी करता रहा है। सन् २००६ में **श्री दीनानाथ शास्त्री** और उनकी पत्नी **श्रीमती गायत्री देवी** (अमेठी) को ग्यारह हजार रुपये से सम्मानित किया गया।

सन् २००७ में पुरोहित सम्मेलन के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई की ओर से **स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती** गुरुकुल (उड़ीसा) का दो लाख पचास हजार रुपये से अभिनन्दन किया गया।

सन् २००८ में भजनोपदेशक सम्मेलन के अवसर पर आर्य जगत् के प्रसिद्ध भजनोपदेशक **पं. बेगराज जी आर्य** और **श्री पं. बृजपाल जी कर्मठ** का पन्द्रह हजार रुपये से अभिनन्दन किया गया।

सन् २००९ में **पं. ताराचन्द जी वैदिक तोप** (नारनौल, हरियाणा) का ग्यारह हजार रुपये देकर अभिनन्दन किया गया। इस प्रकार 'वैदिक मिशन मुम्बई' वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के कार्य में सदा अग्रसर है।

सन् २०१० में **श्री बृहस्पति शर्मा और उनकी धर्मपत्नी** (पुत्र एवं पुत्र वधू महामहोपाध्याय पं. युधिष्ठिरजी मीमांसक) को सम्मानित किया गया।

वैदिक मिशन मुम्बई निरन्तर वैदिक विचारों के प्रचार प्रसार में संलग्न है। सन् २००८-२००९ में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के ग्रामों में वैदिक मिशन के ट्रस्टी श्री ओम्प्रकाशजी शुक्ल ने सम्पर्क करके सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर वैदिक सिद्धान्तों की परीक्षा का आयोजन किया जिसमें लगभग ३०० विद्यार्थीओं ने भाग लिया।

वैदिक मिशन की ओर से मुम्बई के बोरीवली-वसई रोड़ तथा नाला सोपारा आदि उपनगरों में संस्कृत की कक्षाएं लगायी गयी भारतीय विद्याभवन द्वारा संचालित संस्कृत परीक्षा में तीस छात्र बैठे, सभी छात्र प्रथम और द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सांख्य और योगदर्शन पर संचालित पत्राचार पाठ्यक्रम में लगभग तीन सौ पठनार्थियों ने भाग लिया जो घर बैठे दर्शन शास्त्र के ज्ञान से लाभान्वित हो रहा है।

दिनांक ६-७ मार्च २०१० को **महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक** के जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर अथर्ववेद संगोष्ठी (सम्मेलन) का **स्वामी प्रणवानन्दजी सरस्वती** (दिल्ली) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया जिसमें लगभग पचास वैदिक विद्वानों ने भाग लिया। **'नारी महिमा एवं उसके उत्थान और योगदान'** विषय पर प्रकाशित स्मारिका का विमोचन भी किया गया।

इस वर्ष दिनांक १२-१३ मार्च २०११ को यजुर्वेद सम्मेलन का आयोजन किया गया, यजुर्वेद में विद्यमान विषयों पर वैदिक विद्वानों ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किये। इस अवसर पर आचार्या सूर्यदेवी चतुर्वेदा द्वारा लिखित पुस्तक **ब्रह्मवेद है अथर्ववेद** का विमोचन किया गया जिसमें वी. उपेन्द्र द्वारा अथर्ववेद पर किये गये आक्षेपों का सटीक उत्तर अनेक तर्क और प्रमाणों के साथ इस पुस्तक में दिया गया। इस अवसर पर आचार्या सूर्यदेवी का अभिनन्दन भी किया गया।

॥ ओ३म् ॥

अथाकथनम्

ईश्वरीय ज्ञान वेद के चार अभिधान हैं-१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद यानी वेद चार हैं। इस तथ्य का स्वतः प्रमाणक वेदमन्त्र है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ यजु. ३१/७

अर्थात् उस सर्वोपास्य, सच्चिदानन्दस्वरूप, पूर्ण, सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म पुरुष से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद प्रकट हुए हैं।

वेद महात्म्य

ईश्वर चूँकि सर्वज्ञ है, पूर्ण है, नित्य है अतः उसका दिया हुआ चतुर्वेदात्मक ज्ञान भी नित्य, पूर्ण व सर्वज्ञानमय है। वेद का ज्ञान न अपूर्ण है न अनित्य है और न त्रुटि युक्त है।

ईश्वरीय ज्ञान वेद अनादि सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक ज्ञान है। पुनः-पुनः उत्पत्ति, विनाश वाला वेद ज्ञान नहीं है। वाचा विरुपनित्यया., ऋ. ८/७५/६ अर्थात् वेद वाणी नित्य है। इस स्वतः प्रमाण वेदमन्त्र से स्पष्ट है कि वेद आदि, अन्त, अवधि से रहित हैं।

वेदों में जीव के करणीय अकरणीय, ज्ञेय अज्ञेय, विधेय निषेध्य आदि उभयात्मक पक्षों का ज्ञान विद्यमान है। जड़, चेतन के हित साधक समस्त व्यवहारों व स्वरूपों का निर्देश करने वाला यह ईश्वरीय वेद ज्ञान है। शिक्षा, व्याकरण आदि वेदाङ्गों, आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि उपवेदों, न्याय, वैशेषिक आदि उपाङ्गों, ब्राह्मण, उपनिषद्, स्मृति, कल्पसूत्र आदि ज्ञान ग्रन्थों का वेद ही उद्गम है। समस्त विज्ञानों का स्त्रोत वेद है। गणित, संगीत, कला आदि विद्याओं का प्रतिपादक भी वेद ही है। अल्पज्ञ मनुष्य को सुज्ञ, प्रज्ञ बनानेवाला ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है।

वेद में जादू टोना नहीं

सर्वहित निर्देशक ईश्वरीय ज्ञान वेदों में स्वार्थ, पक्षपात, हिंसा, आतङ्क, वाममार्ग, अश्लीलता, खान-पान, जादू टोना, झाड़ फूँक, कुत्सित मन्त्र तन्त्र आदि कर्म करने का कोई विधि विधान नहीं है।

वेद विरोधी उछल कूद

वेदों के दोष दर्शक ऐसे ही अल्पज्ञ महानुभाव सन् २००६ से वेदों में दोष दर्शन के प्रदर्शन की उछल कूद कर रहे हैं। वे महानुभाव हैं-**श्री आदित्य मुनि** जी और **श्री पं.वी. उपेन्द्र राव** जी भोपाल। इन दोनों महानुभावों ने वेदों पर कीचड़ उछालने के लिए अति घिनौनी चेष्टायें की हैं। वे अहंमन्यता से परिपूर्ण हैं वे घिनौनी चेष्टाएं इन्होंने अपनी अल्पज्ञता पोषक स्वरचित शत साङ्केतिक-प्रश्न, यजुर्वेद अन्तरङ्ग, आदित्य किरण आदि पुस्तकों में उगली हैं।

जादू टोना समर्थक पुस्तक व पुस्तक का उद्देश्य

सम्प्रति इन महानुभावों ने मुझ सहित प्रायः समस्त वेद गवेषक वेदानुयायी, वेदाध्यायी विद्वन्मण्डल के समीप एक और **जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद'** नामक अपनी अहं मन्यता द्योतक ८० पृष्ठीय पुस्तिका संप्रेषित की है। सभी को ज्ञात हो यह पुस्तक महामहोपाध्याय पं. युधिष्ठिर मीमांसक जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर वैदिक मिशन मुम्बई द्वारा ६,७ मार्च २०१० में आयोजित अथर्ववेद सम्मेलन के विरोध में लिखी गई है।

'जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद' इस पुस्त्क में जिस-जिस आरोप, संदेह, भ्रम से अथर्ववेद के प्रति उपेक्षा, घृणा, अस्पृहा उत्पन्ना हो सकती है, उन-उन आरोपों, संदेहों, भ्रमों को उपस्थित करने में युगल जोड़ी ने यथाशक्ति खूब रस्सा कशी की है। अथर्ववेद विषयक इनकी इस पुस्तक के लेखन का उद्देश्य व इन दोनों की मानसिकता क्या है? इसका स्पष्टीकरण श्री आदित्यमुनि के प्रकाशकीय वक्तव्य से भली भाँति हो जाता

है। प्रकाशकीय वक्तव्य की एक-एक पंक्ति विरोध का जहर बरसा रही है।

पुस्तक का उद्देश्य **वेद, वैदिक सिद्धान्त, ऋषि दयानन्द** और **आर्य समाज** की **निन्दा** करना मात्र है। पुस्तक के कुछ स्थल ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

आर्यों पर आरोप

श्री आदित्य मुनि प्रकाशकीय वक्तव्य के मध्य अपने संपादन दायित्व के निर्वहन की महिमा एवं श्री उपेन्द्रराव की वेद विषयक भ्रान्ति की प्रशंसा में आर्य विद्वानों पर आरोप लगाते हुए लिखते हैं कि, 'हमें इस बात की कतई आशंका नहीं थी कि **आर्य समाज के वर्तमान के वेद के विद्वान् इतने बौने सिद्ध होंगे** कि वे अपने मान्य पक्ष का भी सिद्ध नहीं कर पायेंगे, जिससे उनकी जहाँ जग-हँसाई होगी, वहीं वे ऐसे वेद-मन्थन की हत्या भी कर देने के लिये कटिबद्ध हो जायेंगे।'

श्री आदित्य मुनि की मान्यता

श्री आदित्य मुनि के किसी भी कथन के कालुष्य को उजागर करने से पूर्व इतना सुस्पष्ट शब्दों में कहना चाहूँगी कि श्री उपेन्द्र राव और श्री आदित्य मुनि की यह जघन्य मनोवृत्ति है कि किसी भी प्रकार ऋषि दयानन्द का खण्डन कर **ऋषि दयानन्द से बड़ा व महान् बना जाय** जिसके लिये उन्होंने ईश्वरीय सत्ता व वेद का ही विरोध कर डाला है और अपनी दूषित मनोवृत्ति का समर्थन करने के लिए ईसाई, मुसलमानों के मतों व पाश्चात्त्य भाष्यकारों का पल्ला पकड़ लिया है।

इनकी मान्यता है कि चारों वेद एक साथ प्रादुर्भूत नहीं हुए। उपलब्ध वेद मनुष्य कृत हैं। पृथक्-पृथक् समय में प्राप्त हुए। मूल=अपौरुषेय वेद अन्य ही हैं। उपलब्ध वेद मनुष्य कृत हैं, अथर्ववेद जादू-टोना का प्रेरक है ये वेद विषयक अवधारणायें इन्होंने मात्र अपनी संसिद्धि के लिए ही रची हैं।

आदित्य मुनि के पूर्वोक्त कथन का 'आर्य समाज के वर्तमान वेद के विद्वान् अपने मान्य पक्ष को भी सिद्ध नहीं कर सके' यह सार कथन नितान्त

झूठ है। श्री उपेन्द्रराव के शत साङ्केतिक प्रश्नों का उत्तर मेरे द्वारा (आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा) भली प्रकार समय की अवधि में २००७ में विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या नामक बृहत् पुस्तक में दिया जा चुका है। पुस्तक में वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, त्रुटि रहित है, पूर्ण है, नित्य है आदि वेद विषय सुपुष्ट प्रमाणों से प्रमाणित किये गये हैं। सम्प्रति वह पुस्तक १९ विधान सरणी आर्य समाज कलकत्ता के सौजन्य डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार के सुप्रयास से प्रकाशित हो चुकी है।

महर्षि दयानन्द से महान् बनने का नमूना

महर्षि दयानन्द से महान् बनने की होड़ में आदित्य मुनि होश में नहीं हैं। अपनी इस विकृति का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने लिखा-

'वेदमन्त्रों को ऋषियों द्वारा समय-समय पर की गई रचनायें ही मानना हो सकता है, अन्य कोई नहीं। लेकिन **आर्य समाजी वैदिक विद्वान् जो भ्रान्त मान्यता** (वेद अपौरुषय है, यह) **पिछले १३५ वर्षों से पाले हुए हैं,** उससे वे तत्काल मुक्त भी नहीं होना चाहते हैं। सो मेरी प्रवृत्ति अब आर्य समाज को दयानन्द सम्प्रदाय न बनने देने की ओर ही है।'

आदित्य मुनि का प्रकाशकीय वक्तव्य आरोपों का पिटारा है, जिसमें उन्होंने कही तो दयानन्द पर सीधे प्रहार किया है और कहीं सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कथित महर्षि दयानन्द के वाक्यों को तोड़ मरोड़ कर कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा' जैसा बना कर इन्होंने ऋषि दयानन्द की अवमानना की है।

मिशन पर आरोप

आदित्य मुनि ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में वैदिक मिशन मुम्बई के अधिकारियों द्वारा ६-७ मार्च २०१० को आयोजित अथर्ववेद गोष्ठी के आयोजकों पर यह भी आरोप लगाते हुये लिखा है-

'हमारे द्वारा प्रेषित ५७ पृष्ठ आलेखीय गोष्ठी की सूचना भी नहीं दी।

पुस्तक के आमुख का जहर

अब पुस्तिका का आमुख गिरफ्त में है। जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद इस पुस्तिका के आमुख लेखक हैं-**पं.वी. उपेन्द्र राव**। लेखक महाशय आर्य समाज की संस्थाओं द्वारा आयोजित गोष्ठियों की हंसी बनाते हुए **'एकाक्षीय=प्रवृत्ति की व्यर्थता'** शीर्षक में आमुख कथन में लिखते हैं-

'जैसे मूर्ति पूजक हिन्दू दुर्गा पूजा, गणेशोत्सव, दशहरा, होली, दीवाली आदि उत्सवों को मनाते हैं, जो एक तमाशा के सिवा कुछ नहीं है, वैसे ही आर्य सामजिक संस्थायें भी वेद गोष्ठियों का अयोजन करती हैं। ये भी तमाशा अथवा मजाक के सिवा कुछ नहीं है। ये संस्थायें वेदगोष्ठियाँ इसलिए आयोजित करती हैं कि इन में केवल स्वपक्ष के ही विद्वान् सम्मिलित हों। एवं मरे हुए सायणाचार्य, ब्लूमफील्ड, मेक्समूलर, मोनियर विलियम्स् आदि के प्रयत्नों का जोरदार खण्डन करके तालियाँ बटोरी जायें।

जादू टोना पुस्तक के विषय

जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद पुस्तिका में लेखक श्री उपेन्द्र राव ने किन विषयों को आधार बनाकर अपना छिद्रान्वेषण किया है ? उन विषयों का स्पष्टीकरण 'विषयप्रवेश' किया है। वे छिद्रभूत उनके विषय हैं-

अ) अथर्ववेद प्राचीन है या अर्वाचीन

ब) अथर्ववेद में जादू-टोना

स) मन्त्र-तन्त्र

द) भूत-प्रेत

ई) पिशाच-राक्षस

फ) कृत्या-अभिचारादि

इन प्रश्नों के माध्यम से लेखक कौन सा नया ज्ञान बिखेरना चाहते

है ? यह न तो पूर्व प्रकाशित शत साङ्केतिक प्रश्न, आदित्य किरण आदि पुस्तकों से स्पष्ट हुआ और न जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद इस पुस्त्क से स्पष्ट हुआ है।

भूल में न रहें !

इस प्रकार इस पुस्तिका के प्रकाशकीय वक्तव्य एवं आमुख से तो मात्र यही स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि दोनों महानुभावों का उद्देश्य है कि **कैसे वेद महर्षि दयानन्द आर्य समाज**, आर्य संगठन आदि **को अपमानित** किया जा सकता है।

दोनों महानुभाव भूल में न रहें, सूर्य पर धूल फेंकने से सूर्य का कुछ नहीं बिगड़ता, फेंकने वाले का ही मुँह धूलिसात होता है। आपके किसी भी कुचक्र से न ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आँच आयेगी, न महर्षि दयानन्द पर।

धूल फेंकने वाले मुसलमानियत, ईसाइयत आदि से घिरे इन युगल बन्धुओं तथा एतादृक् जनों की अनर्गल, काल्पनिक वेदविषयक अवधारणायें अंकुरित न हो जायें, इसके लिए मैं सदा सचेष्ट प्रयत्नशील रही तथा रहती हूँ। मैं अवैदिक मान्यताओं का मर्दन करती हूँ। एतदर्थ मेरी पूजनीया स्व. आचार्या मेधा देवी जी भी मुझे सदा प्रेरित और सचेष्ट करती रहती हैं। मैं उन्हीं की प्रेरणा से प्रेरित होकर अथर्ववेद में जादू टोना नहीं है यह लिखने का प्रयास कर सकी हूँ।

इस पुस्तक में अथर्ववेद सम्बन्धी जादू टोना, शाप, गाली आदि समस्त अनर्गल संदेहों, भ्रमों का निराकरण किया गया है।

जादू-टोना का प्रेरक पुस्तक का कहाँ ? निशाना ?

उपेन्द्र राव द्वारा लिखित **'जादू-टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद'** पुस्तक किस परिप्रेक्ष्य में लिखी गई है यह कोई जाने या न जाने, मैं तो जान गई हूँ। इस पुस्तक के वेद, वैदिक मान्यताओं व दयानन्द तो केन्द्रित भूत हैं ही, इसके अतिरिक्त आक्रमण का सीधा निशाना वैदिक विद्वान्, वेदगवेषक, विद्यामार्तण्ड श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक द्वारा

लिखित **'अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र'** एवं **'अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या'** इन दो पुस्तकों पर ताना गया है।

अन्त में धन्यवाद ज्ञापन प्रकरण में सबसे प्रथम **आर्य कन्या गुरुकुल** शिवगंज की ब्र. सुरेखा, शास्त्री तृतीयवर्ष को सस्नेह साधुवाद देती हूँ, जिसने इस पुस्तक के सम्पूर्ण प्रमाण व प्रेस कॉपी तैयार कराने में बड़े मनोयोग, श्रद्धा, निष्ठा के साथ समय लगाया। ब्र. सुरेखा वेदविदुषी ईश्वरभक्त, दयानन्द भक्त बने, यह मेरा उसके लिए हार्दिक आशीर्वाद है।

धन्यवाद श्रृंखला में आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, **डा. सोमदेवजी शास्त्री** अध्यक्ष-वैदिक मिशन मुंबई, को हार्दिक धन्यवाद देना चाहूँगी। शास्त्रीजी बार-बार दूरभाष से उत्तर देने के लिए प्रेरित करते रहे तथा इसके लिए सदा सम्पर्क भी करते रहे। आपकी इस तत्परता से ही यह पुस्तक पूर्ण हो सकी है।

पुस्तक की पूर्णता में आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज की आचार्या मान्या बहिन डॉ. धारणा जी याज्ञिकी का सहयोग अविस्मरणीय है। उन्होंने मेरे स्वास्थ्य या अन्य किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होने दी। समुचित औषधि, उचित आहार के उचित प्रबन्ध के लिए आप सतत प्रयत्नरत रही हैं, तदर्थ मैं गुरुकुल परिवार व उनकी आभारी हूँ, साधुवाद देती हूँ। ईश्वर करे आप सदैव सुयश, सुस्वास्थ्य प्राप्त करती रहें।

साथ ही वैदिक मिशन मुम्बई के समस्त अधिकारियों को मेरा हार्दिक धन्यवाद है, जिन्होंने अज्ञान निवारण का आन्दोलन छेड़ा हुआ है। वे इस पुस्तक को प्रकाशित कर आप सब तक पहुँचा रहे हैं।

अग्ने नय सुपथा

ऋषिमनुगता

आचार्या सूंर्या देवी चतुर्वेदा

पाणिनि कन्या महाविद्यालय

वाराणसी-१० (उ.प्र.)

अथर्ववेद है ब्रह्मवेद

नहीं है जादू टोना का वेद

वेद चार हैं। चौथा वेद अथर्ववेद है। वेदों के ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान ये चार मुख्य विषय हैं। विज्ञान अथर्ववेद का मुख्य विषय है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामदेव जैसे ईश्वरीय ज्ञान हैं, मनुष्यकृत नहीं हैं, ऋषियों द्वारा दृष्ट हैं, वैसे ही अथर्ववेद भी ईश्वरीय ज्ञान है, अपौरुषेय है, मनुष्यकृत नहीं है, ऋषियों द्वारा दृष्ट वेद है। इस तथ्य की अन्तः साक्षी अथर्ववेद में ही विद्यमान है। मन्त्र है -

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्व. १०-८-३२

अर्थात् हे जीव ! तुम **देवस्य** = दिव्य प्रकाशमय प्रभु के, **काव्यम्** = इस वेद ज्ञान रूपी काव्य को, **पश्य** = देखो। यह ज्ञान, **न ममार** = न विनष्ट होता है, **न जीर्यति** = न ही जीर्ण होता है।

मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है कि यह ईश्वरीय ज्ञान सनातन है, अनादि है तथा सदा नवीन ही रहता है, कभी पुराना नहीं होता, तीनों कालों में उपयोगी होता है।

अथर्ववेद का मुख्य विषय **विज्ञान** है। **विशिष्ट ज्ञानं विज्ञानम्** विज्ञान शब्द के अन्तर्गत **तृण से लेकर ईश्वर पर्यन्त पदार्थों का संग्रहण होता है।** अथर्ववेद में जड़ चेतन समस्त पदार्थों द्वारा लौकिक पारलौकिक संसिद्धि कैसे होती है ? इसके महत्वपूर्ण उपादान सन्निविष्ट हैं। ब्रह्मवर्चस्, शान्ति, सद्भावना आदि की शिक्षायें अथर्ववेद में प्रतिपादित हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनों वेदों में जैसे प्राणी मात्र के कल्याण, अभ्युदय की शिक्षायें विद्यमान हैं, वैसे ही अथर्ववेद में भी प्राणी मात्र के कल्याण, हित, सुख, समृद्धि की शिक्षायें उपदिष्ट हैं।

अथर्ववेद नाम महत्व :-

इस चतुर्थ वेद का नाम **अथर्ववेद** है। **अथर्ववेद अथर्वन्** शब्द से सिद्ध हुआ है। **अथर्वन् का अर्थ है-गति रहित, स्थिर।** अथर्वन् का ऐसा

अर्थ क्यों हैं ? क्योंकि अथर्व शब्द **थर्व** धातु से बना है जिसका अर्थ गति या चेष्टा है। अथर्वन् शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए यास्क ने लिखा है -

थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः। निरु. ११/२/१३

अर्थात् थर्व धातु **चर = चलनार्थक** है, गत्यर्थक है। उस गति का निषेध अथर्वन् या अथर्व शब्द से कहा जाता है।

यास्क की व्युत्पत्ति से स्पष्ट हुआ कि **जिस वेद में स्थिरता, चित्तवृत्तियों के विरोध का अतिशय से कथन है वह अथर्ववेद संज्ञा से अभिहित होता है।**

अथर्ववेद का अध्यात्म स्तम्भ :-

अथर्ववेद में अनेकों ऐसे सूक्त हैं जिन में परमात्मा, आत्मा आदि विषयों का ज्ञान है। उनमें आत्मविद्या (अथर्व. ४/२), आत्मा (अथर्व ५/९, ९/१०), आत्म रक्षा (अथर्व. ५/१०), ब्रह्मविद्या (अथर्व ४/१, ५/६), महद् ब्रह्म (अथर्व १/३२), ज्येष्ठ ब्रह्म (अथर्व १०/८), उच्छिष्ट ब्रह्म (अथर्व ११/७), ब्रह्मौद (अथर्व. ११/१), ब्रह्म पुरी (अथर्व १०/२) आदि सूक्त प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेद के ये सूक्त ज्ञापित करते हैं कि **अथर्ववेद योग, उपासना, अध्यात्म, चित्तवृत्ति निरोध, ब्रह्म प्राप्ति की विद्या से प्रतिबद्ध वेद है।**

दर्शन स्तम्भ :-

दार्शनिक सिद्धान्त के विशिष्ट आधार ब्रह्म, जीव, प्रकृति हैं। दर्शन के इन सिद्धान्तों का अथर्ववेद में विस्तार से वर्णन है। ईश्वर द्रष्टा और साक्षी है, कर्मफल देनेवाला है, (अथर्व ९/९/२०) ईश्वर शुद्ध, सात्विक, अविनाशी है (अथर्व ५/११/६), जीव और प्रकृति दोनों में ईश्वर व्याप्त है... (अथर्व १०/८/२५), ईश्वर निराकार है, शरीर मांस, हड्डी से रहित है (अथर्व ९/९/४) आदि ईश्वर विषयक विवेचन अथर्ववेद में प्राप्त हैं।

जगत् रूपी वृक्ष पर रहते हुए जीवात्मा कर्मफल को भोगता है (अथर्व. ९/९/२०), जीवात्मा ईश्वर की भांति अदृश्य, दुष्प्राप्य है (अथर्व. ५/११/६), जीवात्मा शरीर धारण करता है आदि जीव विषयक सिद्धान्त

अथर्ववेद में विद्यमान हैं।

प्रकृति जड़ और अचेतन है (अथर्व. ९/९/२०), प्रकृति में समस्त ऐश्वर्य सुख समृद्धि हैं, घृत आदि का आधार है (अथर्व. १८/४/५, प्रकृति सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणोंवाली है (अथर्व ८/९/२, १०/८/४३, ८/२/१) प्रकृति में महत्तत्त्व है जिसे अथर्ववेद में **बृहत्** कहा गया है। (अथर्व. ८/९/४) इस प्रकार प्रकृति विषयक वर्णन अथर्ववेद में निहित है। इसके अतिरिक्त दर्शन के अवयव भूत प्राण, अपान, शरीर आदि पदार्थों का भी भली भांति अथर्ववेद में वर्णन हैं। इन दार्शनिक विषयों से सिद्ध है कि अथर्ववेद दर्शन विद्या का वेद है।

शिक्षा स्तम्भ :-

शिक्षा व्यक्ति के विकास की साधन है। शिक्षा के अङ्ग हैं-बुद्धि, आयु, गुरु, शिष्य, लेखन आदि। शिक्षा सम्बन्धी इन सभी अवयवों का अथर्ववेद में प्रतिपादन है। शिक्षा बुद्धि को तीक्ष्ण करती है, (अथर्व. ७/१६/१) शिक्षा पढ़ने वाले को मेधावी बनाती है, प्रबुद्ध करती है (अथर्व. ७/६१/१), विद्या सुख देती है (अथर्व. ७/६८/३), शिक्षा के आधार गुरु शिष्य होते हैं, आचार्य शिष्य को नया जन्म देता है (अथर्व. ११/५/३), आचार्य की सेवा करना, उनके आयु की कामना करना शिष्य का कर्तव्य है (अथर्व. १९/६४/४) इत्यादि शिक्षा सम्बन्धी उपादानों का उत्तम वर्णन अथर्ववेद में है। जो सिद्ध करता है कि **अथर्ववेद शिक्षा निदेशक वेद है।**

अर्थ स्तम्भ :-

अर्थ, धन जीवन का अभिन्न अङ्ग है। अर्थोपार्जन की कृषि व्यापार आदि जितनी भी अवयवभूत विधायें हैं, उनका अथर्ववेद में विस्तार से उल्लेख है। कृषि जीवन और अर्थ का आधार है (अथर्व. ८/१०/२८)। धन धान्य के साथ अर्थ के साधन परिवार में पशु धन होवे, गाय होवे, दुग्ध घृत होवें (अथर्व २/२६/४) गाय का वध न हो अथर्व (१७-७३-८), गोदान होवे (अथर्व १०/१०/८३), व्यापार में संलग्न जन दृढ़, निश्चयी, उत्साह युक्त हों (अथर्व. ३/२४/७) आदि अर्थ संग्राहक निदर्शन अथर्ववेद

में विद्यमान है। इससे ज्ञात होता है कि **अथर्ववेद अर्थोपार्जन शिक्षा का वेद है।**

राज्य शासन स्तम्भ :-

राज्य शासन विकास और उन्नति के लिये होता है। राज्य सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्र का विवरण अथर्ववेद में विद्यमान है। राष्ट्र का शासक, धारक, पालक होवे (अथर्व. ६/८७/९), प्रजा कर्तव्य पालन करते हुए कोश को उन्नत करें (अथर्व.१५/९/१-२), विराट्, सम्राट्, स्वराट् शासन के ती प्रकार है, (अथर्व. १७/१/२२), प्रजा राजा को गद्दी पर बिठाती है (अथर्व. ३/३/५) सभा समिति राजा की पुत्री रुप प्रजा के हित की दो प्रतिष्ठायें हैं (अथर्व.७/१२/१) इत्यादि शासन सम्बन्धी अनेक पक्ष अथर्ववेद में व्याख्यात हैं। जो राज्य सम्बन्धी इन विवरणों से स्पष्ट है कि **अथर्ववेद शासकीय विद्याओं का संवाहक है।**

समाज स्तम्भ :-

कर्तव्य के अनुसार कर्म करने वालों का जो समुदाय है, वह **समाज** कहा जाता है। उस समुदाय के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण सुनिश्चित हैं। इन वर्णों का अथर्ववेद में भली प्रकार विवेचन है। **ब्राह्मण** देव भक्त होता है (अथर्व. ५/१५/१३), ब्राह्मण का धन वेदवाणी है। ब्राह्मण समाज का नेता है, मार्गदर्शक है (अथर्व.१२/५/४), ब्राह्मण हन्ता को परमेश्वर नष्ट कर देता है (अथर्व. १२/५/४१)।

क्षत्रिय राज्य का रक्षक होता है (अथर्व.५/१७/३) प्रजा की आयु बढ़ानेवाला क्षत्रिय होता है (अथर्व. ७/१०३/१)। **वैश्य** राज्य को क्रय विक्रय की विधाओं से संपन्न करता है (अथर्व. ३/१५/२), **वैश्य** = व्यापारी शुद्ध चरित्र वाला होवे, (अथर्व.३/१५/४) **शूद्र** का कार्य सेवा शुश्रूषा है उसका कल्याण होवे वह धन धान्य को प्राप्त करे (अथर्व. १९/३२/८, १९/६२/१) इस तरह समाज के वर्ण, आश्रम आदि आधार स्तम्भों का अथर्ववेद में वर्णन है। ये वर्णन ज्ञापित करते हैं कि **अथर्ववेद समाज व्यवस्था का निदर्शन कराने वाला वेद है।**

उपर्युक्त **अध्यात्म (दर्शन) समाज** आदि स्तम्भों की भाँति **धर्म, कर्तव्य, चिकित्सा, भैषज्य** आदि स्तम्भों की संपदा का ज्ञान भी अथर्ववेद प्रदान करता है। **इन समस्त विशेषताओं के कारण अथर्ववेद के छन्दः, ब्रह्म, भैषज्य वेद आदि विभिन्न नाम है।**

चिकित्सा स्तम्भ :-

रोग निवारक विभिन्न उपायों द्वारा रोगों का प्रतिकार करना चिकित्सा कही जाती है। अथर्ववेद चिकित्सा विधियों का समुहत् ज्ञान सागर है। चिकित्सा के अनेकानेक आयाम, प्रकार अथर्ववेद में ओतप्रोत हैं। अथर्ववेद में चिकित्सा के उपाय भेद से कई प्रकार हैं, **उन में चिकित्सा की दो विधियाँ अति महत्वपूर्ण हैं - ओषधि और भैषज।**

१. ओषद्धयन्तीति वा, ओषति एना धयन्तीति वा, दोषं धयन्तीति वा। (निरु. ९/३/२२)

अर्थात् जो जलाने तपाने वाले रोगों का नाश करती है, दाहक रोग होने पर लोग इसे पीते हैं, अथवा दोषों को यह पीती है, अतः ओषधि कही जाती हैं।

२. ओषं रसम्, तं धारयतीति ओषधिः।

अर्थात् जो ओष=रस को धारण करती है, वह **ओषधि** कही जाती है।

इस प्रकार ओषधि रस एवं रस प्रधान पदार्थों का नाम है। ओषधि के द्वारा शरीर और मन के दोषों, विकारों को दूर किया जाता है। ओषधि दीपन, पाचन, ओज, बल को बढ़ाने वाली होती है तथा लेपन, पान, मर्दन, बन्धन आदि के उपयोग में ली जाती है।

भेषज :-

१. भेषं भयम् (ञिभी भये) रोगभयं जयति इति भेषजम्।

अर्थात् जो रोग के भय को, त्रास को जीत लेता है, वह **भेजष** कहा जाता है।

२. भिषज्यति (भिषज् चिकित्सायाम्) येनेति भेषजम्।

अर्थात् जिसके द्वारा चिकित्सा की जाती है उसे भेजष कहते हैं।

इन व्युत्पत्तियों से स्पष्ट हुआ कि भेजष नाम पदार्थ व क्रिया दोनों का है। रोग निवारण के लिए जो योग, उपासना, यज्ञ, मार्जन, अभिमर्षण बन्धन तथा जलावसेचन आदि की जो क्रिया, उपाय व उपयोग हैं, वे भेजष विभाग में आते हैं।

रोग = उपताप प्रकार

रोग = उपताप तीन प्रकार के हैं - रोग, आधि, व्याधि।

रोग - शरीर गत धातुओं को क्षीण करणे वाले नाड़ी, प्राण इन्द्रियों को दुर्बल करने वाले, शिथिल व निष्क्रिय करने वाले, प्रगंति और अभ्युदय के बाधक बननेवाले उपताप = दुःख की संज्ञा **'रोग'** होती है।

आधि :- सूक्ष्मतम मानसिक उपताप का नाम **'आधि'** होता है।

व्याधि :- शरीर, प्राण, मन अन्तःकरण, चित्त एवं बुद्धि विकार रूप उपताप को **'व्याधि'** कहा जाता है[1]।

व्याधियाँ दो कारणों से उत्पन्न होती हैं -१. उत्पत्ति दोष यानी पाप जन्म कर्म के कारण, २. मिथ्या आहार विहार के कारण।

इन समस्त रोग प्रकारों का उपचार ओषधि और भेषज द्वारा किया जाता है। अथर्ववेद में इन्हीं चिकित्सा प्रकारों का प्रतिपादन है। अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान होने के कारण अथर्ववेद को **भैषज्य** वेद कहा जाता है और अथर्ववेद में कहे गये चिकित्सा व चिकित्सा ज्ञान को भेषज, अमृत कहा गया है। वचन है -

येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्, यद्भेषजं तदमृतम्, यदमृतं तद् ब्रह्म।

गो.ब्रा.उ. ३।४॥

अर्थात् जो अथर्ववेद में प्राणि मात्र के लिए कहा गया है वह भेषज है, जो भेषज है वह अमृत है, जो अमृत है वही ब्रह्म= वेद ज्ञान है।

रोग निवारण के इन ओषधि व भेषज चिकित्सा प्रकारों को भी अथर्ववेद के एक मन्त्र में चार भागों में बाँट कर चिकित्सा पद्धति के प्रारूपों का विस्तार

१. तत्र व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यम्। व्या.भा.योग. १/३०

किया गया है[1]। वह मन्त्र है -

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥

अथर्व. ११/४/१६

अर्थात् **प्राण**=हे प्राण! **यदा**=जब तू, **जिन्वसि**=प्रेरणा करता है तब तक ही **आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी उत**=एवं **मनुष्यजा ओषधयः**=मनुष्यकृत ओषधियाँ, **प्रजायन्ते**=उत्पन्न होती हैं।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में ओषधि और भेषज चिकित्सा पद्धति को **आथर्वणी**=मन्त्र चिकित्सा, **अङ्गिरसी**=मानसिक शक्ति चिकित्सा, **दैवी**= अग्नि, वायु, जल, तेज आदि दैविक पदार्थों द्वारा जलचिकित्सा, सौर्य चिकित्सा, वायु चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा, वर्ण चिकित्सा, अग्नि = यज्ञ चिकित्सा, आसन, प्राणायाम चिकित्सा आदि एवं **मनुष्यजा**-मनुष्यों द्वारा निर्मित क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, भस्म, कैप्सूल, गोली, सीरप आदि एवं चीड़, फाड़, ऑपरेशन आदि चिकित्सा के इन चार प्रकारों में प्रख्यात कर रोगों को दूर करने का उपाय बताया है।

रोग, दुःख आदि बाधाओं से सुरक्षित करने वाले अथर्ववेद में कहे गये चिकित्सा पद्धति के चारों विभाग नित्य प्रति व्यवहार में खरे उतर रहे हैं। इन प्रकारों से अतिरिक्त कोई नई चिकित्सा नहीं हो रही है। ये चिकित्सा पद्धतियाँ मनुष्य जीवन की सत्य चिकित्सायें हैं।

मृत्यु के कारण :-

चिकित्सा करने वाले वैद्य, चिकित्सक, डॉक्टर आदि तो रोग, दुःख के कारण जानते ही हैं, अन्यों को भी जानना आवश्यक है। अथर्ववेद में मृत्यु = मरण दुःख के १०१ प्रकार बताये गये हैं। ये प्रकार रोगों की अनिवार्यता से नहीं कहे गये अपितु मनुष्य की संभावित आयु १०० वर्ष की कही गई है उसकी दृष्टि से कहे गये हैं। उन १०० वर्षों में कोई न कोई कष्ट

---

१. तद् दुःखसंयोगाव्याधय उच्यन्ते।
ते चतुर्विधाः आगन्तवः, शारीराः, मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति। (सुश्रु. सू. १/२२, २३)

आयेंगे, आ सकते हैं, आते ही हैं। तो वे कष्ट १०० मृत्यु रूप होंगे[1]। इस प्रकार १०० वर्ष की संभावित १०० कष्ट रूप मृत्युयें हुई। जीव दस मास गर्भ में रहता है, उस अवस्था में भी मृत्यु की संभावना होती ही है। इस प्रकार संभावित १००+१ = १०१ मृत्युरूप कष्ट हैं[2]।

इन संभावित मृत्यु कारणों व कष्टों में कुछ ज्वर, यक्ष्मा, संग्रहणी, चोट, प्रहार आदि बहु चर्चित हैं। कुछ एक ऐसे कारण है लोक में जिनका नाम तो ज्ञात है, पर स्वरूप प्रायः अविदित है। वे प्रमुख कारण हैं -

१. यातुधान, २. यक्ष, ३. राक्षस, ४. गन्धर्व, ५. अप्सरा, ६. पिशाच, ७. भूत आदि।

ये कारण किस स्वरूप वाले हैं ? यह तब तक ज्ञात नहीं हो सकता जब तक इन शब्दों के शब्द निबन्धन की व्युत्पत्ति सुविदित न हो।

यातुधान :-

यातुधान शब्द दो शब्दों का समुदाय है - **यातु और धान। या प्रापणे धातु से कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च, उणा.** १/७३. सूत्र द्वारा तुन् प्रत्यय करके या+तुन्=यातु शब्द निष्पन्न होता है। अथवा छान्दस् **यत ताडने** धातु से **कृवापाजिमि. उणा.** १/१, उणादि सूत्र द्वारा उण् प्रत्यय करके यत् + उण्=यातु शब्द निष्पन्न होता है। **दुधाञ् धारणपोषणयोः** धातु से **आतो युच्**, पा. ३/३/१२९/ सूत्र से युच् प्रत्यय करके धा+युच् = **धान** निष्पन्न होता है। इन दोनों शब्दों के संघात **यातुधान** शब्द की व्युत्पत्ति है।

यातुं प्रापणं गतिं दधाति रुणाद्धि स यातुधानः।

अर्थात् जो गति को रोक लेता है, अपने अन्दर धारण कर लेता है वह **यातुधान** कहा जाता है।

यातुं ताडनं पीडां दधाति ददाति स यातुधानः।

अर्थात् जो ताड़न=पीड़ा को धारण करता है, देता है वह **यातुधान**

---

1. *ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः। अथर्व. ८/२/२७*
2. *मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः। अथर्व. ११/६/१६*

कहा जाता है। **इस प्रकार यातुधान गति को रोकने वाले, पीड़ा देने वाले वे कृमि या रोग हैं जो दूसरों को पीड़ा देते हैं।**

यक्ष :-

यक्ष शब्द में दो शब्द हैं-य और क्ष। या प्रापणे धातु से बाहुलक क प्रत्यय करके या+क=यः शब्द निष्पन्न होता है। क्षणु हिंसायाम् धातु से बाहुलक ड प्रत्यय करके क्षणु+ड = **क्षः** शब्द निष्पन्न होता है। **यक्ष** शब्द की व्युत्पत्ति है -

यां प्रापणं गति क्षणोतीति यक्षः।

अर्थात् जो गति को, उन्नति को हिंसित कर देता है, वह **यक्ष** कहलाता है।

रक्षः, राक्षस :-

रक्षः, राक्षस शब्द **रक्ष पालने** धातु से **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उणा. ४/१९०) सूत्र से असुन् प्रत्यय करके रक्ष्+असुन् रक्षः **प्रज्ञादिभ्यश्च**, पा.५/४/३८ सूत्र से स्वार्थ में अण् प्रत्यय द्वारा रक्षस्+अण्= राक्षस क्रमशः दोनों शब्द सिद्ध होते हैं। अथवा रहस् उपपद रहते **क्षणु हिंसायाम्** धातु से एवं **रात्रि** उपपद रहते नक्ष **व्याप्तौ** (**नक्षति व्याप्तिकर्मा**, निघ. २/१८) धातु से असुन् करके रहस्+क्षण्+असुन्=**रक्षः**, **राक्षसः** शब्द निष्पन्न होते हैं। जिनकी व्युत्पत्तियाँ हैं -

रक्षन्त्यस्मादिति रक्षः राक्षसो वा।

अर्थात् जिससे रक्षा करते हैं, बचते हैं वह रक्षः अथवा राक्षस कहलाता है।

रक्षो रक्षितव्यमस्माद्, रहसि क्षणोतीति वा, रात्रौ नक्षते इति वा। निरु. ३/४/१८

अर्थात् इससे अपनी रक्षा करनी चाहिये इस भाव वाला होने से वह रक्षः या राक्षस है, अथवा एकान्त स्थान में दूसरे को मारता है, रात्रि के समय बहुत अधिक फैलता है, वह रक्षः या राक्षस कहा जाता है।

रक्षः, राक्षस की पहचान बताते हुए कौषीतकी आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है -

असृग्भाजनानि ह वै रक्षांसि। कौषी. ब्रा. १०/४/१

अन्यकृतानि हि रक्षांसि। तै.सं. ६/३/२/२

अर्थात् असृक्=रक्त, रुधिर पीने वाले कृमि, **प्राणी राक्षस** हैं एवं विपरीत कर्म व क्रिया करने वाले राक्षस होते हैं।

गन्धर्व :-

गन्धर्व शब्द **गो** शब्द उपपद रहते **धृञ् धारणे** धातु से **गवि गन्धृञो वः** उणा. ५/७८ द्वारा व प्रत्यय तथा गन् आदेश करके गो+धृ+व **गन्धर्व** शब्द की निष्पत्ति होती है। गौ का अर्थ गाय, पशु, इन्द्रिय तथा पृथिवी आदि हैं। गन्धर्व की व्युत्पत्ति है -

गां धारयतीति गन्धर्वः।

अर्थात् जो गौ=इन्द्रियां या पृथिवी=जड़त्त्वभाव आदि को धारण करते हैं, वे गन्धर्व कहलाते हैं।

ये गन्धर्व कौन हैं ?

रूपमिति गन्धर्वा उपासते। शत.ब्रा. १०/५/२/२०

अर्थात् रूप का सेवन करने वाले, रूप की ओर आकृष्ट होने वाले कृमि आदि गन्धर्व होते हैं।

अप्सरा :-

अप्सरा शब्द की कई निष्पत्तियाँ हैं, उनमें एक व्यत्पत्ति मत्वर्थ प्रत्यय की है। अप्स प्रातिपादिक से बाहुलकात्, मत्वर्थक र प्रत्यय करके अप्स + र = **अप्सरा** शब्द सिद्ध होता है। जिसकी व्युत्पत्ति है -

अप्स इति रूपनाम, अप्सातेः अप्सानीयं भवति आदर्शनीयम् वा।

अर्थात् रूप वाले को **अप्सरा** कहते है। रूप भक्षणीय नहीं होता, दर्शनीय होता है।

ये रूप वाले कौन होते हैं ? इसे स्पष्ट करते हुए शतपथ में कहा -

अथो गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरश्चरन्ति। शत.ब्रा. ९/४/१/४

अर्थात्, अप्सरा और गन्धर्व रूप के साथ, रूप की ओर गिरते हुए, गन्ध के साथ गन्ध को फेंकते हुए विचरण करते हैं।

गन्ध इत्यप्सरस उपासते। शत.ब्रा. १०-५-२-२०

अर्थात् गन्ध वाले पदार्थों व स्थानों में रहने वाले **सूक्ष्म जन्तु अप्सरा** कहे जाते हैं।

ये सूक्ष्म जन्तु वे हैं, जो गेंदा, गुलाब, बेला, चमेली आदि गन्ध वाले फूलों के अन्दर रहते हैं। फूलों को तोड़ते ही तुरन्त नासिका आदि में प्रविष्ट होकर मस्तिष्क में रोग उत्पन्न करते हैं।

पिशाच :-

पिश, आच इन दो शब्दों के मेल से **पिशाच** शब्द निष्पन्न हुआ है। **पिश अवयवे** धातु से **इगुपधाज्ञाप्रीकिरः कः**, पा. ३/१/१३५ सूत्र से क प्रत्यय द्वारा पिश्+क=**पिश** शब्द बना है। आङ् पूर्वक **चमु अदने, भक्षणे वा** धातु से बाहुलक ड प्रत्यय करके आङ् + चम् + ड = **आच** शब्द बना। **पिश+आच=पिशाच** शब्द हुआ। जिसकी व्युत्पत्ति है -

पिशितमवयवभूतं मांसं रुधिरादिकमाचमतीति पिशाचः।

अर्थात्, जो अवयवभूत मांस, रुधिर आदि एवं अन्नादि के कणों को खाने, चाटने वाले कृमि जीव पिशाच कहे जाते हैं।

कृमि, जीव **पिशाच** होते हैं, इसका स्पष्टीकरण अथर्ववेद का मन्त्र ही कर रहा है। मन्त्र है -

यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनराभर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः॥ अथर्व.५-२९-५

अर्थात् **अस्य**=इस रोगी का, **यद् मांसम्**=जो मांस, **पिशाचै हृतम्**= मांस भक्षी रोग, कृमि, जीव आदि ने उखाड़ लिया है, खेंच लिया है, **विहृतम्** अलग कर दिया गया है, **यत् पराभृतम्**=जो अपूरणीय कर दिया है तथा **यतमत्** =जो अंश, **आत्मनः जग्धम्** = शरीर का खा लिया है, **तद्**= उस मांस को, **अग्ने** हे अग्रणी, विद्वान् = विद् चिकित्सक, अथवा अग्नि प्रधान औषधि। **त्वं पुनः** = तुम फिर से, **शरीरे आभर** = शरीर में पूर्ण कर दो। जिससे इस शरीर में, **असुम् एरयामः** = ज्ञान शक्ति को प्रेरित करें।

मन्त्र में पिशाच द्वारा खाये गये मांस को पूर्ण करने की अग्नि और

चिकित्सक से प्रार्थना की गई है। मन्त्र से स्पष्ट हैं कि वे पिशाच वे कृमि, प्राणी, जीव, एवं मांस भक्षी मनुष्य हैं, जिन्होंने मांस खा लिया है।

भूत :-

भूत शब्द क्त प्रत्ययान्त है। भू सत्तायाम्, **भू प्राप्तावात्मनेपदी** धातुओं से भाव, करण, अधिकरण में क्त प्रत्यय करके भू+क्त= भूत शब्द निष्पन्न होता है।

यद्भूतं निर्मितं येन भूयते यस्मिन् भवन्तीति वा तद् भूतम्।

अर्थात् जो हो चुका हो, बन गया है, उत्पन्न है, जिसमें होता है, वह भूत कहलाता है।

भूत संज्ञा बीते हुए काल व पदार्थों आदि की है, उत्पन्न हुई वस्तुओं की है। पञ्चभूतों से सृष्टि निर्माण होने के कारण पञ्चतत्वों की भूत संज्ञा है। उत्पन्न होने, उत्पन्न करने के कारण प्राणियों, जीवों को भी भूत कहते हैं।

यातुधान, यक्ष, रक्षः राक्षस आदि शब्दों की इन व्युत्पत्तियों से सुज्ञात है कि ये शब्द रोग जनक सूक्ष्म जन्तु, उन जन्तुओं से आहत प्राणी एवं कुत्सित कर्मों से यातुधान, राक्षसत्व वृत्ति को प्राप्त व्यक्ति विशेषों के वाचक हैं। जो किन्हीं आकार विशेष वाले किंवदन्ती रूप भूत, प्रेत, चुड़ेल आदि योनि विशेष में प्रसिद्ध हैं, जिनके विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें हैं कि वे मनुष्य तथा हस्ति आदि से भी बड़े, पर्वत के बराबर एवं डरावनी आँख, नाक और लम्बे २ दांत आदि वाले होते हैं, **उनके वाचक नहीं है।**

यातुधान, यक्ष, रक्षः राक्षस, अप्सरा आदि सूक्ष्म कृमि, जन्तु जब मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं. तब उनसे दो प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं -

१. उन्माद, २. भूतोन्माद

१. उन्माद :-

उन्माद रोग शान्त व आन्तरिक होता है। ये पूर्वोक्त पिशाच आदि सूक्ष्म जन्तु मच्छर, मक्खी, भुनगे, आदि जमघट के साथ मनुष्यों के सिर पर आँखों के सामने आते हुए एवं घावों में बैठकर तुरन्त मस्तिष्क व आँखों में आलस्य, जड़ता उत्पन्न कर देते हैं। शरीर में मादक विष का प्रवेश कर देते

हैं। मस्तिष्क के आन्तरिक तन्तु कफ में लिप्त होकर जड़ हो जाते हैं। जिससे मन मूढ़ होकर शान्त उन्माद को उत्पन्न करता है। उन्मादी व्यक्ति निन्दा, अपमान सज्जनों का असंग करने लगता है। विषय वासना, मिथ्या शोक, चिन्ता, लोभ, मोह, भोग विलास आदि वृत्तियों से घिर जाता है।

२. भूतोन्माद :-

भूतोन्माद रोग प्रलाप वाला एवं बाह्य होता है। यातुधान, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, आदि जन्तु कृमि मनुष्यों पर घावों पर आक्रमण कर विष फैला देते हैं, जिससे वात, पित्त, कफ कुपित हो जाते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क के तन्तु, क्षुब्ध और दग्ध हो जाते हैं और व्यक्ति असंबद्ध प्रलाप करने लगता है। आयुर्वेद में इसी स्थिति को **भूतोन्माद, भ्रमोद्वेग** कहा गया है। इस भूतोन्माद से ग्रस्त व्यक्ति अपने अन्दर विष के कारण विषम बातों की कल्पना करता है। पूर्व श्रुत बातों, विश्वासों एवं पूर्व संचित मलिन संस्कारों के कारण भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि हूँ, आदि भी तीव्र शोर में चिल्लाता है, गालियां देता है, नाचता, घूमता, फिरता है।

ये राक्षस, पिशाच आदि उन्माद भूतोन्माद रोगों को कैसे उत्पन्न करते हैं तथा कितने प्रकार के उन्माद हैं, इसका चरक और सुश्रुत में विस्तार से वर्णन है। उन्माद के प्रकार बताते हुए चरक ऋषि कहते हैं -

इह खलु पञ्चोन्मादा भवन्ति। तद्यथा-वातपित्तकफसन्निपाता-गन्तुनिमित्ताः।

चरक निदा. ७/३॥

अर्थात् इस संसार में पांच प्रकार के उन्माद होते हैं -

१. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. सन्निपातज, और ५. आगन्तु।

इन उन्मादों का व्यक्ति पर क्या प्रभाव होता है इसका वर्णन किया जा चुका है। गन्धर्व आदि कैसे अपना विष फैलाते हैं, व्यक्ति को पीड़ित करते हैं? इसका कथन करते हुए लिखा हैं -

स्पर्शन्तो गन्धर्वाः, समाविशन्तो यक्षाः, राक्षसस्त्वामगन्ध-माघ्रापयन्तः, पिशाचाः पुनरधिरुह्य वाहायन्तः। चरक. निदा. ७/१४॥

अर्थात् **गन्धर्व** मात्र स्पर्श करते हुए, **यक्ष** मात्र शरीर में प्रविष्ट होते हुए, **राक्षस** आम=कच्चे मांस जैसी गन्ध देते हुए, सुँघाते हुए एवं **पिशाच** रोगी का आलिङ्गन करते हुए, उस रोगी को अपनी सवारी बनाते हुए उसमें **उन्माद** उत्पन्न करते हैं।

गन्धर्व आदि से पीड़ित मनुष्य किस आचरण वाला होता है ? इसका सुश्रुत में भी पृथक्-पृथक् लक्षणों द्वारा प्रतिपादन किया है -

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी, स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥
ताम्राक्षः प्रियतनुरक्त वस्त्रधारी गंभीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः।
तेजस्वी वदति च किं वदामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥
मासासृग्विविधसुरा विकारलिप्सुर्निर्लज्जो मृशमति निष्ठुरोऽतिशूरः।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशविहारी शौचद्विड्भवति च रक्षसा गृहीतः॥
उद्ध्वस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः।
बह्वाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी व्याविग्नो भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः[१]॥

सुश्रुत उत्तर तन्त्र ६०/१०,११,१४,१५॥

अर्थात् **गन्धर्व** कृमियों से पीड़ित व्यक्ति प्रसन्नचित्त, नदी तट एवं वनों में घूमने वाला, अपने आचरण वाला, गीत, गन्धमाल्य आदि में अतिशय रूचि वाला, धीमे बोलता हुआ नाचता हुआ सुन्दर हँसी हँसता है।

यक्ष कृमियों से आक्रान्त व्यक्ति ताम्र सदृश नेत्र वाला, सुन्दर, हल्के एवं लाल रंग के वस्त्र धारण करने वाला होता है और गम्भीर स्वभाव वाला, अस्थिर चित्त वाला, चंचल, कम बोलने वाला, सहनशील तथा तेजस्वी होता हैं और यह कहता फिरता है कि वह किस को क्या दें[२] ?

राक्षस कृमियों से पीड़ित व्यक्ति रक्त, मांस आदि प्रकारक पदार्थों एवं मदिराओं का अभिलाषी, लज्जा रहित, अत्यधिक क्रूर, अतिशूर, अतिक्रोधी, अतिबलशाली, रात में विचरण करने वाला होता है और वह पवित्रता से द्वेष रखता है।

---

१. चरक चिकित्सा स्थान॥ ९-१६
२. यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयास्वम्। मन्त्र. ब्रा. १/७/१४

पिशाच जन्तु कृमियों से पीड़ित व्यक्ति ऊपर हाथ उठाये, दुर्बल, कर्कश, चिरकाल तक प्रलाप करने वाला होता है, उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है, अतिमलिन, अतिलालची होता है अतिभोजन व सूनसान स्थान पर रहने वाला शीत जल, शीतल रात्रि पसन्द करने वाला होकर उद्विग्न करता हुआ, रोता हुआ इतस्ततः घूमता रहता है।

सुश्रुत के इस प्रकरण से सुस्पष्ट है कि **राक्षस, पिशाच** आदि योनि विशेष नहीं हैं अपितु क्षुद्र, सूक्ष्म कृमि हैं जिन कृमियों के आक्रमण से मनुष्य उन जैसी चेष्टायें करने लगता है। गन्धर्व कृमि जलाशयों में रहते हैं, गूंजते हैं, पुष्पों पर नाचते, घूमते रहते हैं वैसे मनुष्य भी गन्ध जलाशयों आदि को चाहता है। **यक्ष, अप्सरा** कृमि चंचल होते हैं भीनी-भीनी ध्वनि करते हैं वैसे मनुष्य भी चंचल ध्वनि करने वाला, कम बोलने वाला प्रेमासक्त चेष्टा वाला हो जाता है। **राक्षस पिशाच** जन्तु रुधिर पीते हैं, रात्रि में घूमते हैं, दुर्गन्ध स्थानों में जाते हैं, सब वस्तुओं पर गिरते रहते हैं, दुर्बल होते हैं, ठंडे स्थानों में रहते हैं। इन से पीड़ित मनुष्य भी रुधिर, मांस, मद्य खाने पीने वाले कर्कश, लालची होते हैं। दुर्गन्ध घाव सूने स्थान तथा रात्रि को पसन्द करते हैं। **गन्धर्व कृमि** स्त्रियों पर अधिक आक्रमण करते हैं[१]।

गन्धर्व आदि कृमि हैं, योनि विशेष नहीं हैं। सुश्रुत के हिन्दी व्याख्याकार **डॉ.अनन्तराम शर्मा, हरिद्वार** की उत्तरतन्त्र में २७/२ पर की गई टिप्पणी उल्लेख्य है -

ग्रह एवं भूत-पिशाचादि की चर्चा आयुर्वेद-ग्रन्थों में अनेक स्थलों में मिलती है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद का एक अङ्ग **'भूतविद्या'** है[२]। सुश्रुत के अनुसार भूतविद्या का अर्थ है -

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्ट-चेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम्। सुश्रु. सूत्र. १/४।

---

१. प्रियो दृशं इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियः। अथर्व. ४/३७/११

२. तद्यथा-शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति। सुश्रु. सू. १/६

चरक सूत्र. ३० में **तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ** इस २८ वें सूत्र में **'भूतविद्या'** भी एक अङ्ग है। वहीं टीकाकार कहते हैं -

ग्रहभूतपिशाचाद्या डाकिनी शाकिनी ग्रहाः।
एतेषां निग्रहोपायो भूतविद्या निगद्यते॥ हा. शे.।

प्राचीन वाङ्मय को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि **भूतोऽमी देवयोनयः**, अमर को. १/१/११ **अमरकोष कार** ने जो **विद्याधर अप्सरा, यक्ष, रक्षः, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक,** सिद्ध आदि गिनाये हैं **उनसे आर्य जाति अनादि काल से प्रभावित होती आई है। इस वैज्ञानिक युग में भी भारतीय जनमानस इस अदृश्य एवं काल्पनिक प्राणियों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाया है।**

भूतविद्या के शास्त्रीय उपचार को देखते हुए भूतविद्या मानव मन के दौर्बल्य की अवस्था मात्र हैं, जिसका उपचार पूर्णतः मानसिक है।

उत्तर तन्त्र सुश्रु. २६/२/९९

डॉ. अनन्तराम शर्मा की यह टिप्पणी स्पष्ट ज्ञापित कर रही है कि **गन्धर्व, यक्ष** आदि सूक्ष्म प्राणी ही हैं **योनि विशेष नहीं** है और उनका मानव शरीर, मन पर कुप्रभाव पड़ता है।

इन उन्मादों की चिकित्सा के अथर्ववेद और आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक, सुश्रुत आदि में अनेक उपाय बताये हैं, जिनमें हींग, **सरसों, तुलसी, गुग्गल, भिलावा** आदि गरम व गन्धवाले पदार्थ महत्त्वपूर्ण हैं। इनके भक्षण और धूएँ से **राक्षस, पिशाच, गन्धर्व** आदि कृमि नष्ट हो जाते हैं। चिकित्सा विधि के वाक्य हैं -

हिंगुरक्षोघ्नम्। राजनिघण्टु। **हिंगुजन्तुघ्नम्।** धन्वन्तरि निघण्टु।
हिंगुजन्तुनाशनम्। राज निघण्टु। **भूतनाशनं हिंगु।** वै निघण्टु।

चिकित्सा के इन ग्रन्थों में **राक्षस** आदि के नाश के लिये हिंगु का निर्देश किया गया है।

अथर्ववेदीय रक्षः गन्धर्व चिकित्सा औषधि मन्त्र

इन उन्माद उत्पन्न करने वाले **राक्षस** आदि की चिकित्सा का उपचार

अथर्ववेद के बहुत से मन्त्रों में उपदिष्ट हैं। **राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा** इनके उपचार का मन्त्र है-

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे।
अजश्रृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ अथर्व. ४/३७/२॥

अर्थात् हे **अजशृङ्गि**[1] **=विषाणी**[2], गुडमार, मेषशृङ्गी, अजशृङ्गी नामक ओषधि, **त्वया**=तुम्हारे द्वारा, **वयम्**=हम, **अप्सरसः**=गन्ध वाले पदार्थों अथवा जल, जलाशयों में गति करने वाले, फैलने वाले (**अप्स इति रूपनाम**, निघ. ३/७, **अप इति उदकनाम**, निघ. १/१२) **गन्धर्वान्**=गन्धप्रिय गुञ्जनप्रिय कृमियों को, **चातयामहे**=नष्ट करते हैं, हे अजशृङ्गि ! (**सर्वान् रक्षः**)=इन सब रोग कृमियों को, **गन्धेन**=अपनी गन्ध से, **अज**=दूर फेंक और, **नाशय**=नष्ट कर दे।

अजशृङ्गी ओषधि कीटनाशक होती है इसके सेवन एवं धूम्र से जलों में, नमी वाले स्थानों में रहने वाले मलेरिया, हैजे आदि के दोनों प्रकार के नर, मादा रोग कीटाणु नष्ट होते हैं।

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के इस ३७ वें सूक्त में समस्त मन्त्र गन्धर्व आदि कृमियों के नाश का उपचार का वर्णन है।

पिशाच चिकित्सा ओषधि मन्त्र

अवकादानभिशोचनप्सु ज्योतय मामकान्।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च। अथर्व. ४/३७/१०

अर्थात् हे **ओषधे**=अजशृङ्गि ओषधि ! अथवा सूर्य विद्युत्, **अजशृङ्गी तीक्ष्णशृङ्गी** (अथर्व. ४/३७/६, **इन्द्रस्य हेतयः**, अथर्व. ४/३७/८) **अवकादान्**=अवक निकृष्ट जल शैवाल काई आदि को भी खाने वाले, **अभिशोचान्**=चारों ओर से दाह सन्ताप उत्पन्न करने वाले, **अप्सु**=शरीरस्थ रक्त आदि में रहने वाले, **मामकान् पिशाचान्**=मेरे मांस आदि अवयवों को खाने वाले पिशाच रूपी कृमियों को, **ज्योतय**=जला दे। हे ओषधि !

---

१. *अजशृङ्गि रक्तरुक्कासतिमिरश्वासव्रजविषापहा।*
कृम्यशः शूलहृद्रोगनाशिनी। निघण्टु रत्नाकर ॥

२. *विषाणी क्षीरपा कोल्यामजशृङ्ग्या च योषिति। मेदिनी कोष ॥*

सर्वान्=सब मांस खाने वाले कृमियों को, प्र मृणीहि=मसल दे, मार दे, **च**=और, **सहस्व**=इन कृमियों को बल पूर्वक कुचल दे।

जो कृमि रक्त को सुखा देते हैं, मांस खा जाते हैं, उन रोग कृमियों को अजशृङ्गि, ओषधि सूर्य और विद्युत् नष्ट कर देते हैं।

उन्माद चिकित्सा ओषधि मन्त्र अग्निष्टे निशमयतु यदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भैषजं यनिुन्मदितोऽससि॥ अथर्व. ६/१११/२॥

१. यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्। मन्त्र. ब्रा. १/७/१४॥
२. प्रियो दृशं इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियः। अथर्व. ४/३७/११
३. तद्यथा-शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति। सुश्रु. सू. १/६॥
१. अजशृङ्गि रक्तरुक्कासतिमिरश्वासव्रणविषापहा। कृम्यर्शः शूलहृद्रोगनाशिनी। निघण्टु रत्नाकर॥
२. विषाणी क्षीरपा कोल्यामजशृङ्ग्यां च योषिति। मेदिनी कोष॥

हे आतुर! **यदि**=यदि, **ते**=तेरा, **मनः** = मन, उन्माद, जन्म दोष, रोग अथवा विषयों से बद्ध है, उत्तेजित है तो **अग्निः** अग्रणी परमात्मा, यज्ञाग्नि, सूर्याग्नि, **ते निरामयतु**=उन रोगों, विषय विचारों को शान्त करें, पराङ्मुख करें। **मैं विद्वान्**=ज्ञानी तुम्हारे लिए, **भेषजम्**=ओषधि और यज्ञाग्नि को, **कृणोमि**=तैयार करता हूँ, यथा जिससे तुम **अनुन्मदितः**=उन्माद रहित, **अससि**=हो जाओ अथवा होते हो।

अग्नि स्वरूप परमेश्वर यज्ञाग्नि एवं सूर्याग्नि उन्माद ग्रस्त पीड़ित, कृमि पीड़ित की उत्तम **भेषज**=ओषधि है।

रक्षः पिशाच आदि से रोग ग्रस्त, उन्माद ग्रस्त रोगी के उपचार के लिए **अजशृङी** अग्नि सदृश उष्ण प्रकृति वाली सरसों, राई, लहसुन, गुग्गुल, ओषधि, भेषजों को अथर्ववेद एवं आयुर्वेद आदि शास्त्रों में उत्तम बताया है।

इस प्रकार **रक्षः पिशाच** आदि की परिभाषा, उनसे जन्य रोग, रोगों के उपचार आदि के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अथर्ववेद में आये **भूत, पिशाच, राक्षस आदि शब्द रोगों के कृमियों के नाम हैं** तथा तद् ग्रस्त प्राणियों के

हैं। योनि विशेष के वाचक नहीं है।

जादू टोना की कल्पना कब और क्यों ?

रक्षः, पिशाच, यातुधान आदि कृमियों से ग्रस्त रोगियों की आयुर्वेद, अथर्ववेद में विहित जो चिकित्सा लोक में की जा रही थी, उसी चिकित्सा को लोभी, लालची, दुर्मदी, मनमाने कर्मकाण्डियों ने जादू-टोना, मारण उच्चाटन, सम्मोहन, तन्त्र मन्त्र आदि नाम दे दिया और अपनी इस गर्हित अभीप्सा को अथर्ववेद के नाम मढ़ दिया।

ज्ञान, विज्ञान, उपासना के साथ कर्मकाण्ड का ज्ञान भी जीवन का उपादेय ज्ञान है, जिसके उपाख्यान प्राचीन ऋषियों के ब्राह्मण ग्रन्थ, पूर्व मीमांसा, श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थ हैं, जिन से कर्मकाण्ड की विधियाँ जानी जाती हैं। महाभारत युद्ध के समकाल प्राचीन ऋषियों द्वारा विरचित कर्मकाण्ड बोधक ऐतरेय, शतपथ, पूर्व मीमांसा, श्रौत ग्रन्थ जब वेदज्ञों के प्रमाद के कारण लुप्त हो गये, तब कर्मकाण्ड में अव्यवस्था हो गई। अथर्ववेद जिसका यज्ञ कर्म में प्रयोग नहीं होता था, उसका भी यज्ञ कर्म से सम्बन्ध जोड़ा गया और अथर्ववेद के कल्पसूत्रों का भी यज्ञार्थ निर्माण हुआ।

अथर्ववेद के मन्त्रों का विनियोग करने के लिए जो कल्पसूत्र = श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र व शुल्बसूत्र बनाये गये, उनमें **कौशिक श्रौत सूत्र**, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र, **वैतान श्रौत सूत्र, गृह्य व धर्मसूत्र**, शान्तिकल्प, **आङ्गिरस कल्प** एवं **अथर्व परिशिष्ट मुख्य हैं**[१] **।**

इन में भी **कौशिक** निर्मित श्रौत, गृह्य आदि सूत्र सबसे प्रमुख हैं। **कौशिक सूत्रों में** मन्त्रों के जितने भी विनियोग निर्दिष्ट किये गये हैं, वे प्रायः जादू टोना, तन्त्र मन्त्र, सम्मोहन, उच्चाटन आदि की काल्पनिक क्रियाओं से भरे पड़े हैं, भ्रान्तियों को फैलाने वाले हैं। कौशिक सूत्रकार बड़ा ही तान्त्रिक

---

१. *तत्र शौनकीयादिषु चतसृषु शाखासु अनुवाकसूक्तऋगादीनां गोपथब्राह्मणानुसारेण पञ्चभिः सूत्रैर्विनियोगोऽभिहित्। तानि च सूत्राणि। कौशिकम्, वैतानम् नक्षत्रकल्पः, आङ्गिरसकल्प, शान्तिकल्पश्चेति। तदुक्तम् उपवर्षाचार्यैः कल्पसूत्राधिकरणे - नक्षत्रकल्पा वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।*
तुर्य आङ्गिरसः कल्पः शान्तिमल्पस्तु पञ्चमः॥ अथर्व. सा. भा. भू. उपो. हिन्दी पृ. ७२

था। कौशिक, वैतान आदि तान्त्रिकों ने अथर्ववेद के मन्त्र, अनुवाक, प्रपाठक आदि के पूर्वापार प्रकरण की अपेक्षा किये बिना, प्रायः सभी मन्त्रों के तन्त्रात्मक अभिचारात्मक विनियोग गढ़े हैं।

कौशिक, वैतान आदि सूत्रकारों के विनियोगों के कारण अथर्ववेद जादू-टोना का वेद है, राक्षस, पिशाच, भूत आदि की झाड़ फूंक का वेद है, ऐसी-ऐसी भ्रान्त धारणायें लोक में बद्धमूल हुईं। कौशिक आदि के विनियोगों का ही अनुकरण **सायण** आदि भाष्यकारों ने किया और अथर्ववेद को जादू टोने का वेद मान लिया।

सायण ने अभिचार कर्म के संकेत अपने अथर्ववेद भाष्य में बहुत्र किये हैं। जादू, टोना आदि प्रतिपादक सायणाचार्य के विनियोग निर्देशक वाक्य के उदाहरण रूप में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के ७ वें सूक्त की भूमिका द्रष्टव्य है -

आविष्टभूतपिशाचाद्युच्चाटनार्थं फलीकरणतुषावतक्षणहोमादीनि 'आरेसौ'।

अथर्व. १/२६

इत्यपनोदनसूक्तकर्तव्यानि अपनोदनानि कर्माणि अनेन गणेन कुर्यादित्यर्थः।

अथर्व. सा.भा. १/७/१॥

अर्थात् **आविष्ट** = आवेश करने वाले **भूत, पिशाच** आदि का उच्चाटन करने के लिए फलीकरण, तुषावतक्षण, होम आदि **'आरे सौ.'** अथर्व. १/२६/१-४ इस अपनोदन सूक्त से कर्तव्य अपनोदक कर्म इस गण से करे।

प्रकृत प्रकरण में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के ७ वें सूक्त का प्रथम मन्त्र हैं-

स्तुवानमग्नं आ वह यातुधानं किमीदिनम्। त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ।

मन्त्र का देवता **अग्नि** है। अग्नि शब्द ईश्वर, सूर्य, लौकिक, अग्नि, यज्ञाग्नि, विद्वान्, आदिवाचक है। मन्त्रार्थ हुआ -

अर्थात् हे **अग्ने** = प्रकाशस्वरूप प्रभु, सूर्य, ज्ञान, प्रकाशक, विद्वान्, राजन्! तुम, **स्तुवानम्** =स्तवन करने वाले अपनी यातना कथन करने वाले, **किमीदिनम्** =अब क्या है ? अब क्या है ? इस प्रंकार के प्रश्न करके भेद

डालने वाले, **यातुधानम्** = गति अवरोधक (**या प्रापणे**) को **आ वह** = दूर कर। हे **देव=ज्ञानस्वरूप** प्रकाशक प्रभो, विद्वन्! **त्वं हि**=आप निश्चय से, **वन्दितः**=यातुधानों से पूजित होते हुए **दस्योः**=इन उपक्षीण करने वाले, **हन्ता**=नाशक बनते हो।

मन्त्र का जो तात्पर्य है वह स्पष्ट है कि पीड़ा देने वाले जो भी कृमि, प्राणी हैं उनको दूर करने में प्रभु, ज्ञानी, यज्ञ आदि समर्थ होते हैं। यहाँ मन्त्र में उच्चाटन, फलीकरण आदि करने का कोई भी संकेत नहीं है, पर कौशिक सूत्र का **चातनानामपनोदनेन व्याख्यातम्** कौ.४/१ सूत्र को उद्धृत कर आविष्ट भूत, पिशाच के उच्चाटन में मन्त्र कां सायण ने विनियोग कर दिया। जबकि पिशाच, भूत पृथक् शब्द हैं, यातुधान शब्द पृथक् है, अन्यच्च क्योंकि व्युत्पत्ति निमित्तक पृथक् है अतः अर्थ भी सबमें पृथक् है[1]।

सायण ने एतादृश उच्चाटन आदि के विनियोग दिखाकर बहुत अच्छी तरह **अथर्ववेद को जादू टोना का वेद** सिद्ध कर दिया। आगे के शोधकों, अनुवादकों, भाष्यकारों ने सायण का ही अनुकरण किया है।

सायण का जैसे विदेशी मेकडानल, ह्विटनी, ब्लूम फील्ड, ग्रिफिथ आदि विद्वानों, शोधकों ने अनुकरण किया, वैसे ही देशी विद्वान् डॉ. दास गुप्ता, पं. बलदेव उपाध्याय, डॉ. राधाकृष्णन् आदि वेद विद्वानों ने भी अनुकरण किया और अथर्ववेद को जादू टोना का वेद माना और कहा।

जादू टोना पोषक श्री आदित्य मुनि, श्री वी. उपेन्द्र राव

सम्प्रत्ति सायण की इस सोच का अनुकरण करने वालों की अभिवृद्धि करने वाले महानुभाव श्री आदित्य मुनि एवं श्री वी. उपेन्द्र राव अखाड़े में उतरें हैं। ये सायण से कम क्यों रहे?

जादू टोना के अभिचार कर्म, तन्त्र, मन्त्र, गण्डा, ताबीज आदि लौकिक प्रथायें, ईश्वरीय ज्ञान अथर्ववेद द्वारा सम्प्रेरित क्रियायें हैं, साथ ही अथर्ववेद आदि सृष्टि का ज्ञान नहीं है, अर्वाचीन है आदि कल्पित स्थापनाओं में पूरी ताकत से लगे हैं। पुस्तक पर पुस्तक लिख भेज रहे हैं। उसी क्रम में अब

---

१. पिशाच, यातुधान आदि शब्दों के अर्थ पृ. ६-९ पर द्रष्टव्य है।

पुस्तक आयी है - **जादू टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद।**

जादू टोना की वास्तविकता पुस्तक का प्रथम शीर्षक

इस शीर्षक के माध्यम से वी. उपेन्द्र राव अपनी इस पुस्तक में व्यक्त करते हैं कि सायणाचार्य ब्लूम फील्ड, कौशिक सूत्र आदि को छोड़ देना चाहिए। **जादू टोना की पद्धति तो अथर्ववेद से प्रेरित एवं बहुत बाद की है।** यह पद्धति अथर्ववेद द्वारा भारत से आरम्भ होकर, वाममार्गी, तान्त्रिकों के माध्यम से बौद्ध भिक्षुओं से चीन, जापान, सुदूर पूर्व के देशों में तथा पश्चिम में ईरान होती हुई मुसलमान फकीर, पीर बाबाओं के प्रयत्नों से समस्त अरब जगत्, रूस, यूरोप भर में ईसाई पादरियों के माध्यम से अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया आदि देश-देशान्तरों में इस समय प्रचलित है, अर्थात् जहाँ भी धर्म किसी रूप में हैं, वहाँ जादू टोना है।

मूर्तिपूजा जादू टोना का ही एक सौम्य अङ्ग है। अतः मूर्तिपूजा के विधान को भी तन्त्र कहा जाता है। पृ. १२-१३

शीर्षक समीक्षा

लेखक की यह वाक्य रचना ही स्पष्ट कर रही है कि जादू टोना के कर्मों का प्रेरक अथर्ववेद नहीं है। न मूर्तिपूजा का प्रेरक अथर्ववेद है। लेखक ने जिन जादू टोना करने वाले, वाममार्गी, बौद्ध भिक्षु, मुसलमान, फकीर, पीर बाबा, ईसाई पादरी आदि का नामोल्लेख किया है, **वे** तो **वेदों को** ही **स्वीकार नहीं** करते, फिर प्रेरणा की बात कहाँ से आ गई ? उनके मान्य ग्रन्थ तो **उड्डीश तन्त्र, धम्म पद, त्रिपिटक, कुरान, बाईबिल आदि हैं।** यदि वे वेद को आदर्श मानते होते, तो जादू टोना, तन्त्र मन्त्र आदि कर्म करते ही नहीं। अपने सुख, शान्ति हेतु यदि कुछ कर्मकाण्डीय कर्म करते तो वे सप्त सोमयज्ञ, सप्त पाक यज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ[1] करते जो आङ्गिरसों के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट किये हैं।

---

१. *सप्तसुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः।*
सर्वे ते यज्ञाः अङ्गिरसोऽपि यन्ति नूतनाः यानृषयो सृजन्ति ये च सृष्टाः पुराणैवः॥
गौ.ब्रा.पू. १/५/२५

स्वत: अथर्ववेद भी सुख शान्ति के लिए घोष के साथ यज्ञ करने का ही संदेश देता है-

देवा यज्ञमृतव: कल्पयन्ति हवि: पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यै रीजाना: स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ अथर्व. १८/४/२॥

मन्त्र का देवता **यम** है। **अग्निर्वाव यमः** गो.ब्रा. २/४

मन्त्रार्थ हुआ अर्थात् **देवाः**=विद्वान् लोग, **ऋतवः**=नियमित ऋतु, अनुकूल (ऋ गतौ), **यज्ञम्**=यज्ञ को और, **हविः**=चरू, आज्य, सोम आदि होम्य वस्तु, **पुरोडाशम्**=यवषिष्ट मोहन भोग आदि, **स्रुचः**=जुहू स्रुवा आदि चमसों एवं **यज्ञायुधानि**=यज्ञ के साधन वेदी,ऊलूखल आदि को, **कल्पयन्ति**=रचते हैं. सिद्ध करते हैं।

ऐ मनुष्यों ! **तेभिः**=उन, **देवयानैः पथिभिः**=विद्वानों के द्वारा सेवित मार्ग से, **याहि**=चलो, क्योंकि **यैः**=जिन मार्गों से, **इजानाः**=यज्ञ कर्म करते हुए व कर चुकने वाले, **स्वर्गं लोकं यन्ति**=सुखदायी जन्म को प्राप्त करते हैं।

मन्त्र का अर्थ तो स्पष्ट ही है। अथर्ववेद का यह मन्त्र सुस्पष्ट रूप से **जादू टोना** के विचार की धज्जियाँ उड़ा रहा है।

दूसरी बात **उपेन्द्र राव,** जादू टोना के प्रसङ्ग में सायणाचार्य, ब्लूम फील्ड,कौशिक सूत्र आदि को छोड़ने की बात कही है, तो इससे भी जादू टोना का कलंक अथर्ववेद के मत्थे नहीं हो सकता ? क्योंकि देशी, विदेशी भाष्यकार और कौशिक सूत्र आदि ग्रन्थों ने ही जादू-टोना की बातें कहीं और फैलायीं अथर्व वेद में नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पूर्व विश्लेषण से सब स्पष्ट है।

जादू-टोना हेतु प्रमाण :-

जादू टोना का प्रेरक अथर्ववेद है इसकी पुष्टि में यहाँ उपेन्द्र राव ने मनुस्मृति का एक श्लोक दिया है।

'श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः ॥ मनु. ११/३३॥

इस श्लोक को देकर हिंसा और विनाश, जादू टोने के दो प्रकार बताये हैं।

प्रमाण समीक्षा :-

वी. उपेन्द्र राव ने जादू टोने के द्योतनार्थ मनुस्मृति का श्लोक दिया है उसमें जादू टोना के भाव का कोई भी वर्ण, शब्द, पद ही नहीं है, फिर भी लेखक को जादू टोना की गन्ध आई है। मनुस्मृति का जिस प्रसङ्ग का यह श्लोक है वहाँ चारों वर्णों के मनुष्य राष्ट्र शत्रुओं के प्रति कैसा बर्ताव करें ? इसका प्रसङ्ग है। ब्राह्मण राष्ट्र द्रोहियों को किस प्रकार दण्डित करे ? यह इस श्लोक में बताया गया है। श्लोक का अर्थ है -

अर्थात् ब्राह्मण अङ्गिरा ऋषि द्वारा उक्त ऋचाओं का बिना विचारे प्रयोग करे, क्योंकि ब्राह्मण की वाणी ही शस्त्र है, इसलिए ब्राह्मण उन से शत्रुओं को मारे।

यहाँ श्लोक के माध्यम से मनु ने यह निर्देश दिया है कि जब कोई अपराधी अपराध करे, तब दण्ड देने के अन्य प्रकारों की अपेक्षा किये बिना उस पर मन्त्र अर्थात् विचार शस्त्र का प्रयोग करना चाहिये और ब्राह्मण को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। शस्त्र का अर्थ है शासन करने वाला। यद्यपि हथियार भी शासन करते हैं, तथापि वाणी का शासन प्रधान है।

अपराध करने वाला अपराध अज्ञानता से करता है, अज्ञानता को हटानेवाला **शस्त्र** नहीं होता, अपितु विचार वाणी, जिह्वा होती है। जैसे कि अथर्व मन्त्र हैं -

आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व। अथर्व. ८/३/२॥

अर्थात् **मूरदेवान्**=मूढ़, मूर्ख, अज्ञानता पूर्ण व्यवहार करने वालों को, **जिह्वया**=ज्ञान के द्वारा, वाणी के द्वारा, **आ रभस्व**=पकड़ो, दूर करो।

इह प्रब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति। अथर्व. ८/३/८॥

अर्थात् हे **अग्ने**=अग्रणी परमात्मन् राजन्! **यःयातुधान** = जो दूसरों को पीड़ित करने वाला है, **य इदं कृणोति**=जो इस संस्कार को नष्ट करता है, प्राणियों को मारता है **(कृञ् हिंसायाम्) सः यतमः**=वह जो कोई भी है उसे, **इह**=यहाँ, **प्र ब्रूहि**=प्रकर्ष रूप से उपदेश कीजिये।

ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः। अथर्व. ८/४/१७॥

अर्थात् **ग्रावाणः**=उपदेष्टा जन, **उपब्दैः** हृदय को छूने वाले ज्ञान के शब्दों से, **रक्षसः**=राक्षसी वृत्ति वाले लोगों को **घ्नन्तु**=दूर करें, ज्ञान से उनकी बुरी वृत्तियों को हटावें।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों से सुस्पष्ट है कि अपराधी को वाणी से ज्ञान से अपराध मुक्त करना चाहिए। ब्राह्मण ज्ञानमूर्ति होता है। ब्राह्मण **वाक्शास्त्र** का उपयोग करता है यहीं (मनु. ११-३३) श्लोक में अथर्व ऋचाओं की ओर संकेत है।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा, मनु. १/८८ श्लोक के माध्यम से ब्राह्मण की वाणी शक्ति का ही महत्व दर्शाया है।

किसी को **श्रुतीरथर्वाङ्गिरसी**, मनु. ११/३३ श्लोक के कथन में किसी भी प्रकार का भ्रम न हो जाये, अतः उसके आगे ब्राह्मण की प्रशंसा में कहा -

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। मनु. ११/३५॥

अर्थात् ब्राह्मण धर्मों का विधान करने वाला, शिष्य आदि को शिक्षा देने वाला, वेदादि प्रवचन करने वाला मित्ररूप होता है। अतः श्लोक के श्रुति अथर्वाङ्गिरसी शब्द का अर्थ ब्राह्मण की ज्ञानयुक्त वाणी ही है, जादू टोना नहीं।

वैसे भी किसी को अपने अभीष्ट स्थान, पदार्थ से दूर करने के लिए वाणी का ही प्रयोग करते हैं, वाणी ही पहला साधन होता है। किसी के क्षेत्र आदि में पशु के चले जाने पर हट हट शब्द के द्वारा ही उसको हटाया जाता है। मनुष्य अपराधी को भी पहले वाणी से ही ब्राह्मण ज्ञानी को समझाते हैं, बाद में क्षत्रिय दण्ड, हथियार उठाते हैं।

किसी भी बुराई को हटाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कुत्सित और शुष्कवाणी का प्रयोग ही हो। कुवचन तो दोष व दोषी की पराकाष्ठा पर प्राप्त होता है। कोई गलती करता है, चाहे बच्चा हो उसे मना किया जाता है, जब वह अति कर देता है तब क्रोध के वाक्य होते हैं, मान जाओ, नहीं तो मारेंगे।

श्री उपेन्द्र राव को मनु के श्लोक में जादू टोना कैसे समझ में आया यह वे ही जानें। सम्भवतः श्री उपेन्द्र राव अपने सम्बन्धियों, इष्टमित्रों पारिवारिक जनों में विरोध विरोधाभास की कभी स्थिति आने पर वे जिस वाणी का प्रयोग करते होंगे, वह वाणी उनकी जादू टोना ही होती होगी। तभी वे मनु वचन में जादू टोने को समझ पाये।

श्री उपेन्द्र राव की खूबी :-

वी. उपेन्द्र राव का एक स्वभाव है, उनका अपना दृष्टि कोण है। न वे आगे पीछे प्रकरण को देखते, न पढ़ते। बस किसी भी मन्त्र को पकड़ लेना और मनमाना अर्थ कर लेना यह उनकी खूबी है। वी. उपेन्द्र राव के कोई भी आक्षेप हों, सब **'कही की ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनबा जोड़ा'** कहावत के उदाहरण ही हैं। इसी कहावत शैली का उद्धृत मन्त्र है -

आथर्वणीएङ्गिरसीदेवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥ अथर्व.११/४/१६

इस मन्त्र को उद्धृत कर जादू टोना का उद्भव करते हुए वे लिखते हैं - 'अथर्ववेद आयुर्वेद का ग्रन्थ है। आयुर्वेद में औषध के रूप में उपयुक्त किसी भी वस्तु का प्रयोग किया जाता है, अपवित्र, पवित्र का ख्याल व परहेज नहीं किया जाता। जैसे प्राणियों के स्वेद, मूत्र, रक्त, मांस आदि मनुष्यों के लिए ओषधि रूप एवं आहार हैं, वैसे ही उनके लिए मनुष्य के है। यही चिकित्सा जादू टोना वाली है। पृ. १३॥

खूबी की समीक्षा :-

प्रकृत मन्त्र न जादू टोना का मन्त्र है और न इसमें कोई जादू टोना की गन्ध है। मन्त्र का अर्थ हैं - अर्थात् आर्थवणी, अङ्गिरसी, दैवी और मनुष्यजा औषधियाँ तभी उत्पन्न होती है, जब **त्वं प्राण**=हे प्राण दाता प्रभु ! तुम ओषधियों को पुष्ट करते हो।

मन्त्र में चार प्रकार की ओषधियों का वर्णन है -

१. आथर्वणी :-

आथर्वणी चिकित्सा **मन्त्र चिकित्सा** है। अथर्वा स्थिर सर्वनिष्ठ परब्रह्म

एवं योगनिष्ठ सिद्ध पुरुष को कहते हैं। अथर्वा वह ब्रह्म शक्ति है (**थर्वतिश्च-रतिकर्मा तत्प्रतिषेधः**, निरु. ११/२/१३), जो सर्वव्यापक है एवं जगत् को स्थिर रखती है अथवा अथर्वा वह व्यक्ति है जो मन की स्थिरता, एकाग्रता में निपुण होता है। इस ईश्वरीय ऊर्जा, आत्मीय शक्ति से जो चिकित्सा की जाती है, वह मन्त्र चिकित्सा, आथर्वणी चिकित्सा कही जाती है।

२. आङ्गिरसी :-

आङ्गिरसी चिकित्सा उस चिकित्सा को कहते हैं, जिसमें मन की इच्छा शक्ति की प्रबल प्रेरणा से शरीर के अङ्ग अवयव इन्द्रियों में विद्यमान रस को सम्बोधित कर नीरोगता का भाव सूचित किया जाता है। मेरे चक्षु ठीक है, मेरे चक्षु नीरोग हैं, मेरे श्रोत नीरोग आदि विचारों द्वारा नीरोगता का अनुभव करना आङ्गिरसी चिकित्सा है, कुशल चिकित्सक, कुशल वैद्य रुग्ण से एतादृश भाव ज्ञापित करवाते हैं, तथा स्वयं भी तुम ठीक हो, तुम्हें कोई रोग नहीं है आदि भाव ज्ञापित करते हैं।

३. दैवी :-

दैवी चिकित्सा अग्नि, वायु, सूर्य आदि पञ्चभूतों तथा अन्य दैविक पदार्थों द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह **दैवी चिकित्सा** होती है। देवों द्वारा सम्पन्न चिकित्सा दैवी चिकित्सा। यह चिकित्सा जल, चिकित्सा, सौर्य चिकित्सा, वायवीय चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा, वर्ण रंग चिकित्सा, अग्निहोत्र चिकित्सा आदि नामों से प्रसिद्ध है।

४. मनुष्यजा :-

मनुष्यजा चिकित्सा **औषधियों की चिकित्सा** है। जिन औषधियों का मनुष्य निर्माण करते हैं, वह मनुष्यजा चिकित्सा कही जाती है। चिकित्सा पद्धति के आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपेथी आदि जो प्रकार है वे मनुष्यजा चिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं। क्योंकि इन चिकित्सा ओं में जो क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, भस्म, कल्प, शल्य आदि कैप्सूल, सीरप, इंजेक्शन, ऑपरेशन आदि एवं लक्षण, हाव भाव के आधार पर औषधियाँ आदि निर्मित होती हैं, उसे मनुष्य ही तैयार करते हैं।

मन्त्र व्याख्या से स्पष्ट है कि मन्त्र में **जादू टोना** का कोई प्रसङ्ग नहीं है। अथर्ववेद पर जादू टोना का आरोप प्रक्षिप्त करने वाले वी. उपेन्द्र राव ने जादू टोना का अन्धेरे में हीं डंडा लगा दिया। अपने जादू टोना के आरोप को सिद्ध करने के लिये उन्हें कोई शब्द इंगित करना चाहिए था, पर कोई ऐसा शब्द ही नहीं जिसे वे इंगित कर पाते।

मन्त्र का **'ओषधयः प्र जायन्ते** = औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। यह चरण ही बता रहा है कि जादू टोना का कोई संकेत नहीं है। आक्षेपक महोदय आयुर्वेद ग्रन्थ की बात कर रहे हैं और आयुर्वेद ग्रन्थ में औषधि का स्वरूप बताते हुए कहा-

औषध्य : फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरूधस्मृताः। चरक सूत्र १/७२॥

अर्थात् जिनका फलों के पकने पर सूख कर नाश होता है, सूख जाते हैं, वे औषधियाँ होती हैं।

इस प्रकार फल, फूल वाले पृथिवी पर ऊगने वाले पदार्थों से जो चिकित्सा द्रव्य बनते हैं, वे औषधि कहे जाते हैं। **'प्रजायन्ते'** का तात्पर्य है जो प्रकर्ष रूप से अर्थात् कुट्टण, पेषण, मर्दन आदि क्रियाओं से उत्पन्न जो किये जाते हैं वे औषधि द्रव्य होते हैं। मल, मूत्र तो कुट्टण, पेषण आदि से तैयार ही नहीं किये जाते हैं, वे तो पहले से ही तैयार हैं, अतः उनका मन्त्र में संकेत नहीं है।

मनुष्यजाः शब्द का अंर्थ है **मनुष्यैः जायन्ते**=जो मनुष्यों के द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। नीम गिलोय, गूलर, तुलसी आदि औषधियों से वनस्पति वीरुध=लता=झाड़ आदि से तथा **भौममौषधमुद्दिष्टम्**, चरक सूत्र १/७१, सोना चांदी मणि आदि से मनुष्यों द्वारा नाना प्रकार की नाना क्रियाओं से औषधियाँ तैयार की जाती है, वे मन्त्रोक्त **मनुष्यजा औषधियाँ हैं, मल मूत्र नहीं।**

इस मन्त्र में उपेन्द्र राव को जिस किसी भी शब्द से यदि मल, मूत्र आदि के ग्रहण की गन्ध आ रही है तो भी जादू टोना सिद्ध नहीं होगा। लोहे को लोहा काटता है, **विष को विष मारता है** ये प्रसिद्ध उक्तियाँ हैं। मल,

मूत्र आदि विष हैं, रोग भी विष हैं तो विष से विष काट दिया तो आपत्ति क्या ? हाँ, उपेन्द्र राव जी ! रक्त, मांस विष नहीं हैं, अतः इनसे न चिकित्सा की जाती है, न होनी चाहिये और न अथर्ववेद में इसका श्रोत है।

जादू टोना का स्वरूप :-

इस **शीर्षक** में अथर्ववेद पर उपेन्द्र राव ने आरोपों का कूड़ा कर्दम पटका है। उस आरोप कर्दम के वाक्य हैं -

'ऋग्वेद इन्द्र-वृत्र के काल्पनिक युद्धों के वर्णनों से भरा पड़ा है, अथर्ववेद ने भी ऋग्वेद से इस सम्बन्धित पर्याप्त मन्त्र राशि को स्वीकार किया है।

शत्रु नाशक मन्त्रों का निर्माण किया जाता है एवं इन मन्त्रों का अथवा मन्त्रांशों का बार-बार मानसिक पुरश्चरण किया जाता है।

रोगों को भगाने के लिये भी मन्त्र पुरश्चरण किया जाता है, रोगों को शत्रुओं पर अथवा निरीह प्राणियों पर और स्त्री, शूद्रादि पर भी फेंका जाता है।

अथर्ववेद में उपर्युक्त पद्धति का नाम है-**कृत्या प्रयोग**।

कृमि, कीटों को कई प्रकार से मारने के लिए भी अथर्ववेद में मन्त्र हैं। जंगली-ओझा पद्धति का मूल अथर्ववेद है ही।

शीर्षक समीक्षा :- पृ. १४-१५ ॥

जादू टोना का स्वरूप इस शीर्षक में कहे गये उपेन्द्र राव के ये कर्दम रूप वाक्य, वे अपनी सम्पूर्ण पुस्तक में क्या कहना चाहते हैं ? इसका ही संक्षिप्त विवरण है, जिसकी समालोचना यथा अवसर हो ही जायेगी।

उपेन्द्र राव की समीक्षा व समीक्षा के विषय :-

जादू टोन का स्वरूप प्रकरण में अथर्ववेद पर जो जो आरोप उपेन्द्र राव ने गढ़े, उन्हीं आरोपों का **स्थानी पुलाक न्याय** का विप्रयोग करते हुए **'समीक्षा'** शीर्षक में विस्तार किया है। उन्होंने अपनी इस आरोप रूप समीक्षा के भी लम्बी कतार वाले **५६ उपशीर्षक** गढ़े हैं। यथा

१. आतङ्कवाद की झलकियाँ २. तालिबानों का आतङ्कवाद

३. देवताओं से पुलिस का काम कराना
४. शाप देना
५. इन्द्र का आतङ्कवाद
६. शाप व गालियों की बौछार
७. शत्रुनाशक = अग्नि से शत्रुनाशक बल की प्राप्ति
८. अग्नि को शत्रु-हिंसा करने का आदेश
९. अन्य-देवताओं को भी यही आदेश
१०. मांसाहारी के लिए सभी के मांस खाने का आदेश
११. वनस्पति के लिए आतङ्कवाद का उपदेश
१२. औषधि के लिए आतङ्कवाद का पुरश्चरण
१३. कृमियों के वध के विविध प्रकार
१४. आतङ्कवादीय - युद्धशिक्षा
१५. हिंसक-प्रेम = काम की शिक्षा
१६. सनध्या में तान्त्रिकमन्त्र
१७. हिंस्त्र पशुओं का वशीकरण
१८. वेदपाठियों ने अथर्ववेद को दुत्कारा
१९. विचित्र एवं मारक-वाजीकरण
२०. अञ्जनों (आञ्जनों) की झूठी बड़ाई त्रैककुदाञ्जनम्
२१. मणि धारण की झूठी प्रशंसा शङ्खमणिः, प्रतिसरो मणि- स्त्राक्त्यो मणि, वरण मणि, फालमणिः, दर्भमणि, औदुंबरमणि, जङ्गिमणि, शतवारो मणिः, अस्तृतमणिः
२२. हत्या के लिए ओषधि - वनस्पतियों को उकसाना
२३. अथर्ववेदीय - पिशाचपुरान सबका मार्गदर्शक
२४. वेदों में प्रवेश - समग्र कृत्या प्रपञ्च
२५. सद्यो-विवाहित वधू पर प्रयोग
२६. यज्ञध्वंसिनी
२७. वेदरचना के पहले ही प्रचलित
२८. कृत्या प्रयोगकर्ता को मार डालो !
२९. कृत्या को लौटाये, अर्थात् टोना !
३०. कृत्या को ऊपर करो।
३१. टोना-प्रयोग
३२. वेदकाल में भी डायन

३३. देवों-द्वारा भी कृत्या प्रयोग

३४. कृत्याप्रयोग- कृत्यापरिहरणवाले जंगली

३५. जादू-टोना वालो के शाप

३६. कच्चा मांस, कच्चा पात्र, मिश्रधान्य

३७. जादू-टोना के योग्य प्राणी-पदार्थ स्थान

३८. टोना के समस्त रूप

३९. कृत्या की उपाधि वाले पदार्थ प्रतिसरो मणिः, ओषधियाँ, शत्रुनाशक त्रिषन्धि, ब्रह्मगवी, ब्रह्मगवी के लिए राक्षसी शिक्षा, आकाशीय ग्रहोपग्रह जङ्गिड मणि आञ्जन

४०. दुःस्वप्न का दुष्टविज्ञान स्वप्न का आधार व चिकित्सा, वेदकाल में जङ्गलीविधि को अपनाना, वेदों के पदप्रयोग प्रार्थना- सविता, आदित्य, उषाः, विश्वे देवाः,सूर्य, अपामार्ग, ओषधि, आञ्जन, स्वप्न, अग्नि,आत्मसंकल्प,काम, आपः, ब्रह्मगवी, सूर्य, यम (स्वप्न)

४१. विचित्र शब्द निर्माण एक उदाहरण, दूसरा उदाहरण, ऋग्वेद का उदाहरण २ विद्वानों द्वारा किया गया अर्थ, अथर्ववेद का उदाहरण।

४२. गर्भिणीगामी-व्यभिचारियों का वध,गर्भमारकों का वध, हित गर्भ का पात न करें !

४३. तान्त्रिकों एवं फलित-ज्योतिषियों का शान्तिपाठ

४४. अथर्ववेद का अर्वाचीनत्व

४५. चारों वेदों का अपना-अपना क्षेत्र

४६. अथर्ववेद द्वारा निर्मित पद

४७. तान्त्रिक प्रसिद्धि प्राप्त यह गायत्री मन्त्र

४८. गायत्री-उपवास का माहात्म्य

४९. तान्त्रिक उपासना में गायत्रीमन्त्र

५०. तान्त्रिक-साधक की गायत्री

समीक्षा की समीक्षा :-

हठ, दुराग्रह, कल्पित विचार सत्य ज्ञान, सत्य विद्या, सत्य सिद्धान्त के बहुत बड़े शत्रु हैं। जहाँ हठ, दुराग्रह एवं काल्पनिक विचार होते हैं वहाँ भ्रष्ट मति का ही बोल बाला होता है। भ्रष्ट मति से कहे, समझे व स्थापित किये गये वाक्य, विचार सत्य का उद्‌घाटन नहीं होने देते।

हठ, दुराग्रह पर आरूढ़ **श्री उपेन्द्र रावजी** ने **'जादू टोना का प्रेरक यह तान्त्रिक अथर्ववेद** अपनी इस पुस्तक में अथर्ववेद तान्त्रिकों का वेद है, जादू टोना, हिंसा आदि का प्रेरक अथर्ववेद है, अथर्ववेद **अर्वाचीन** है आदि-आदि, अथर्ववेद पर अनेकों आरोप प्रक्षिप्त किये हैं। ये आरोप हठ, दुराग्रह के ही परिणाम हैं, यह उपेन्द्र राव जी के **'समीक्षा'** सन्दर्भ से ही भली भाँति स्पष्ट है। इन अमान्य, असत्य, हठ, दुराग्रह से युक्त भ्रष्ट मति के विचारों, आक्षेपों का **उत्तर समाधान देने का कोई औचित्य नहीं बनता** ? क्योंकि किसी हठी, **दुराग्रही विचार को बदलना** मनुष्य तो क्या ? **ब्रह्मा भी नहीं बदल सकता**। एतादृश भाव को प्रकट करने वाली सूक्ति प्रसिद्ध है -

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति। हितो. १/५६॥

तथापि **उपेन्द्र राव की मान्यतायें प्रमाणभूत न हो** जायें, ईश्वरीय ज्ञान अथर्ववेद से आस्था न उठ जाये, सत्य पर पर्दा न पड़ जाये, एतदर्थ सत्य का उद्‌घाटन करना पड़ रहा है, **'समीक्षा की समीक्षा'** की जा रही है।

आतङ्कवाद की झलकियाँ :-

इस शीर्षक में लेखक ने अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के सूक्त ७, सूक्त ८ के मन्त्रों को उद्धृत कर यह सिद्ध करने का खूब प्रयत्न किया है कि **अथर्ववेद आतङ्कवाद का जनक है**। अब उपेन्द्र राव के इन मन्त्रों में आतङ्कवाद है या नहीं ? इस का परीक्षण आवश्यक हैं।

इन दोनों सूक्तों के मन्त्रों में **आ वह, हन्ता, बभूविथ, विलापय, वृश्चतु, वि विध्यताम्, जहि** तथा **नयस्व** क्रिया आई हैं। इन में से **हन्ता, विलापय वृश्चतु, वि विध्यताम्, जहि** क्रियाएँ पीड़ा देने वालों के निमित्त से आई हैं। पीड़ा देने वाले कौन हैं जिनको हटाना है दूर करना है ? वे हैं यातुधान, किमीदिन, दस्यु। जिनका सूक्तों में निर्देश है। जिनके अर्थ हैं -

१. यातुं प्रापणं गतिं दधाति सः यातुधानः।

यातुं ताडनं पीडां दधाति, ददाति वा सः यातुधानः।

अर्थात् जो गति को रोक कर अपने अधिकार में ले लेता है, जो पीड़ा देता है वह **यातुधान** कहा जाता है।

२. किमिदानीमिति चरते। किमिदमिति वा पिशुनाथ चरते। निरु. ६/३/११॥

अर्थात् जो अब क्या है ? अब क्या है ? इस प्रकार प्रश्न करते हुए विचरता है अथवा यह क्या है ? यह क्या है ? इस प्रकार चुगलखोरी के लिए पूछता हुआ विचरण करता है, वह **किमीदिन** कहलाता है।

३. दस्युः दस्यतेः क्षयार्थात् उपदासयति कर्माणि। निरु. ७/६/२२॥

अर्थात् **दस्यु** शब्द क्षय विनाश अर्थ वाला है, क्योंकि दस्यु कर्मों में विघ्न डालता है।

इन निर्वचनों से स्पष्ट है **यातुधान** = गति, प्रगति को रोकने वाले **किमीदिन** = लालची, घातक, चुगली करने वाले और **दस्यु** = नष्ट करने वाले, कर्मों में विघ्न डालने वाले कहे जाते हैं। ये बाधक कृमि प्राणी, या इन कृमियों व प्राणियों से पीड़ित व्यक्ति आदि होते हैं।

बाधकों को हटाना क्यों आवश्यक है ? यह उपेन्द्र राव भी अच्छे से जानते हैं। उपेन्द्र राव जी की नाक पर, पीठ पर यदि मक्खी, मच्छर, कीट

आदि बैठते हैं अथवा कोई भी घातक कृमि, व्यक्ति उनके समीप आता है तो क्या उपेन्द्र राव उनकी सेवा शुश्रूषा करेंगे, हटायेंगे नहीं ? यदि उन्हें प्रतीत न होगा, तो दूसरे कहेंगे ही-अरे ! मक्खी हटाइये, भगाइये, मारिये, देखने वाले ऐसा कहते ही हैं, कहा ही जाता है। तात्पर्य हुआ घातकों को हटाना आवश्यक है।

बाधकों को हटाना आतङ्कवाद नहीं कहा जा सकता, आतङ्क वह होता है जो बिना कारण, बिना दोष किसी को दण्डित किया जाता है।

सूक्त ७ व सूक्त ८ का ऋषि **चातनः** है। **चातनः** शब्द नैघण्टुक - **चतति गतिकर्मा**, निघ. २/१४, गत्यर्थक चत धातु से णिच् में ल्युट् करके सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है-गति कराना, प्राप्त कराना, बोध कराना। ये तीनों कार्य परमेश्वर, शिक्षक, विद्वान्, राजा, वैद्य आदि के होते हैं। **अध्यात्म पक्ष** में परमेश्वर अथवा भोक्ता जीव दोषों को, बाधाओं को दूर करेगा। **राष्ट्र पक्ष** में राजा राज्य से दोषों को, बुराइयों को, घातकों को हटायेगा, हटवायेगा। बुराईयों से बचाने का, समाज को सुरक्षित करने का उसका दायित्व है, **यह आतङ्कवाद** नहीं।

अनेकार्थाः धातवः महाभाष्य १/३/१ धातुयें अनेकार्थक होती हैं। अतः हन् व्रश्च; व्यध, धुर्वी आदि धातुओं का काटना, मारना, टुकड़े-टुकड़े करना मात्र अर्थ नहीं है। इन का जहाँ हिंसा अर्थ है वहाँ **'हन हिंसागत्योः'** गति अर्थ भी है, गति के तीन अर्थ हैं-ज्ञान, गमन, प्राप्ति। इस प्रकार **हन्ता** शब्द का यह अर्थ भी है-**हन्ता**=ज्ञान करने वाला, दूर करने वाला, अधिकृत करने वाला, इसी प्रकार अन्त क्रियायें भी हिंसा अर्थ वाली नहीं हैं।

प्रसङ्गत हन्ता आदि क्रियाओं वाले उपेन्द्रराव जी द्वारा आक्षिप्त मन्त्र हैं-

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्।
त्वं हि देव वन्दियो हन्ता दस्पोर्बभूविथ॥ अथर्व. १/७/१॥
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् विलापय॥ अथर्व. १/७/६॥
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु॥ अथर्व. १/७/७॥

बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि बिध्यतम् ॥ अथर्व. १/८/२॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ॥ अथर्व. १/८/३॥

व्युत्पत्यनुसार इन मन्त्रों की अर्थ संगति इस प्रकार है -

स्तुवान. अथर्व. १/७/१, इस मन्त्र में **अग्नि**=परमेश्वर, राजा, विद्वान् आदि से प्रार्थना की गई है कि **यातुधान**=पीड़ा देने वालों को, **आ वह**=दूर ले जायें। **हन्ता दस्योः** का अर्थ है - हे दूर ले जाने वाले आप दस्यु को ज्ञान कराने वाले, दूर कराने वाले, अधिकृत करने वाले हो।

दूतो नो. अथर्व. १/७/६ में **विलापय** शब्द है। वि उपसर्ग है, **लापय** लप व्यक्तायां वाचि से बना है। **वि लापय** का अर्थ है -

यातुधानान् वि लापय + हे अग्नि ! आप पीड़ा देने वालों को व्यक्त कराओ अर्थात् छुपने न दो, प्रायश्चित्त कराओ, स्पष्ट दोष स्वीकार करवाओ।

अथैषामिन्द्रो, अथर्व. १/७/७, इस मन्त्र में **वृश्चतु** क्रिया हे, जिसका अर्थ है **काटना**। मन्त्र में इन्द्र=परमेश्वर, राष्ट्र रक्षक राजा से यातुधान के सिर काटने की प्रार्थना है। इसमें आतङ्क की क्या बात है ? यतोहि दोष जितना गहरा हो, दवा भी उतनी गहरी होती है। चिकित्सा में जो अङ्ग ठीक होने में असाध्य होता है, दवा, लेप आदि से ठीक नहीं हो सकता, उसे काटना ही पड़ता है। वैसे ही यदि कोई यातुधान = पीड़ा दायक कृमि, रोग, शत्रु आदि हैं, उसे काटा ही जायेगा, दण्ड देकर समाप्त किया ही तो जायेगा। आँख में यदि मोतिया बिंद आ ही गया तो उसका ऑपरेशन ही होगा। **उपनेत्रवान् उपेन्द्र राव** जी ऑपरेशन की आवश्यकता समझ ही रहे होंगे।

बृहस्पते वशे. अथर्व. १/८/२, मन्त्र में विविध्यतम् क्रिया है। विध्यतम् व्यध ताड़ने धातु से बना है। मन्त्र में अग्नि और सोम से प्रार्थना की गई है कि **यातुधान**=शत्रु को, **प्रतिहर्यत**=अपनी ओर आकृष्ट करो। सोम शीतल होता है, अग्नि उष्ण होती है यह सभी जानते है। इन दोनों गुणों से युक्त जगद् रक्षक, समाज रक्षक शक्तियों को यह भी आदेश दिया है कि वे वि **विध्यतम्**=यातुधान को विशेष रूप से ताड़ित करे, जिससे किसी को पीड़ा न दें। **व्यध**=ताड़न का अर्थ खत्म करना नहीं है अपितु ताड़न का तात्पर्य

साम, दाम, दण्ड भेद का प्रयोग एक दो हाथ लगाना, डंडा, घूंसा मारना है। तभी मन्त्र का **वशे लब्ध्वा** = अपने वश में करके कथन संगत हो सकता है।

यातुधानस्य. अथर्व. १/८/३, मन्त्र में **जहि** क्रिया है. जो हन् धातु से निष्पन्न है। यहाँ जहि का अर्थ मारना नहीं है, क्योंकि **नयस्व** का प्रयोग भी किया है, अतः प्राप्त करना अर्थ है। इस प्रकार मन्त्र के अन्तिम चरण का अर्थ हुआ-हे **सोमप**-शान्तिस्थापक सेनानायक! **यातुधानस्य प्रजां**=पीड़क की सन्तति को प्राप्त करो और उस, **नयस्व**=उत्तम मार्ग पर ले जाओ।

यहाँ यातुधान की प्रजा को मारने का आदेश नहीं है अपितु प्राप्त करके सन्मार्ग दिखाने का आदेश है।

तालिबान आतङ्क समीक्षा :-

यदि नो मां हंसि यद्यश्वं यदि पुरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥ अथर्व. १/१६/४

यदि नो गां हंसि. अथर्व. १/१६/४ मन्त्र में **विध्यामो** पद देखकर उपेन्द्र राव जी ने **तालिबानों के आतङ्क** की कल्पना कर ली। क्या ही मस्तिष्क है ? जो गौ, अश्व मनुष्यों को अकारण मार रहा है वह तालिबानपना नहीं है ? मारने वाले को यदि **सीसेन**=बाँधने वाले (**षिञ् बन्धने + स**), धनुर्विशेष आदि से, **विध्यामः**=हम मारते हैं, ताड़ित करते हैं (व्यध ताड़ने) यह कहना आतङ्क लग रहा है ? वाह ! क्या कमाल है ?

लगता है इन्हें गौ आदि का मारा जाना रुचिकर लगता है ? कत्लखाने तो और भी अच्छे लगते होंगे ? महोदय ! मारने वाले को ताड़ित या धमकाना तालिबानता नहीं है अपितु उचित दिशा है। मारने वाले को हड़पने वाले को **विध्यामः** पद से सही दिशा दी जा रही है। मन्त्र में तालिबानों का आतंक नहीं है।

देवताओं से पुलिस का काम कराना व हिंसा की समीक्षा

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च दिषञ्छपाति नः।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्॥ अथर्व. १/१९/४॥
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति॥ अथर्व. १/२१/२॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रूज। अथर्व. १/२१/३॥

यः सपत्नो. अथर्व १/१९/४, मन्त्र में धूर्वन्तु क्रिया है। जिसका अर्थ मारना (धूर्वी हिंसार्था:) है। इस क्रिया का सम्बन्ध **देवाः** पद से है। इस सम्बन्ध को देख कर मन्त्र की हंसी बनाते हुए उपेन्द्र राव कहते हैं कि यह देवताओं का पुलिस कार्य है। उपेन्द्र राव नहीं जानते कि न्याय क्या होता है ? दण्ड क्या होता है ?

विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः। कौ. २/४/१॥

अर्थात् विनय=शिक्षा शास्त्र विहित उचित रीति से दिया जाने वाला दण्ड प्रजा के योग क्षेम का साधक होता है।

दण्ड विधान की इस व्यवस्था को **देव**=विद्वान् ज्ञानी ही जानते हैं, वे यदि दंण्ड देंगे तो शास्त्र विहित, न्यायोचित दण्ड देंगे। अत: **देवों द्वारा दण्ड** दी जाने की प्रार्थना है।

देवों से दण्ड देने की प्रार्थना का दूसरा कारण यह है, कि दण्ड अशास्त्रज्ञ, अन्यायकारी को देने का अधिकार नहीं है। दण्ड का अधिकार ज्ञानी, न्याय व्यवस्था से परिचित व्यक्ति को ही है।

उपेन्द्र राव जी ! दण्ड विधान के इन दो भावों को ज्ञापित करने के लिए ही देवों से दण्ड की प्रार्थना की गई है। यह देवों का पुलिसिया काम नहीं। पर आप इस तथ्य को कैसे समझें ?

अधमं गमया., अथर्व १/२१/२, **वि रक्षो वि मृधो** अथर्व. १/२१/३, अथर्ववेद के इन मन्त्रों में **अधमं गमया जहि रुज** पदों को देखकर पुलिस की हिंसा सूझ गई। जबकि मन्त्रों में बाधा पहुँचाने वाले शत्रुओं को **इन्द्र**=परमात्मा, राजा आदि शासक किस प्रकार धर्षित करे किस प्रकार राष्ट्र को रक्षित करे इसका निर्देश है। मन्त्रार्थ है **जो अस्माँ**=राज्य के हम सबको, **अभिदासति**=उपक्षीण करता है, राजा को चाहिए उसे **अधमं तमः गमय**=घने अन्धकार=कैद खाने में डाले, पहुँचावे। जो **रक्षः**=राक्षस वृत्ति का है उसे **वि जहि**=विशेष रूप से दण्डित करें (**हन् का अर्थ हिंसा के साथ गति भी है।**[1]) और उसकी **हनू रुज**=जबड़ों को तोड़े। जबड़ों को तोड़ने का

१. हन् धातु की अर्थ व्याख्या पृ. २६ पर द्रष्टव्य है।

निर्देश ही सिद्ध करता है कि यहाँ मन्त्र में हिंसा का विधान नहीं है। यदि जब शत्रु को मार ही दिया गया तब जबड़ों को तोड़ने का क्या काम रहा ? अतः उपेन्द्र राव जी ! दण्ड विधान के प्रकार बताने वाला वेद का यह आदेश पुलिस की हिंसा नहीं है। जानते हैं, यदि दोषी को दण्डित न किया जाये, आवश्यक है पुनरपि न मारा जाये तब वह दण्डित न करना, न मारा जाना ही हिंसा होगी। दण्डित करने पर एवं आवश्यक होने से मार दिये जाने पर यदि अनेकों की सुरक्षा होती है, तो यह मारना अपराध का अन्त कहा जाता है, हिंसा नहीं। दण्ड विधान के प्रकार को वेद नहीं बतायेगा तो कौन बतायेगा ? अज्ञ जीव को आता ही क्या है ?

शाप देना की समीक्षा :-

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अथा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्य्ः।
अथर्व. १/२८/४॥

पुत्रमत्तु अथर्व. १/२८/४ मन्त्र में पुत्रम् स्वसारम् सम्बन्ध वाचक शब्द देखकर, **वि घ्नताम् वि तृह्यन्ताम्** क्रिया पदों को राव महोदय ने शाप देने की कल्पना में जोड़ दिया।

मन्त्र में शाप देने या लेने की कोई चर्चा नहीं है वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है, पक्षपात रहित ज्ञान है। ईश्वर, जीव, प्रकृति के स्वभावों का ज्ञापक ज्ञान है। जीव नैसर्गिक रूप से इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख, दुःख एवं ज्ञान प्राप्ति के स्वभाव वाला होता है[1]। इच्छा द्वेष जीव का स्वभावगत गुण है, जिसके कारण परस्पर लड़ाई झगड़े करता है। उस लड़ाई झगड़े में इतना अन्धा हो जाता है कि किसी को नहीं देखता। ऐसे स्वभाव वाली जो **यातुधानी** = दुःख देने वाली स्त्री, पुत्र, बहिन, नाती को झगड़े में मारती है, खाती है। इस प्रकृति के स्वभाव का तथा उससे बचने का संकेत है मन्त्र में।

अथवा परस्पर लड़ाई में जब कोई किसी को मारता है तब उसकी बुराई छुडाने के लिए झगड़े को बन्द करने के लिए व्यवहार में यही कहा

---

१. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्। न्या. द. १/१०

जाता है, हमें क्या मारते हो ? अपने पुत्र, बहिन, नाती को मारो ! ऐसी भाषा होने पर ही पीड़क उपद्रवी व्यक्ति बुराई से ठहरता और बचता है। मन्त्र में शाप का कथन नहीं है। झगड़े से बचने का उपाय बताया गया है।

इन्द्र के आतङ्कवाद की समीक्षा

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेन प्रथमजामहीनाम्। अथर्व.२/५/७

अहन्नहिम; आ सायकम्-अथर्व. २/५/५, ७ मन्त्रों में उपेन्द्र राव इन्द्र का आतङ्क बता रहे हैं जो निराधार है। मन्त्र में तो जीवात्मा किस प्रकार अपनी वासनाओं, दोषों को दूर करता है ? इसका वर्णन है। जीवात्मा किसी से नहीं हारता, लेकिन **अहि**=सर्परूप वासना शत्रु से बलहीन, बुद्धिहीन बन जाता है। जो वासना को तोड़ने का सामर्थ्य रखता है, वह इन्द्र कहाता है। उसी इन्द्र जीव के सामर्थ्य का दोनों मन्त्रों में प्रतिपादन है। इस सूक्त के पञ्चम मन्त्र के प्रथम चरण में **वीर्याणि** पद आया है जो जीव की शक्ति, सामर्थ्य का वाचक है। उपेन्द्र रावजी !यहाँ आतङ्क की कोई गन्ध नहीं है ?

शाप व गालियों की बौछार की समीक्षा :-

त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने। अथर्व. २/१२/१॥
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यताम्। अथर्व. २/१२/२॥
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षम्। अथर्व. २/१२/३॥
पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता। अथर्व. २/१२/५॥
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति। अथर्व. २/१२/६॥
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान् वाः। अथर्व. २/१४/१॥

त इह तप्यन्तां अथर्व. २/१२/१, **पाशे स** अथर्व. २/१२/२, **वृश्चामि तम्** अथर्व २/१२/३, **पापमा छतु** अथर्व. २/१२/५, **तपूंषि तस्मै**, अथर्व. २/१२/६, **सर्वाश्चण्डस्य** अथर्व. २/१४/१ अथर्ववेद के इन समस्त मन्त्रों में न शाप हैं न गालियाँ। उपेन्द्र राव के त्रिनेत्र की ही उपज में शाप और गालियाँ हो सकती हैं।

प्रथम मन्त्र में **तप्यन्ताम्** का अर्थ **जलना** नहीं है। व्यवहार में तपस्वी का अर्थ दहकती अंगीठी नहीं होता। अपितु ज्ञानी, ध्यानी, सुख, दुःख बाधा

उपेक्षी, ज्ञान प्रकाशक होता है **अतएव तप्यन्ताम्** का अर्थ प्रकाशित होवें, दीप्त होवें अर्थ है, जले यह अर्थ नहीं।

मन्त्र में **दुरिते नि यज्युताम्** = दुःख में डाला जाये यह निर्देश शाप या गाली नहीं है, यथार्थ कथन है। जो हानि पहुँचाता है, उसे दण्डित करना आवश्यक है। जीवन में आक्षेप्ता युगल बन्धुओं ने भी बहुतों को दण्डित किया ही होगा।

मन्त्र में **वृश्चामि** = छिन्न, भिन्न करता हूँ, इस मन्त्र पद में भी दोषी को दण्डित करने का ही यथार्थ कथन है। **वृश्चन** केवल हाथ पैर को अलग करने का ही नाम नहीं होता, अपितु **अपराधी से व्यवहार सम्बन्ध, खान पान पृथक् करने को भी वृश्चन कहा जाता है।** प्रकरण से स्पष्ट है कि यहाँ सम्बन्ध विच्छेद की बात है। जो न शाप है, न गाली।

मन्त्र में **पापमार्छतु**=पाप को प्राप्त करे या करता है, इस कथन का सम्बन्ध, **अपकामस्य कर्ता** = अशुभ इच्छा करने वाला, इस पद से सम्बन्धित है। **आर्छतु पद** लोट, में दीख रहा है इस लकारार्थ में भी कोई दोष नहीं है। व्यवहार में-जो पापी है, वह पाप का फल भोगे या भोगता है, यही तो कहा जाता है, जो यथार्थ है। क्योंकि अपराध कर्ता को पाप का फल मिलता ही है।

मन्त्र के **तपूंषि ... अभिसंतपाति** पद में भी कोई गाली या शाप नहीं है। जो जैसा करता है वह वैसा ही भरता है। इस यथार्थ व्यवस्था का कथन है। **द्यौः ब्रह्मद्विषमभि संतपति** = प्रकाश स्वरूप परमात्मा ज्ञान, द्वेषी को पीड़ित करता है।

अथर्व. २/१४/१, मन्त्र का **नाशयामः** पद भी गाली या शाप नहीं है। अपेक्षित गुणों से रहित जिस व्यक्ति के अन्दर विघटनकारी शक्ति है उसे हटाने का मन्त्र में प्रतिपादन है। **नाशयामः** पद **णश अदर्शने** धातु से निष्पन्न है। इस प्रकार **नाशयामः का अर्थ है-दूर करते हैं**। यह गाली या शाप नहीं। आश्चर्य है ! उपेन्द्र रावजी को नाशयामः पद में गाली का दर्शन हो गया !

शत्रुनाशक-अग्नि से शत्रुनाशक बल की प्राप्ति की समीक्षा :-

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचलनं मे दाः स्वाहा ॥ अथर्व २/१८/१
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥ अथर्व. २/१८/२
अरायक्षयणमसि पिशाच चातनं मे दाः स्वाहा ॥अथर्व. २/१८/४॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं में दाः स्वाहा ॥ अथर्व. २/१८/४
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा॥ अथर्व. २/१८/५

अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के इन मन्त्रों में उपेन्द्र राव को **अग्नि**=आग से प्रार्थना की जाती हुई दिख रही है, और **उसकी मजाक** कर रहे हैं ?

अग्नि नाम आग का ही नहीं है। **अग्निर्वै प्रजापतिः** मै.स. ३/४/६ **अग्नि प्रजापति** का नाम है, **अग्नि** राजा का नाम है, **अग्नि** नाम **माता पिता, उपदेशक, सूर्य** आदि का भी है और ये सभी **अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति** निरु. ७/४/१४, आगे ले जाने के कारण अग्नि कहे जाते हैं। पाप, दुर्वृत्ति आदि की निवृत्ति कर मार्ग प्रशस्त करते है। अतः इसे बल प्राप्ति की प्रार्थना करना कौनसी बुराई है।

भ्रातृव्य=आत्मीय शत्रु (जो अपने होते हुए शत्रुवत् बरतते हैं), **सपत्न**=अनात्मीय शत्रु, **अराय**=अदान वृत्ति, **पिशाच**=रक्त आदि खाने की प्रवृत्ति, **सदान्वा**=सदा चीखने चिल्लाने की वृत्ति जो सबको दुःख देने वाले हैं, उनसे बचने का सामर्थ्य कौन रखता है ? अग्नि रूप ईश्वर आदि ही तो सामर्थ्य रखने में समर्थ हैं। यहाँ अग्नि का तात्पर्य आग नहीं है, अपितु ईश्वर, राजा, माता, पिता आदि हैं।

अग्नि को शत्रु-हिंसा करने का आदेश की समीक्षा :-

अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विमः ॥
अग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्यः ॥
अग्ने यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥
अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥

अथर्व. २/१९/१-५॥

अग्ने यत्ते आदि अथर्ववेद के इन मन्त्रों में भी उपेन्द्र राव से अग्नि शब्द का आग अर्थ लेकर हिंसा तथा द्वेषी को तपाने का आदेश है, ऐसा दोष गढ़ते

हुए मन्त्रों का हंसी ठट्ठा किया है।

उपेन्द्र राव जी ! अग्नि शब्द के ईश्वर, राजा, जीव पूर्वोक्त अर्थ तो हैं ही, **अग्निर्वै वाक्** जै.ब्रा. २/५४, वाणी भी अग्नि होती है। वाणी के सामर्थ्य को सभी जानते हैं, शत्रुओं को घटा भी सकती है और शत्रुंओं को बढ़ा भी सकती है, इतिहास साक्षी है। इन मन्त्रों में अग्ने-हे अग्नि ऐसा सम्बोधन कर वाणी, ईश्वर, ज्ञानी, राजा आदि से प्रार्थना की गई है कि वे समाज के शरीर के व्यवहार के विद्वेषों के उचित दण्ड उचित व्यवस्था द्वारा दूर करें। इस प्रार्थना में आपको **क्या आपत्ति** हो गई ? वाणी में ऐसी शक्ति होती ही है। वाणी की शान्ति के इतिहास बड़े प्रसिद्ध है।

अन्य देवताओं को भी यही आदेश की समीक्षा

वायु यत्ते., अथर्व. २/२०/१-५॥ सूर्य यत्ते., अथर्व. २/२१/१-५॥
चन्द्र यत्ते., अथर्व. २/२२/१-५ ॥ आपो यद्व., अथर्व. २/२३/१-५ ॥

अथर्व के इन मन्त्रों में उपेन्द्र राव **वायु, सूर्य, चन्द्र, आपः** देखकर **व्यंग** कर रहे हैं - क्या ये देवता इन पुरश्चरणों से प्रसन्न होकर आदेशानुसार काम करेंगे ? पृ. १७॥

अग्नि शब्द की भाँति इन मन्त्रों में भी वायु आदि शब्द आये हैं, वे अयं वै ब्रह्म यो वायुः पवते, ऐ.ब्रा. १/२८, अयं वाव वाकपति, योऽयं वायुः पवते, का.व.शत.ब्रा. ४/१/३/१५, य एष सूर्यः तपति... प्रजा पतिरेषः, जै.ब्रा. ३/३७२, चन्द्रमा वै. ब्रह्म, ऐ.ब्रा.२/४१, वागिति चन्द्रमा, जै.उ.३/१३/१२, आपो वै प्रजापतिः, यजु. १४/९, गतिशील व्यापक, अग्रणी ईश्वर, वाणी, राजा, आचार्य आदि के अभिद्योतक हैं।

मन्त्रों में **द्वेष**=अप्रीति कर व्यवहारों, भक्तियों की भावना व्यक्त की गई है। और द्वेष को हटाने में तपः, हरः, अर्चिः, शोचिः, व तेजस साधन कहे गये हैं। ये साधन ईश्वर आदि पदार्थों में विद्यमान है। अतः यह प्रार्थना विरुद्यवली नहीं, अपितु यथार्थ है। अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत किसी भी प्रकार में सुसंगत प्रार्थना है। शब्दों के यौगिक अर्थ से वञ्चित जन तो पुरश्चरण मात्र ही समझ सकते हैं।

मांसाहारी के लिए सभी के मांस खाने का आदेश की समीक्षा

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ अथर्व. २/२४/१

श्री उपेन्द्र राव को इस मन्त्र में जादू टोना का और स्व मांस खाने का आदेश दृष्टिगोचर हो रहा है, जो वास्तविकता से परे है। यहाँ मांस खाने का आदेश नहीं है, अपितु मांस खाने वाले को धिक्कार है।

शेरभक=राक्षसी वृत्ति वाले, **किमीदिनः** = दूसरे को व्यवहित करने वाले, घात करने वाले, **यातु** = यातना देने वाले जो हैं, वे दूसरे को दुःखी, संत्रस्त न करे, अपितु अपने को संतप्त करें।

ऐसा ही धिक्कार इस सूक्त के अग्रिम मन्त्रों में भी **म्रोकानुम्रोक**= चोर, चोर के अनुयायी, **सर्पानुसर्प**=कुटिल, कुटिलों के अनुयायी, **जुर्णि**= हिंसक, **उपब्दे** = क्रूर वृत्ति, **अर्जुनी**=कपट वृत्ति, **भीरूजि**=धूर्त वृत्ति वाले जनों को दिया है, कि वे कुटिलता आदि का वर्ताव अपने से करें, दूसरों से नहीं।

इस प्रकार मन्त्रों में **न जादू टोना** है, न अपना मांस खाने का आदेश। **स्वा मांसान्यत्त**=अपना मांस खाओ, इस शब्द निर्देश में धिक्कार और व्यंग है। जादू टोना वाले इस तथ्य को समझ ही नहीं सकते।

वनस्पति के लिए आतङ्कवाद का उपदेश की समीक्षा

उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥ अथर्व. २।२५।११॥
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ अथर्व. २/२५/३॥
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥ अथर्व. २।२५।३॥
तांस्त्वं देवि प्रश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥ अथर्व. २।२५।४॥
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥ अथर्व. २।२५।५॥

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में **पृश्निपर्णी** वनस्पति के लिये आतङ्कवाद का उपदेश नहीं है, अपितु **पृश्निपर्णी** = पिठवन, दावड़ा वनस्पति का गुणानुवाद है। यह वनस्पति त्रिदोष नाशक दाह, ज्वर, रक्तातिसार उन्माद को नष्ट करने वाली है। विशेषतः धातुवर्धक, कफ नाशक, प्रसूति रोग निवारक मानी गई है।

मन्त्रगत **अभक्षि, वूचामि, नाशय, सहस्व, अनुदहन, अजीजगम्** आदि क्रियायें क्रमशः **पृश्निपर्णी** वनस्पति के भक्षण लाभ, रोग कर्तन कृमि नाश, कृमि बल पराभव, कीटाणु नाश, रोग दूरीकरण उपयोगों, लाभों को निर्दिष्ट कर रही हैं न कि वनस्पति आतङ्क फैला रही है। इन मन्त्रों में आतङ्कवाद जानना श्री उपेन्द्र राव की दृष्टि का दोष है।

ओषधि के लिए आतङ्कवाद का पुरश्चरण की समीक्षा :-

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानभिभूरसि।
प्राशं प्रतिप्राशो जहारसान् कृण्वोषधे॥ अथर्व. २।२५।१॥
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि॥ अथर्व. २।२७।७॥

अथर्ववेद के **नेच्छत्रुः प्राशम्**, अथर्व. २।२७।१, **तस्य प्राशम्**, अथर्व. २।२७।७, इन ७ मन्त्रों में उपेन्द्र राव जी की दृष्टि में **पुरश्चरण** = निरर्थक गिड़गिड़ाहट का वर्णन है। श्री उपेन्द्र राव का यह मानना अलीक है। अथर्ववेद के इन मन्त्रों में औषधि माहात्म्य तथा **प्राश** = प्रकृष्ट भोजन करने वाले पथ्य सेवी का वर्णन है। किसी भी रोग को निर्मूल करने के लिये, रोग की शक्ति को पराभूत करने के लिए औषध तथा पथ्य रूप भोजन बड़े अस्त्र और साधन होते हैं। व्यवहार में नित्यप्रति दुःख निवृत्ति के लिए मनुष्यों द्वारा औषधियाँ ही उपयोग में ली जा रही हैं और वे औषधियाँ ही रोग को दूर रखने का सामर्थ्य रखती है। रोग निवृत्ति गुण के कारण ही औषधियों का उपयोग व सेवन होता है।

प्रसङ्गगत प्रथम मन्त्र का अर्थ है कि शत्रु रूप रोग, **प्राशम्** = प्रकृष्ट उत्कृष्ट पथ्य रूप भोजन करने वाले व्यक्ति को **(प्र+अश भोजने = प्राशम्)** नहीं जीत सकते, रोग उसे नहीं सताते। औषधि रोग रूपी शत्रु का मर्षण व पराभूत करने वाली होती है। औषधि रोगों को नष्ट व शुष्क करती है।

रोगों को शुष्क व नष्ट करना औषधि का आतङ्क नहीं है अपितु उसका यह प्राकृतिक गुण है। औषधि नाम भी तभी सार्थक है[1], जब वह रोगों को दूर

---

१. औषधि शब्द का अर्थ पृष्ठ ४ पर द्रष्टव्य है।

करे, दूर करने का सामर्थ्य रखे। जो जो औषधि का सेवन करेगा, उस उस के रोग नष्ट होंगे। **औषधि का आतङ्कवाद तो तब होता जब** बिना सेवन किये ही वन, पर्वत, खेत खलिहान में खड़ी **औषधि बिना उपयोग में कमाल कर दिखाती।** पर ऐसा नहीं होता। अतः मन्त्रों में औषधियों का आतङ्क का वर्णन नहीं, किन्तु रोग निवारण शक्ति का कथन है। रोग नाशक रोग शोषक कौन सी औषधि है ? इसका निर्देश इसी सूक्त में चौथे मन्त्र में है। वह औषधि है पाटा[१]। लोक में इस पाटा औषधि के संस्कृत नाम पाठा, अम्बष्ठा, वनतिक्तिका हैं। लोक भाषा में नेमुक[२], आकनादि[३], सिकेम्पेलोस हेक्झाण्ड्रा (Cissampelos Hexandra)[४] है।

पाठा औषधि चोट, घाव, व्रण आदि की चिकित्सा में उपयोग में लायी जाती है। इसका स्वरस पान, लुगदी लेप आदि तुरन्त व्रण आदि को ठीक कर देते हैं, पीड़ित व्यक्ति को चलने योग्य बना देते हैं, साहस प्रदान करते हैं। पाठा औषधि वात, पित्त, ज्वर रोगों तथा कफ जन्य कण्ठ रोगों की नाशक औषधि है[५]। भावप्रकाश आदि आयुर्वेदिक निघण्टु में पाठा औषधि के अनेक गुण लाभ बताये गये हैं।

मन्त्रों में आये **जहि, कृणु** आदि सदृश लोट् लकार के शब्दों को मात्र आदेशात्मक ही अर्थ नहीं होता। **व्यत्ययो बहुलम्** पा. ३।१।८५ सूत्र व्यवस्थानुसार लोट् लकारस्थ शब्दों की अर्थ संगति प्रकरणानुसार वर्तमान कालिक भी होती है। अतः **अरसान्, जहि, कृणु** इन क्रियावाची शब्दों की शुष्क, नीरस बना देने वाले रोगों को औषधि नष्ट करती है, शुष्क करती हैं, ऐसी वर्तमान कालिक प्रकरणगत अर्थ संगति सुसंगत है।

दूसरी बात आतंक तो रोग, प्रहार आदि का होता है। औषधि तो उन

---

१. *पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्यः स्तरीतवे।*
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्णोषधे॥ अथर्व. २।२७।४॥

२. *हिन्दी, बंगाल।* ३. *मराठी बंगाल।* ४. *लेटिन।*

५. *पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः।*
हन्ति शूलज्वरछर्दिकुष्ठतिसारहृद्रुजः।
दाहकण्डूविषश्वासकृमिगुल्मगर व्रणान्। भावप्रकाश निघण्टु॥

बाधाओं को हटाती है। **हटानेवाला आतङ्की नहीं** होता, औषधियाँ रोग दूर करें, कष्ट दूर करें यह **मानसिक भावना आतङ्क नहीं,** अपितु रोग निवारण की संपोषक भावना है। **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु;** यजु. ३४।१-६ मन्त्र दुःख निवारक मानसिक भावना का ही संप्रेरक है।

इस प्रकार नेच्छत्रुः आदि अथर्व मन्त्रों में न आतङ्कवाद है, न पुरश्चरण है। औषधियों के सामर्थ्य का, यथार्थवाद का कथन है।

कृमियों के वध के विविध प्रकार की समीक्षा :-

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनश्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥ अथर्व. २।३१।१॥
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥ अथर्व. २।३१।२॥
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन। अथर्व. २।३१।३॥
शिष्टानशिष्टान् नि तरामि वाचा। अथर्व. २।३१।३॥
शृणाम्यस्य पृष्टीरवि वृश्चिामि यच्छिरः ॥ अथर्व. २।३२।२॥
अगस्त्यस्य ब्राह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥ अथर्व. २।३२।३
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा। अथर्व. २।३२।४
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि।
भिनद्मि हे कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ अथर्व. २।३२।६

इन्द्रस्य या मही., अथर्व. २।३१।३, **शृनाम्यस्य** अथर्व. २।३१।२, **अगस्त्यस्य** अथर्व. २।३२।६ **अल्गण्डून्.** अथर्व. २/३१/२, **अल्गण्डून् हन्मि. शिष्टानशिष्टान्.** अथर्व. २-३१-३ अथर्ववेद के इन मन्त्रों के कृमि शब्द अनेक विभक्तियों में आया है और कृमियों के नाश के लिए पिनष्मि, जम्भयामसि, हन्मि, नितरामि, शृणामि, वृश्चामि, हतः, हतमाता, हतभ्राता, हतस्वसा, वि तुदायासि, भिनद्भि क्रियायें आई है। जिनका अर्थ हैं पीसता हूँ, नष्ट करता हूँ, मारता हूँ, छिन्न करता हूँ, हिंसित करता हूँ, विदीर्ण करता हूँ, पीड़ित करता हूँ।

मन्त्रों में **कृमि** शब्द एवं **पिनष्मि** आदि क्रियाओं को देखकर उपेन्द्र राव जी ने पृथिवी पर रेंगने, सरकने, उड़ने, चलने आदि क्रियाओं वाले कृमि

ही आतंकी समझ लिये और उनको पीसने, मारने आदि क्रियाओं का सम्बन्ध जोड़कर अथर्ववेद को आतङ्कवादी, निर्दयता की शिक्षा देने वाला ठहरा दिया।

३१ वें सूक्त का देवता **मही** है और ३२ वें सूक्त का देवता **आदित्य** है। मही इति द्यावापृथिवीनाम, निघ. ३।३०, **मही** द्युलोक और पृथिवी लोक को कहते हैं। **आदित्य** सूर्य को कहते हैं। ३१ वें सूक्त के **मही** शब्द का सम्बन्ध सूक्त के प्रथम मन्त्र में आये इन्द्रस्य पद के साथ है। **इन्द्रस्य** पद के इन्द्र शब्द का अर्थ है परमेश्वर तथा सूर्य है।

परमेश्वर यदि पृथिवी पर चलने, फिरने वाले कीट, पतङ्ग, चींटी आदि कृमियों को पीसता, मारने वाला होता तो वह कृमियों की उत्पन्न ही क्यों करता? इसी प्रकार ३२ वें सूक्त का देवता **आदित्य**=सूर्य स्थूल कीट, पतङ्ग, चींटी आदि को मारता, पीसता होता, तब तो संसार में आप्रलयान्त कोई भी चींटी आदि प्राणी ही नहीं दिखते।

३१ वें, ३२ वें सूक्त के मन्त्रों में स्थूल कीट, पतङ्ग, चींटी आदि कृमियों के **पिनष्मि** = पेषण करने का वर्णन नहीं है, अपितु शरीररान्तर्गत रोग जन्य अतिसूक्ष्म कीटाणुओं के पेषण, मर्षण का प्रतिपादन है, जिन्हें अंग्रेजी में जर्म्स (Germs) कहते हैं। रोगजनक कीटाणु अदृष्ट होते हैं, वे अतिसूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर नहीं होते। बाहर के कीट, पतङ्ग, चींटी आदि कृमि जैसे चलते, फिरते दिखते हैं, वैसे अन्दर के कीटाणुं नहीं दीखते।

रोगजनक कीटाणुओं की चिकित्सा विधि का इन दोनों सूक्तों में निर्देश है। इन्द्र रूप परमेश्वर की **मही**=द्यौ; अर्थात्, सूर्य कृमियों का **दृषत्**=विदारण करने वाला (**दृ विदारणे**) बहुत बड़ा साधन है। शरीरान्तर्गत कीटाणुओं के विभिन्न प्रकार हैं, उन प्रकारों का भी इन सूक्तों में परिगणन है

यथा-**अल्गण्डुः**=शरीर के अवयवों में संचरण करने के सामर्थ्य वाले, गण्ड स्थल की क्रिया को रोकने वाले[1]।

ये मुख से या गुदा द्वार से निकलते हैं।

---

१. *अलं समर्थं, गडि, वदनैकदेशे, शोणितमांसदूषकाः। अलं वारणे, गडि वदनेकदेशे।*

शलनुः=अत्यन्त विचलित, कम्पित करने वाले।
(शल गतौ, शल संचलन संवरणयोः।)
कुरूरुः=कुत्सित शब्द करवाने वाले (कुत्सितं रावयन्ति ये ते)
अन्वान्त्र्यम्=आंतो में होने वाले
शीर्ष्ण्यम्=सिर में विकार उत्पन्न करने वाले
पार्ष्टेयम्=पसलियों, फुफुसियों में होने वाले (पृष्टिषु पार्श्वावयवेषु भवाः)
व्यध्वरम्=विविध द्वार बनाने वाले अनेक मार्गों से निकलने वाले
अवस्कवम्=अन्दर से अन्दर प्रविष्ट होने वाले (अव+स्कुञ् आप्रवणे)

शरीर में प्रविष्ट होने वाले एतादृक अनेकों कृमियों का इन सूक्तों वर्णन हैं। उन कृमियों की चिकित्सा के माध्यम हैं-**मही**=सूर्य अथवा **मही**=पृथिवी सदृश दृढ़ जितेन्द्रिय की ओज शक्ति, **वचसा**=वचा औषधि उगते हुए व अस्त होते हुए सूर्य की रश्मियाँ, वैद्य आदि। इस प्रकार शरीरान्तर्गत कृमियों के विनाश की चिकित्सा पद्धति का इन सूक्तों में प्रतिपादन है। आतङ्कवाद अथवा निर्दयता आदि की उल्टी शिक्षा देने का इन मन्त्रों में कोई भी संकेत नहीं है। निरोग होने के लिए कृमियों का नाश आवश्यक है। उपेन्द्र राव यदि कृमियों से बचना नहीं चाहते तो न बचे, दया पूर्वक कृमियों को पालते रहें।

आतङ्कवादीय-युद्धशिक्षा की समीक्षा :-

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभि शस्ति भरातिम्।
स सेना मोहयतु परेषां निर्हसांश्च कृणवज्जातवेदाः॥ अथर्व. ३।१।१॥
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान्॥ अथर्व. ३।१।२॥
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥ अथर्व. ३।१।३॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम्॥ अथर्व. ३।१।४॥
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।
अग्नेर्वातस्यध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय॥ अथर्व. ३।१।५॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा।

चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता॥ अथर्व. ३।१।६॥

अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून्॥ अथर्व. ३।१।५॥

अग्निर्न : शत्रून्, अथर्व. ३।१।१, **यूयमुग्रा** अथर्व. ३।१।२, **अमित्र सेनाम्** अथर्व. ३।१।३, **प्रसूत इन्द्र** अथर्व. ३।१।४, **इन्द्र सेवाम्** अथर्व. ३।१।५, **इन्द्रः सेनाम्** अथर्व. ३।१।६, **अभि प्रेहि** अथर्व. ३।२।५, अथर्ववेद के इन मन्त्रों के माध्यम से श्री उपेन्द्र राव का आरोप है कि **अथर्ववेद में शत्रुओं को अधर्म युद्ध के द्वारा** निर्दयता पूर्वक मार डालने का आदेश है। जो **आतङ्कवाद का सूचक** है। अन्यच्च अथर्ववेदीय युद्धशिक्षा का निर्देश करने वाला अथर्ववेद रामायण, महाभारत काल में नहीं था, इसलिए राम, रावण व महाभारत युद्ध में धर्मयुद्ध हुआ। अथर्ववेद तो वर्तमान के **सम्प्रदाय-वादियों का वेद** है।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में आतङ्कवादी युद्धशिक्षा का दर्शन करने वाले उपेन्द्रराव जी को ज्ञात हो कि युद्ध के साम, दाम, दण्ड, भेद चार प्रकार बताये गये हैं। प्रजा की रक्षा के लिए विनियुक्त राजा, सेनापति, सैनिक आदि रक्षक गण युद्ध के इन चार प्रकारों के विना प्रजा की समुचित रक्षा नहीं कर सकता। इन प्रकारों में दण्ड प्रकार अर्थात् शत्रु को मारना, आक्रमण करना वह प्रकार है, जिसके माध्यम से शत्रु की समस्त शक्तियाँ व उपाय नष्ट किये जाते हैं।

प्रजा की सुख शान्ति, राज्य के धन वैभव की समृद्धि, एवं सुख समृद्धि के साधनों की अभिवृद्धि के लिए शत्रु से युद्ध करना, शत्रुओं को खदेड़ना राजा का अनिवार्य कर्म है। रोग जैसा हो तदनुकुल दवा ही उसका उपचार कर सकती है, अतः शत्रु की शक्ति को दूर करने के लिए **प्रतिदहन** = भस्म करना, **मोहयुत**=मूर्च्छावस्था में पहुँचाना, **निर्हस्तान्** = शत्रु सेना को आयुध रहित हाथों वाला करना **आतङ्कवाद नहीं है, शत्रु को उचित दवा** है।

मृणत=हिंसित करना, **सहध्वम्**=परास्त करना, **नाथितः**=पटकना, **प्रतिदहतम्**=शत्रु की प्रत्येक शक्ति को भस्मसात् करने का आदेश देना, **वज्र प्रमृणन्**=वज्र शत्रुओं की शक्ति को काटता हुआ आगे बढ़े, यह विचार

बनाना, **जहि**=नष्ट करना, **मोहय मोहयतु वा**=शत्रुसेना को मूर्छित करना, **नाशय**=छुपाना, **घ्नन्तु**[1]=मारने, आक्रमण करने का आदेश देना, **अग्निः आदत्तान् चक्षूंषि**=उष्मता वाले पदार्थ शत्रुओं की आंखों को चुँधीया देवें ऐसी भावना बनाना, **निर्दहः हत्सु**=हृदयों में जलन पैदा हो, ऐसा उपाय करो, **तमसा शत्रून् विध्य**=अन्धकार से शत्रुओं को ढक देने का संकेत करना आदि निर्देश, शत्रु को जीतने और विजय को प्राप्त करने के आवश्यक और उचित युद्धनीतियाँ हैं।

शत्रु के पराजित करने के ये वेदोक्त निर्देश विजय प्राप्ति के आवश्यक उपाय हैं। तभी तो जिन्होंने अथर्ववेद पढ़ा नहीं। अथर्ववेद की शकल तक नहीं देखी। वे भी अपनी जीत के लिये इन्हीं युद्धनीतियों को अपनाते हैं। **कारगिल, संसद भवन,** अक्षर धाम, **ताज होटल** आदि स्थानों पर आततायियों ने क्या किया था ? वही न ! जो जीत के लिए आवश्यक है। शत्रु को हटाने के वेदोक्त उचित उपाय यदि आपको आतङ्कवाद लग रहे हैं, तो **पाकिस्तान के आतङ्कवादियों** से अपने (श्री राव) को भुनवा देना चाहियें।

आक्षेप्ता महोदय ! यह तो बाहर के युद्ध की बात है और यदि अन्दर कैंसर, पथरी, मोतियाबिंद, काला पानी आदि का अन्दर भयङ्कर युद्ध होता है, तब भी तो काटना ही पड़ता है न ! इस प्रकार वेदोक्त युद्ध की नीतियाँ, युद्ध की शिक्षायें शत्रु की उचित दवा और व्यवस्था है, आतङ्कवादी युद्ध शिक्षा नहीं। आतङ्कवाद की व्याख्या पृष्ठ २६ पर देखें।

श्री उपेन्द्र जी का अथर्ववेद को **अर्वाचीन** बताना, **सम्प्रदायवादी** नाम को लेकर **महर्षि दयानन्द** और **आर्य समाज को कोसते** हुए अथर्ववेद को सम्प्रदायी व अर्वाचीन सिद्ध करने की धमाचौकड़ी करना शशश्रृङ्ग के समान है। ऋग, यजुः, साम तीनों वेदों की भांति अथर्ववेद भी आदिसृष्टि में दिया हुआ ईश्वरीय ज्ञान है। इस की अन्तः साक्षी ऋग्वेद, यजुर्वेद, एवं सामवेद में विद्यमान है। तद्यथा -

---

१. हन् हिंसागत्योः धातु की विशेष व्याख्या पृष्ठ २६ पर देखें।

१. सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ऋ. १।१००।४॥

अर्थात्, जो **अङ्गिरोभिः**=अथर्ववेद पढ़ने वालों के साथ अथर्वाङ्गिरस मन्त्रों से विशेष रूप से युक्त है, जो सुख वर्षा के कारण से सुख सींचता है, जो मित्रों के साथ मित्र है, ऋग्वेद पढ़े हुए के साथ ऋग्वेदी है, जो **गातुभिः**= गायन, सामवेद के मन्त्रों से उत्तम है, श्रेष्ठ है, वह महान **इन्द्र**=ईश्वर, विद्वान् हमारी रक्षा करें।

२. अथर्वभ्योऽवतोकाम्। यजु. ३०।१५॥

अर्थात् **अवतोकाम्**=गर्भ, सन्तान जिसकी बाहर निकल गई हो, उस स्त्री या गौ आदि को, **अथर्वभ्यः**=अथर्ववेदी को दें।

ऋग्वेद के मन्त्र में **अङ्गिरोभिः** पद अथर्ववेदियों के लिये है। यदि अथर्ववेद ऋग्वेद के पीछे बना होता, तो ऋग्वेद में अथर्ववेद का नाम न होता। अतः अथर्ववेद ऋग्वेद के साथ ही प्रदत्त ज्ञान है।

यजुर्वेद में **अथर्वभ्यः** पद अथर्ववेदियों के लिये आया है, अतः अथर्ववेद यजुर्वेद के साथ ही सम्प्राप्त ज्ञान है। अथर्ववेद अन्य विद्याओं के साथ **शल्य चिकित्सा** आदि चिकित्साओं का प्रधान वेद है, इस कारण यजुर्वेद में रोगी को अथर्ववेदी को देने को कहा है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
ऋ. १०।९०।९॥, यजु. ३१।७॥, अथर्व. १९।६।१३॥

वेद के इस मन्त्र में चारों वेदों के नाम एक साथ आये हैं, तथा **यज्ञात् तस्मात्** आदि शब्द आये हैं, जिनसे, स्पष्ट है कि चारों वेदों की उत्पत्ति उसी पूज्य, उपास्य परमात्मा से हुई तथा एक साथ हुई।

इस प्रकार **छन्दांसि**=अथर्ववेद सामवेद के साथ ही अनादि संप्राप्त है।

अथर्ववेद सहित चारों वेद एक साथ प्राप्त हुए हैं, इसकी अन्तःसाक्षियाँ वेद के अतिरिक्त उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि वैदिक वाङ्मय में अनेकों

स्थानों पर विद्यमान हैं[१]।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद को अर्वाचीन सिद्ध करना उपेन्द्र राव की महती भूल व भ्रान्ति है।

हिंसक-प्रेम (काम) की शिक्षा, की समीक्षा :-

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे।

इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि॥ अथर्व. ३।२५।१॥

इस शीर्षक में श्री उपेन्द्र राव अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के जिस २५ वें सूक्त को लेकर बैठे हैं, उसमें दम्पतियों के बीच की बात है। गार्हस्थ धर्म के व सन्तानोत्पत्ति के संदेश हैं।

प्रसङ्गगत सूक्त में ६ मन्त्र हैं। उनमें से **उत्तुदः**, अथर्व. ३०।२५।१ प्रथम मन्त्र को उद्धृत करके श्री उपेन्द्र राव अथर्ववेद पर कामातङ्क का आरोप लगाते हुए लिखते हैं कि पुराणों में जो **मन्मथ**=कामदेव के काम बाण का विश्लेषण है, वह आतङ्कवाद है, जिसका प्रेरक अथर्ववेद है। प्रेम सात्त्विक व स्वच्छ होता है। प्रेम काम इषु=बाण रूप हिंसक नहीं होता। प्रेम इषु हिंसक अथर्ववेद के कारण बना है।

उपेन्द्र रावजी भोले बनकर क्यों जीव तत्त्व के राग=इच्छा, द्वेष[२] आदि गुणों को अनदेखा कर रहे हैं ? यह तो वे ही जानें !

वेद का कोई भी ज्ञान, कोई भी निर्देश ऐसा नहीं है, जिसे ईश्वर ने अग्रणी बनकर थोपा हो। वेद में वही ज्ञान, वे ही निर्देश हैं, जो स्वतः ईश्वर में तथा जीव व प्रकृति में घटते हैं। ईश्वर, जीव, प्रकृति की जो क्षमतायें हैं, उनके जो पृथक् पृथक् स्तर हैं, उन्ही का ज्ञान वेदों में सन्निविष्ट है।

काम=राग, प्रेम, इच्छा मनुष्य में ही होती है, ऐसा नहीं है। मनुष्य

---

१. *एक साथ चतुर्वेदोपलब्धी विषय का विस्तार विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या पुस्तक के १, ६, १४, १७, २८, ३६, ५२, ५९, ९२ आदि प्रश्नोत्तरों में द्रष्टव्य है। छान्दो. ७।१।२, बृहदा. १।२।५, मुण्ड. १।१।५, महाभा. द्रोह. ५२।५२, शत.ब्रा. १४।४।१०।३ आदि।*

२. *अ. इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्। न्याय. १।१।१०*

ब. रागद्वेषाधिकाराच्चासूयेर्ष्या मायालोभादयो दोषाः भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रति विद्धमैथुनान्याचरति। न्याय. वात्स्या. भा. १।१।२॥

सहित पशु, पक्षी आदि की जितनी भी विभिन्न योनियाँ हैं सभी का यह काम स्वाभाविक गुण है। काम का स्वरूप भी सभी योनियों में एक जैसा है। सर्व योनियों में **काम**=राग, **इषु**=गतियुक्त[1] उत्तेज स्वरूपवाला ही होता है भेद यह होता है कि मनुष्य को छोड़ अन्य योनियों के जीव कामासक्ति में स्वातन्त्र्य नहीं रखते ईश्वराधिष्ठित स्वाभाविक रीति से चलते रहते हैं, पर मनुष्य **काम**=राग, इच्छा में स्वातन्त्र्य रखते हैं। विवाह करके मनमानी करते हैं, अति करते हैं, पशु आदि ऐसा नहीं करते।

बहुत से ऐसे दम्पती होते हैं, जिनका गठबन्धन तो हो गया पर स्वभाव न मिलने से हृया से परस्पर प्रेम और स्नेह का अभाव है, वे प्रेमासक्ति, रागासक्ति को उद्भव नहीं कर सकते। कुछ ऐसे भी दम्पती हैं, जिनका परस्पर गठबन्धन भी है, प्रेम और स्नेह भी है पर सन्तति उत्पत्ति न करने का संकल्प ठाना हुआ है। ऐसे दम्पतियों के लिए अथर्ववेद के इस काम सूक्त में प्रेम संवर्धन का संदेश है कि ऐसे दम्पतियों में **कामस्य इषुः**=राग संवर्धित हो, गतियुक्त हो।

वेद का यह निर्देश आतङ्कवादी हिंसक प्रेमसन्देश नहीं है, उलझे मस्तिष्कों को सही दिशा का मार्गदर्शन है। काम पक्ष का वेद का यह मार्गदर्शन यदि पुराण आदि में उल्लिखित है, तो दोष क्या है ?

ऐसे बिगड़े मस्तिष्क वालों के लिए मनु ने भी कहा है -

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
प्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजननं ना प्रवर्तते ॥ मनु. ३।६१॥

अर्थात् यदि स्त्री पुरुष परस्पर रुचि न रखें, स्त्री पुरुष को प्रसन्न न करे, तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में प्रजनन=उत्पत्ति का सामर्थ्य कभी उद्भूत नहीं होगा।

दाम्पत्य धर्म के उत्तर दायित्व निर्वहन का संदेश देते हुए तैत्तिरीय आरण्यक में कहा है -

---

1. *ईष गतिहिंसादर्शनेषु, इष + उण् इषेः किच्च, उणा. १।१३ सूत्रेण आदेः ईकारस्य ह्रस्वत्वम् गुणा भावश्च।*

प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। तै.आ.७।२।११॥

अर्थात् प्रजा के विस्तार उत्पत्ति का तन्तु टूटना नहीं चाहिये।

इस प्रकार अथर्ववेद का यह **काम सूक्त कामातङ्क का प्रेरक सूक्त नहीं** है, यह उपेन्द्र राव भली भाँति समझ लें।

सन्ध्या में तान्त्रिक मन्त्र की समीक्षा :-

इस शीर्षक में आक्षेपक उपेन्द्र राव ने महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट सन्ध्योपासना विधि में अपनी टांग अड़ाने की चेष्टा की है। जिन्हें न तो **सन्ध्या** शब्द का अर्थ ज्ञात है, और न सन्ध्या के प्रकारों का ज्ञान है। इन्होंने मात्र एक सम्प्रदाय शब्द रटा हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि वे जिस सम्प्रदाय, सम्प्रदायवादी शब्दों का दिन रात रट लगा रहे हैं, उसका भी अर्थ पता नहीं। **सम्प्रदाय** तो वह होता है, जहाँ **वेद के आदेशों का विधिवत् संदेश नहीं होता**। वैदिक धर्म तो वेद, व वेदोक्त संदेशों का अनुपालक धर्म है, दयानन्द वैदिक धर्म के अनुयायी हैं, सम्प्रदायवादी नहीं।

ब्रह्मयज्ञ, ब्रह्मोपासना के लिये किन किन तैयारियों, सावधानियों की आवश्यकता है ? उन आवश्यकताओं के निर्देश में एक सावधानी मनसा परिक्रमा शीर्षक मे माध्यम से अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के २७ वें सूक्त के ६ मन्त्रों को महर्षि दयानन्द ने विनियुक्त किया है। उन मन्त्रों की आनुपूर्वी लगभग एक जैसी ही है। जिन में से उदाहरण स्वरूप प्रथम मन्त्र उपेन्द्र राव ने उद्धृत किया है -

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व. ३।२७।१॥

वैदिक सन्ध्या के इन मन्त्रों की हंसी बनाते हुए लिखा-

'सम्प्रदायवादी सन्ध्या वन्दन में इषवः है, **द्वेष है, जम्भ है, चूँ चूँ का मुरब्बा है,** जादू टोना के तान्त्रिक मन्त्र हैं, पुरश्चरण है। पौराणिकों का सन्ध्या वन्दन भी तान्त्रिकों द्वारा ही प्रदत्त है। परन्तु उन्होंने कुछ सुधार करके वैष्णवी सन्ध्या, श्री वैष्णवी सन्ध्या तथा ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी सन्ध्या

आदि बना लिये तान्त्रिक अथर्ववेदी सन्ध्या के चक्र में न फंसे । पृ. २०॥

वाह ! **क्या बढ़िया विवेचन** है । और क्या बढ़िया **ऋषि दयानन्द के प्रति** किया गया **विद्रोह** ! उपेन्द्र राव ने वस्तुतः यदि पौराणिक सन्ध्या पर विचार किया होता तो कभी अनर्गल बातें न लिखते । जानते हैं ?, पौराणिक सन्ध्या में क्या ?

१. पौराणिक सन्ध्या पद्धति में आचमन की भरमार है । आचमन के लिए विनियुक्त मन्त्रों का आचमन से कोई सम्बन्ध नहीं है । उनके आचमन मन्त्र हैं -

१. ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात् ऋ. १०।१९०।१-३ अघमर्षण[1] मन्त्र ।

२.ओ३म् केशवाय नमः स्वाहा । ओ३म् नारायणाय नमः स्वाहा । ओ३म् माधवाय नमः स्वाहा । ये हैं पौराणिकों के आचमन मन्त्र, जिनका आचमन से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

२. पौराणिक सन्ध्या में अंगुठी आदि पहनना, भस्म, तिलक आदि लगाना आदि कर्म विहित हैं, जो उपासना में अनावश्यक हैं ।

३. पौराणिक सन्ध्या में गायत्री मन्त्रस्थ **भर्गः** पद का सम्बन्ध सूर्य से जोड़ना सूर्य को देखकर खड़े होकर घूमना और पुण्डरीकाक्ष आदि शब्दों द्वारा कमल सदृश नेत्रों वाले व्यक्ति का स्मरण करना आदि विहित है, जो ब्रह्मोपासना में निरर्थक है ।

४. प्राणायाम विधि में गायत्री मन्त्र और **आपो ज्योती रसोम्.** तै.आ. १०।२७ मन्त्रों का अनुचित विनियोग है, क्योंकि इतने मन्त्र प्राणायाम करते हुए रोचक, पूरक, कुम्भक क्रियाओं में एक श्वास में नहीं बोले जा सकते ।

५. पौराणिक विधि में एक पैर से खड़ा होकर सूर्य देव की परिक्रमा, नर्तन करना उपासना का बाधक कर्म है ।

६. पौराणिक सन्ध्या में गायत्री देवी के विसर्जन करने का कर्म भी

---

१. *ऋतं चेति तृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिः अनुष्टुप छन्दः । भाववृत्तं दैवतम् । अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।*

विहित है, जो निरर्थक है, क्योंकि गायत्री कोई आकृति वाली स्त्री नहीं है, जिसकी स्थापना और विसर्जन किया जाये।

ये **पौराणिक सन्ध्या** के अनुचित विनियोगों के उदाहरण मात्र हैं। उपेन्द्र राव को पौराणिक सन्ध्या अच्छी लग रही हैं, तो उसे करे, नाचें, कूदें।

महर्षि दयानन्द ने अथर्ववेदोक्त जिन मनसा परिक्रमा मन्त्रों का सन्ध्या में विनियोजन किया है, महर्षि का यह विनियोजन अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि द्वारा किया गया है। **उपासना का प्रयोजन है परब्रह्म से मेल और परब्रह्म का साक्षात्कार।** ये दोनों कार्य तब तक नहीं हो सकते, जब तक मन में ईर्ष्या, द्वेष आदि का मैल भरा हो। जैसा कि वात्स्यायन महर्षि ने कहा है -

रागद्वेषप्रबन्धोच्छेदे अपवर्गः। न्याय. वात्स्या.भा. ४।१।२॥

अर्थात् राग द्वेष के प्रवाह के उच्छेद होने पर ही **अपवर्ग** = मोक्ष, ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

महर्षि दयानन्द ने द्वेष रूपी मैल को दूर करने के लिये अथवा मैल रूपी द्वेष से दूर होने के लिए ही अथर्ववेदोक्त मन्त्रों का विनियोग किया है। **द्वेष** हटाने के साधन हैं **इषु** और **जम्भ**। इन साधनों के माध्यम से ही द्वेष को दूर किया जा सकता है।

मनसापरिक्रमा के ६ मन्त्रों में जो **इषु** बताये हैं, वे हैं - **१. आदित्याः**= प्राण और किरण, **२. पितर**=ज्ञानी, विद्वान्, **३. अन्नम्**=पृथिवी, पृथिवीस्थ अन्न, औषधि आदि पदार्थ, **४. अशनिः**=विद्युत्, **५. वीरुधः**=वृक्ष, लतायें, **६. वर्षम्**=वर्षा के बिन्दु।

आदित्य आदि इषु[1] हैं। इन्हें इषु क्यों कहते हैं, क्योंकि ये रक्षा रूप प्राप्ति के साधन है और पाप के नाशक हैं। ये आदित्य आदि इषु लौकिक **इषु**=बाण सदृश नहीं है।

१. **आदित्याः** = प्राण हैं। ये प्राण परमात्मा ने दिये हैं, ये प्राण हमारे जीवन की रक्षा करते हैं। हम आंख से अंधे, कान से बहरे होकर जी सकते हैं, पर प्राण विहीन होकर नहीं, अतः प्राण हमारे रक्षक हैं, इषु हैं।

---

१. *ईषति गच्छति हिनस्ति वा शत्रून् इति इषुः। उणा. १।१३॥*

प्राणो मृत्युः[१]= प्राण ही मृत्यु है। दुराचारी व्यक्ति जब प्राण शक्ति को नष्ट कर देता है, तब परमात्मा उसके प्राण छीनकर उसकी मृत्यु भी कर देता है। अतः प्राण पापों के नाशक भी हैं।

आदित्याः=सूर्य किरणें[२] जीवन की रक्षा करती हैं। अतः किरणें रक्षक इषु हैं।

सूर्य की किरणें पाप और पापियों की नाशक भी हैं। पाप अन्धकार में होते हैं, सूर्य के प्रकाश में पाप नहीं होते, अतः सूर्य की किरणें पापनाशक इषु हैं।

२. **पितरः**=ज्ञानी, विद्वान् दूषित व आयु नाशक दुर्गुणों से हटाकर अच्छे मार्गों पर लगाते हैं हमारी रक्षा करते हैं, अतः पितर = ज्ञानी रक्षकरूप इषु हैं।

पितर=ज्ञानी, पाप, अत्याचार, चोरी करने वाले को शासकीय नियमों द्वारा दण्ड देते व दिलवाते हैं, अतः ज्ञानी इषु रूप हैं। दण्ड के साधन हैं, दण्ड देनेवाले भी हैं[३]।

३. **अन्नम्** = पृथिवी आदि पदार्थों से हमारी रक्षा होती है। पृथिवी में उत्पन्न अन्न आदि भक्षण[४] करके ही हम हृष्ट पुष्ट सबल होते हैं, अतः पृथिवी, अन्न आदि पदार्थ रक्षा रूप इषु हैं।

पृथिवी आदि पदार्थ जहाँ हमारे जीवन के रक्षक हैं, वही दण्ड के साधन भी हैं। जो अनियमित जीवनवाले, चोरी से अन्न आदि पदार्थों का ग्रहण करने वाले हैं, उनके लिये अन्नादि इषु रूप पदार्थ घातक भी हैं।

४. **अशनिः**=विद्युत् परमात्मा का वह इषु है जो अंधकार को छिन्न भिन्न कर हमारी रक्षा करता है। विद्युत् युक्त शास्त्रों से शत्रुओं पर विजय

---

१. *अथर्व. ११।१।११॥*

२. *उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।*
ये अन्तः क्रिमयो गवि। अथर्व २।३१।१॥

३. *गूहतां गुह्यं तमो वियात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥ ऋ. १/८६/१०*

४. *व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्॥ अथर्व. ६-१४०-२*

प्राप्त होती है, अतः विद्युत् इषु रूप रक्षक है[१]।

विद्युत् पापियों के नाश की साधन भी है। आकाशीय विद्युत् पापियों पर गिरकर[२] उनकी मृत्यु करती है, अतः विद्युत् पापियों का दण्ड रूप इषु हैं।

५. **वीरुधः** = वृक्ष, लताओं से हमारी रक्षा होती है[३]। ये पदार्थ हमारे रोगों के दूरीकरण के साधन हैं, अतः वीरुध हमारे रक्षा रूप इषु हैं

वीरुध औषधियाँ पापी रोगियों के नाश की साधन भी हैं[४]। औषधियाँ पापियों को नष्ट कर देती हैं, जीवन प्रदान नहीं करती, अतः रोग दूरीकरण की औषधियाँ पापियों के नाश की दण्ड रूप इषु भी हैं।

६. **वर्षम्** = वर्षा का जल अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न कर हमारी रक्षा करता है, पापियों का विनाश होता है, अतः वर्षा जल रक्षारूपी इषु है।

जीवनप्रद वर्षा जल जब प्रभूत होता है, तो जीवन नष्ट भी कर देता है, पापियों का विनाश होता है, अतः वर्षा जल दण्ड रूपी इषु भी है।

इस प्रकार सन्ध्योपासक इन आदित्य, प्राण, किरण, ज्ञानी जन, अन्नादि पदार्थ, विद्युत्, प्रकाश, औषध और वर्षा के बिन्दुओं से रक्षित होता हुआ परमात्मा के प्रति अनुरक्त हो जाता है और द्वेष आदि शत्रुओं से मुक्त हो जाता है।

द्वेष हटाने का दूसरा साधन है जम्भ। जम्भ[५] का अर्थ हैं - **न्याय, दाढ़, नाश** आदि। जब आदित्य आदि इषुओं से काम नहीं चलता है, द्वेष का समन्वय नहीं होता है तब न्यायकर्ता न्याय रूप, दाढ़ रूप, नाश रूप द्वेष को दूर करता है। जिसका जितना दोष है, उनको वैसा वैसा दण्ड देकर परमात्मा श्रेष्ठों की रक्षा करता है और दुष्टों का विनाश करता है।

---

१. *सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः। ऋ. १।१४३।५॥*
२. *अ. दिव्ये वाशनिर्जहि। ऋ. १।१७६।३॥*
ब. ऋतस्यधीतिर्वृजिनानि हन्ति। ऋ. ८।२३।८, निरु. १०।४।२६॥
३. *अ. ओषधी रथो कृणोमि भेषजम्। अथर्व. ५।७।५॥*
ब. ओषधयो वीरुधस्तृना। अथर्व. १।७।२१॥
४. *वीरुत्क्षेत्रिय नाशनी। अथर्व. २।८।२॥*
५. *जभि नाशने।*

यह **विशेषता है अथर्ववेदोक्त सन्ध्या** मन्त्रों की है। अथर्ववेदीय ये मन्त्र जादू टोना या तन्त्र नहीं हैं, हमारी रक्षा के संदेशक हैं। **उपेन्द्र राव** इस विशेषता को न जानना चाहते हैं और न द्वेष हटाना चाहते हैं। यदि वे हटाना नहीं चाहते, तो न चाहें। **पौराणिक सन्ध्या के चक्कर में फंसे रहें। केशव, माधव** को जपते रहें।

हिंस्र पशुओं का वशीकरण की समीक्षा :-

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः।
हिरुग्धि यन्ति सिन्धवो हिरुग्देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः। अथर्व ४।३।१॥
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु॥ अथर्व. ४।३।२॥
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान्॥ अथर्व. ४।३।३॥
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आदुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्॥ अथर्व. ४।३।४॥
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम्॥ अथर्व. ४।३।५॥
पूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः।
निम्रुक्ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः॥ अथर्व. ४।३।६॥
यत संयमो न वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रेजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्॥ अथर्व. ४।३।७॥

इस शीर्षक में **उदितस्त्रयो.** अथर्व ४।३।१, **परेणैतु.** अथर्व. ४।३।२, **अक्ष्मौ च ते** अथर्व. ४।३।३, **व्याघ्रं दत्वताम्** अथर्व. ४।३।४, **यो अद्य स्तेन** अथर्व. ४।३।५, **मूर्णा मृगस्य.** अथर्व. ४।३।६, **यत्संयमो.** अथर्व. ४।३।७

अथर्ववेद के इन मन्त्रों का सम्बन्ध श्री उपेन्द्र राव ने मारण, तोरण, उच्चाटन तथा वशीकरण, जादू टोना में जोड़ा है। चतुर्थ मन्त्र में आये यातुधान शब्द को अपने शिकंजे में लेकर अथर्ववेद को जादू टोना का घर बताते हुए वे लिखते हैं -

'संस्कृत भाषा में 'यातुधान' का अर्थ राक्षस है। सही तो है, ये जादू टोना वाले राक्षस ही तो हैं। इन्हीं के काले-कारनामों से अथर्ववेद भरा पड़ा है। हम इन सब कारनामों का अब उद्‌घाटन करने वाले हैं।

प्रकृत मन्त्रों के प्रथम व चतुर्थ मन्त्र में तस्कर व स्तेन शब्द देखकर उन्होंने एक और आश्चर्यकारी निष्कर्ष निकाल डाला -

'**तस्कर** व **स्तेन** शब्द पुरुष के लिये आये हैं, इससे प्रतीत होता है कि जादू टोना वाले दुष्ट लोग जंगलों में निवास करते थे। उनके आगे के कथन भाव है-उन जंगलवासी जादू टोना वालों को संप्रदायवादी अर्थात् वैदिक धर्मी नहीं खोज पाये, अतः वर्षों से वे कहते आ रहे हैं, कि अथर्ववेद में जादू टोना नहीं है।

७ वें मन्त्र में **इन्द्रजाः, सोमजा आथर्वणम्** शब्दों को देखकर एक और घटिया अनुमान लगाया कि अथर्ववेद से पूर्व भी जादू टोना के काले कारनामे प्रचलित थे। **उन दुष्टों में प्रसिद्ध था इन्द्र**। धन्य है उपेन्द्र राव जी ! आपके अनुमान, एवं मन्त्र विनियोग सम्बन्ध.

अथर्ववेद के इन प्रकृत मन्त्रों में जादू टोना, मारण मोहन उच्चाटन आदि किसी भी प्रकार की न चर्चा है, न संकेत।

प्रथम मन्त्र में **व्याघ्र** = आघ्राण मात्र से प्राणियों को नष्ट करने वाले जो बाघ पशु हैं तथा **पुरुषः** = बाघ सदृश पुरुष हैं एवं **वृकः** = प्राण घातक भेड़िया है उनसे सुरक्षित रहे, उनसे बचे रहें, इसकी प्रभु से मानसिक प्रार्थना की गई है कि वे व्याघ्रादि घातक हमारे सामने **हिरुक्** = निम्न अधोगति को प्राप्त हों, उनका बल सामर्थ्य, जैसे **सिन्धवः** = नदियाँ नीचे की ओर बहती हैं, बैसे नीचे झुका रहे। हमारे ऊपर घातक मनुष्य, बाघ, भेड़िया हावी न हों।

द्वितीय मन्त्र में **वृकः**=भेड़िया, **तस्करः**=चोर, **दत्वतीः रज्जुः**= तीक्ष्ण रस्सी की आकृति वाला सर्प एवं **अघायुः**=पाप, हिंसा करने वाला पापी, **परेण अर्षतु** = दूर हो जायें इसकी प्रभु से प्रार्थना की गई है।

तृतीय मन्त्र में व्याघ्र के आघात से बचने के लिये बाघ के नेत्र, मुख, नख नष्ट करने का आदेश है, जिससे व्याघ्र हिंसा न कर सके। यहाँ मन्त्र में

हिंसा के साधन व्याघ्र के नख आदि नष्ट करने का विधान है उनको नष्ट करने का नहीं।

चतुर्थ मन्त्र में हिंसा करने वाले **व्याघ्रम्**=बाध, **स्तेनम्**=चोर, **अहिम्**= सर्प, **यातुधानम्**[1] =पीड़ा देने वाले प्राणी कृमि, रोग और **वृकम्**= भड़िये को नष्ट दूर करने का उपदेश है। क्योंकि इन घातक, हिंसक उपद्रवियों से रहित राष्ट्र में ही प्रजा सुखी हो सकती है। **पञ्चम मन्त्र** में **स्तेनः**=चोर का निरादर **तथा पथाम् अपध्वंसनेन**=मार्ग नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को वज्र से नष्ट करने का निर्देश है। जब अन्यों को संत्रस्त करने वाले चोर को निरुत्साहित, निराद्रित कर दिया जाता है और पापी का वध कर दिया जाता है तभी राज्य में सुख, शान्ति हो सकतीं है, अतः वेद का एतादृश विधान है।

षष्ठ मन्त्र में गोधा=गोह आदि हिंस्त्र पशुओं से सुरक्षित होने के लिए दाँत **पृष्ट्यः**=पसलियाँ, **शीर्णाः**=तोड़ देने का उपदेश हैं=हिंस्त्र पशुओं से तभी बचा जा सकता है जब उनके हिंसा के साधन, दान्त आदि **मूर्णाः**= असमर्थ हो जायें।

सप्तम मन्त्र में स्वस्थ, प्रसन्नचित्त बनने का उपाय बताया है और वह उपाय है संयम=आत्म शासन, जितेन्द्रियता। संयम से क्या लाभ होता है ? इनमें प्रथम लाभ है-**इन्द्रजाः** संयम करने वाला **इन्द्र**=इन्द्रियों का स्वामी होता है, दिव्य शक्तियों का उत्पादक होता है। द्वितीय लाभ होता है **सोमजाः**= संयमी वीर्य शक्ति के सामर्थ्य वाला बनता है, सोम शक्ति को उत्पन्न कर लेता है, संयभ का तृतीय लाभ है **आथर्वणम्**=अथर्वा, संयमी व्यक्ति एकाग्र चित्त होकर एवं **व्याघ्रजम्भनम्**=व्याघ्र के समान हिंसक वृत्तियों को नष्ट कर देता है।

मन्त्र में संयम करने का उपदेश है। संयम आत्म शासन की संज्ञा है। वियमः उच्छृखलता संयम नहीं कही जाती। संयम राजा, प्रजा सबके लिये आवश्यक है।

---

१. यातुधान शब्द की व्याख्या पृष्ठ ६,७,२५ में देखें।

इस प्रकार इन मन्त्रों में न तो जादू टोना, मारण तोरण, उच्चाटन वशीकरण का कोई संकेत है और न ही अथर्ववेद में काले कारनामों की भरमार है। अतः श्री उपेन्द्र राव अथर्ववेद के काले कारनामों में उद्घाटन में सदा असमर्थ रहेंगे। हाँ। स्वतः अपने मस्तिष्क में विद्यमान जादू टोना और उनके काले कारनामों के उद्घाटन में अवश्य उपेन्द्र राव समर्थ हो सकते हैं, जिनसे हमें कोई लेना देना नहीं।

वेदपाठियों ने अथर्ववेद को दुत्कारा, की समीक्षा :-

अथर्ववेद काले कारनामों का वेद है, इसकी सिद्धि के लिए उपेन्द्र राव ने इस शीर्षक में हेतु हेतु दिये हैं- १.'अथर्ववेदीय काले कारनामों के कारण वेदपाठियों ने इस वेद को न कण्ठस्थ करके रक्षण किया और न ही घर में रखा। यह वेद तान्त्रिक ओझाओं, राजाओं एवं सम्प्रदायवादियों अर्थात् आर्य समाजियों के घरों में ही पाया जाता है।

२. **यह तान्त्रिक वेद है**, अतः जटिल कुन्ताप सूक्त को अथर्ववेद के अन्तिम भाग में समाविष्ट किया गया है। पृ. २१॥

उपेन्द्र राव का अथर्ववेद को काले कारनामों का वेद बताने वाला प्रथम हेतु उनकी बुद्धि की उपज मात्र है। देश में ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी वेदपाठियों के साथ अनेकों अथर्ववेदी वेदपाठी विद्यमान है, चतुर्वेदी वेदपाठी विद्यमान हैं। काशी, आन्ध्र, महाराष्ट्र, बैंगलूर, चैन्नै, भोपाल, भीलवाड़ा, राजस्थान आदि अनेकों प्रदेशों, स्थानों में अथर्ववेदी, वेदपाठी दृष्टगोचर हैं। महर्षि दयानन्द के निर्वाण महोत्सव के अवसर पर ऋषि उद्यान अजमेर के प्राङ्गण में कई वर्षों से मैं स्वतः चारों वेदों के वेदपाठियों की परीक्षा ले रही हूँ। उस परीक्षा में अथर्ववेद के वेदपाठियों ने कुन्ताप सूक्त सहित सम्पूर्ण अथर्ववेद को सुनाया और परीक्षा दी और उत्तीर्ण हुए हैं। अतः सिद्ध हुआ कि अथर्ववेद को तान्त्रिक काले कारनामों का वेद मानना और वेदपाठियों द्वारा अथर्ववेद को कण्ठस्थ न करना, अपने घर में न रखना आदि कथन व्यर्थ हैं। ऋग्., यजुः, साम वेदों की भाँति अथर्ववेद भी वेदपाठियों द्वारा कण्ठस्थ किया जाता है। **तान्त्रिक वेद नहीं** माना जाता।

उपेन्द्र जी का अथर्ववेद को तान्त्रिक काले कारनामों का वेद बताने वाला द्वितीय हेतु भी निरर्थक है।

कुन्ताप सूक्त :- अथर्ववेद के २० वें काण्ड के १२७ सूक्त से १३६ सूक्त तक के १० सूक्तों को कुन्ताप सूक्त कहा जाता है। इन १० सूक्तों में १४+१६+२०+२०+२०+१६+६+६+१३+१६=१४७ मन्त्र हैं। **अथर्ववेद के इन १० सूक्तों को कुन्ताप नाम** गोपथ ब्राह्मण उत्तर भाग ६/१२-१६ कण्डिका, वैतान श्रौत सूत्र ६।२।१६, आश्वलायन, श्रौतसूत्र ८।३।७, शाङ्खायन ब्राह्मण ३०।५, शांखायन श्रौतसूत्र १२।१३७ आदि ग्रन्थों ने दिया है।

अथर्ववेद का कुन्ताप सूक्त तान्त्रिकों के इन्द्रजाल को प्रकट करने वाला नहीं है, अपितु **कुत्सित, दुरितों, दुर्वत्तियों व भावनाओं को दूर करने का संदेशक सूक्त है, अध्यात्म का समायोजक सूक्त है।** अध्यात्म पापमुक्त, निष्कलंक, शुभकर्म युक्त होने पर प्रस्फुटित होता है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड से लेकर १९ काण्ड पर्यन्त रोग, पाश आदि से मुक्ति, अन्न, राज्य, औषधि आदि की उपलब्धि, विराट्, ज्येष्ठ ब्रह्म आदि की प्राप्ति, दीर्घायुष्य की शक्ति आदि संदेशों का उपदेश होने के अनन्तर २० वें काण्ड के कुन्ताप सूक्त में **अध्यात्म**=उपास्य कौन है[१] ? उपासक कौन है[२] ? ज्ञानी कौन है[३] ? परमात्मा के सान्निध्य से ही जीवात्मा सामर्थ्यवान् बनता है[४], प्रकृति से जीव घिरा रहता है[५]। चित्त की विक्षिप्त भावनाओं को परमेश्वर नष्ट करता है[६], आदि का प्रतिपादन है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, शरीर, मन, बुद्धि आदि की विवेचनायें हैं।

कुन्ताप सूक्त का अथर्ववेद के अन्तिम २० वें काण्ड में होने का अध्यात्म विषय ही कारण है। तान्त्रिक काले कारनामे नहीं। कुन्ताप सूक्त अध्यात्म विषयक है यह कुन्ताप शब्द के निर्वचन से ही स्पष्ट है। तद्यथा-

---

१. अथर्व. २०/१२७/१-३ *२. अथर्व. २०/१२८/६-११*
३. अथर्व. २०/१२८/१-५ *४. अथर्व. २०/१२८/१२-१६*
५. अथर्व. २०/१२९-१३२ सूक्त। *६. अथर्व. २०/१३३/१*

१. कुयं ह वै नाम कुत्सितं भवति, तद्यन्तपति तस्मात् कुन्तापा:[१], तत् कुन्तापानां कुन्तापत्वम्। तपन्तेऽस्मै कुयानिति, तप्तकुय: स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति। गो.ब्रा.उ.२/६/१२ ॥

अर्थात् **कुय** शब्द का अर्थ है कुत्सित, निन्दित, पाप आदि उस निन्दित को जो तपाता है, उस मन्त्र समुदाय को **कुन्ताप**=पाप को भस्म करने वाला कहते हैं। वह कर्म कुन्तापों का **कुन्तापत्व**=पापनाशकत्व है। ये कुन्ताप मन्त्र यजमान के पाप भस्म करते हैं और पाप भस्म किया हुआ वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाता है।

२. कु=कुत्सितमात्रं पापताप दुरित दुर्गुणादिकं तापयन्ति, दहन्ति इति कुन्तापानि, **कुन्तापानि** च तानि **सूक्तानि** चेति **कुन्तापसूक्तानि।**

अर्थात् **कु**=कुत्सित मात्र पाप, ताप, दुरित, दुर्गुण आदि को जो तपाते, जलाते हैं (**तप दाहे**) वे **कुन्ताप** कहे जाते हैं। इस प्रकार के पाप जलाने वाले मन्त्र समुदाय **कुन्ताप सूक्त** कहे जाते हैं।

३. **कुम्=पृथिवीं,** पार्थिवविकारान् जडत्वादिकान् दु:खदुर्व्यसनानि तापयन्ति दहन्ति ऐश्वर्ययुक्तं च कुर्वन्तीति **कुन्तापानि, तथाविधानि सूक्तानि कुन्तापसूक्तानि।**

अर्थात् **कु**=पृथिवी स्थित जड़त्वादि विकारों, दु:ख, दुर्व्यसनो को जो तपाते, जलाते हैं, अनन्त ऐश्वर्य से भर देते हैं (**तप ऐश्वर्ये**) इस प्रकार के सूक्त **कुन्ताप सूक्त** कहे जाते हैं।

कुन्ताप शब्द के इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद तान्त्रिक वेद नहीं है। इसी कारण अथर्ववेद को **वेदपाठियों ने नहीं दुत्कारा**। आक्षेपक की दुत्कारने की कल्पना नितान्त निरर्थक है।

विचित्र एवं मारक-वाजीकरण, की समीक्षा :-

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव ने मैकडालन, ब्लूम फील्ड आदि पाश्चात्त्यों का पादानुयायी बनकर 'पुरुषेन्द्रिय का वाजीकरण जादू टोना दुष्ट तान्त्रिक

---

१. *तप सन्तापे, ऐश्वर्ये, दाहे वा धातो: कर्मण्युपपदे अण् प्रत्यय: कुय शब्दस्य छन्दसे यलोपे मुमागम: कुन्ताप:।*

विधि है' इन शब्दों में विषय की स्थापना करते हुये अपने विषय में तान्त्रिकता का पुट देकर जो अश्लील बीभत्स पक्तियाँ लिखी हैं, वे उपेन्द्र राव से अतिरिक्त अन्य व्यक्ति कदापि लिखने का दुःसाहस नहीं कर सकता। इन्द्रियाँ है यह सत्य है इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम नग्न घूमने लगे। उपेन्द्र राव ने यहाँ अपनी दूषितता को उजागर करने के लिये दोष रूप में अथर्ववेद के मन्त्रों को **३ किश्तों** में उपस्थित किया है

पहली किश्त के मन्त्र हैं -

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे।
तं त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम्॥ अथर्व.४।४।१॥
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना॥ अथर्व. ४।४।२॥
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः॥ अथर्व ४।४।३॥
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम्।
सं पुमंसमिन्द्रख वृष्ण्यस्मिन् धेहि तनूवशिन्। अथर्व. ४।४।४॥
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम्॥ अथर्व. ४।४।५॥
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः॥ अथर्व. ४।४।६, उ.६।१०१।२॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा॥ अथर्व. ४।४।७, उ. ६।१०१।३॥
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च।
अथ वृषभस्य ये वाजास्तानस्मिन धेहि तनूवशिन्॥ अथर्व. ४।४।८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः। अजायमानो बहुधा विराजते।
तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम्। मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥

तै. आ. ३।१३।१-२॥

उपेन्द्र राव ने **यां त्वा**. अथर्व.४।४।१, **उदुषा** अथर्व ४।४।२, **यथास्म** अथर्व ४।४।३, **उच्छुष्मौ** अथर्व ४।४।४, **अपां रसः** अथर्व ४।४।५, **अद्यासे अद्य** अथर्व. ४।४।६, ६।१०१।२, **आहं तनोमि** अथर्व. ४।४।७, ६।१०१।३, अश्वस्या, अथर्व. ४।४।८, अथर्ववेद के इन मन्त्रों में तथा **प्रजापतिश्चरति**

तै. आ. ३।१३।१-२ इस वचन में वाजीकरण की प्रार्थना व आदेश हैं, जिसको करने वाला तान्त्रिक वैद्य है, ऐसा विशिष्ट शब्दान्वेषण लिखकर **मन्त्रों की** खूब **हँसी** बनाई है।

वास्तविकता को न समझना, वस्तु स्थिति की हँसी उड़ाना उन **छद्मवेशियों का काम** होता है, जो दिन रात अपनी न्यूनता को दूर करने के लिये उस कार्य को करते भी जाते हैं और झूठ भी बोलते जाते हैं। उसी कोटि के **ये राव साहब** भी हैं।

मनुष्य अल्पज्ञ है, इसकी पुष्टि के लिये प्रमाण इकट्ठे करने की आवश्यकता नहीं, मनुष्य की अल्पज्ञता सर्व सुविदित है। यदि जो इस बात से अनभिज्ञ हों, वे **अकबर** और **असीरिया के राजा असुर बैनीपाल** के उन परीक्षणों को पुनः पलट लें। जिन से यह परीक्षित हुआ कि गुरु, वंश व समाज आदि की ओर से ज्ञान न मिलने पर मनुष्य पशु समान रहता है। असुर बैनीपाल और अकबर ने ४-५ बच्चों को जंगल में रखकर यह निचोड़ निकाला था कि जंगली पशुओं के साथ अनेक झुण्ड में रहनेवाला मनुष्य किसी भी ज्ञान, किसी भी संस्कृति, किसी भी सभ्यता को जानने में असमर्थ होता है और पशुवत् जीवन जीने के लिये बाध्य होता है।

ऐसे अल्पज्ञ जीव के लिये ईश्वर ने जहाँ प्रकाश और आह्लाद के लिए सूर्य चांद तारे बनाये हैं, जल के लिए नदियाँ झरने प्रपात बहाये हैं, भोजन के लिए वृक्ष, गेहूँ, जौ, मसूर आदि अन्न उगाये हैं, पोषण के लिए गौ, बकरी आदि पशु रचे हैं, उठने बैठने आदि क्रियाओं के लिए भूमि फैलायी है, वहीं ईश्वर ने अल्पज्ञ जीव के लिए ऋक्, यजुः, साम सहित अथर्ववेद रूप चार वेदों का ज्ञान दिया है। वेद ज्ञान के द्वारा ही शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियों की सम्पन्नता प्राप्त कर सुखी, हर्षित होता है, वेद ज्ञान के अभाव में इन शक्तियों के प्राप्त न होने से मनुष्य दुःखी, नीरस जीवन जीता है।

प्रसङ्गगत मन्त्रों में शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियों से हीन, क्षीण व्यक्ति किन उपायों से हीन, क्षीण शक्तियों को अर्जित कर सकता है? इन त्रिविध शक्तियों से हीन राष्ट्र को कैसे शक्तिपूर्ण किया जा सकता है?

इसका प्रतिपादन है। वेद में शक्ति सम्पन्न करने के ऐसे अनेक स्त्रोत, उपचार शिक्षायें निर्दिष्ट हैं जिन से शक्ति, ऊर्जा अर्जित की जाती है। सम्पूर्ण शरीर में बहुत से अङ्गावयव हैं, उन अङ्गावयव समुदाय में क्षीणता किसी भी अङ्ग में संभव है, किसी भी लिङ्ग अलिङ्ग इन्द्रिय में सम्भव है। उन अङ्गों व इन्द्रियों की शक्ति सम्पन्न करने के स्त्रोत यदि वेद में निर्दिष्ट हैं तो तान्त्रिकपना क्यों दीखने लगा ? क्या संसार में जिन पुरुषों ने अथर्ववेद के ये मन्त्र सुने तक नहीं हैं, वे अपनी इन्द्रिय विशेष या वीर्य शक्ति की चिकित्सा नहीं करा रहे हैं। ध्यान करे इस चिकित्सा के विज्ञापनों से नगर, शहर की दीवारें भरी पड़ी हैं ! उन्हें क्यों नहीं दुत्कारते, उनका हँसी ठट्ठा क्यों नहीं करते !

पुरुष शक्ति की चिकित्सा को जादू टोना कहना, दुष्ट तान्त्रिक विधि बताना और वाजीकरण शब्द को हौआ बनाना सत्य से मुँह छुपाने वालों का काम हैं। वाजीकरण शक्ति पूर्ति की चिकित्सा है। **वाज शब्द** वज गतौ धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है। उस वाज शब्द का अर्थ है गति, स्फुर्ति, वेग, शक्ति, प्राण, अन्न[1], वीर्य[2] बल आदि। वाजीकरण शब्द का अर्थ है -

अवाज : औषध्यादिना वाजः क्रियते इति वाजीकरणम्।

अर्थात् जो **वाज**=स्फूर्ति, वेग, शक्ति, प्राण, अन्न, वीर्य आदि से शून्य है, इन शक्तियों से रहित है, वह वाज सम्पन्न किया जाता है, यह वाज सम्पन्न करण का कार्य वाजीकरण कहाता है।

इस प्रकार वाजीकरण शक्ति सम्पन्न कर्म करने की क्रिया को अथवा शक्ति सम्पन्न करने के प्रयोग को वाजीकरण कहते हैं। आँख, दाँत, आँत आदि अवयवों की चिकित्सा भी वाजीकरण है। वाजीकरण का भी वेद में विधान है, पुनः इन्द्रिय विशेष को ही क्यों दबोच लिया ? जिस इन्द्रिय में दोष होगा, उसकी चिकित्सा होगी। यदि **शेप**=प्रजनेन्द्रिय में दोष है, तो उसकी चिकित्सा होनी चाहिए ! यह वाजीकरण चिकित्सा **न तन्त्र** है, **न टोना** है और **न ही हँसी ठट्ठा का कर्म** है। इसी कारण चिकित्सा शास्त्र के

---

१. अन्नं वै वाजः। *२. वीर्यं वै वाजः।*

ग्रन्थ सुश्रुत[1] में वाजीकरण को चिकित्सा का आठवाँ अङ्ग माना गया है।

प्रकरणगत **यां त्वा...**, प्रथम मन्त्र में किसी रोग वश नष्ट दीप्ति वाले, क्रोधाविष्ट पुरुष की, **वृषा**=कौंच[2] औषधि से चिकित्सा करने का निर्देश है। इस औषधि के सेवन से नष्ट दीप्ति, शक्ति वाला व्यक्ति एवं अपनी चिकित्सा के लिये, **वरुण**=उद्यमी, शक्ति सम्पन्न हो जाता है। औषधि का ज्ञान गन्धर्व अर्थात् **गौ**=पृथिवी को कहते हैं, पृथिवीस्थ पदार्थों को जानने वाला ज्ञानी वैद्य ही कर सकता है अतः ज्ञानी वैद्य करेगा और औषधि भी चिकित्सा के लिए खोदकर लायी जायेगी चिकित्सा के लिये लायी जानी भी चाहिये। यह **चिकित्सा** कार्य एवं **औषधि** लाना **दुष्ट तन्त्र** नहीं है, और न ही चिकित्सा करने वाला **वैद्य तान्त्रिक** कहाता है।

उदुषा, अथर्व. ४/४/२ मन्त्र में निर्देश है कि **उषा**=प्रभात वेला में जागकर परमात्मा का, **वचः उत्**=स्तवन करें, उच्चारित करे, **वाजिना शुष्मेण**=औषधियों के बल से (**औषधयः खलु वै वाजः**, तै. ब्रा. १/३/७/१) **वृषाः**=शक्तिशाली होकर, **प्रजापतिः उदेजतु**=प्रजापालक राजा ऊपर उठे, बढे, **प्रजापति**=परमात्मा को प्राप्त करे।

यथा स्म. अथर्व. ४/४/३ मन्त्र में औषधि द्वारा सबल होकर उन्नत, तथा **अभितप्तमिव**=तपे हुए सोने के समान दीप्ति प्राप्त करने का निर्देश है।

उच्छुष्मौषधीनाम्। अथर्व. ४/४/४ मन्त्र में **ऋषभाणाम्**=ऋषभक

---

१. शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति। सुश्रु. सूत्रस्थान १/६

२. आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वृषा कपिकच्छु, कौंच औषधि को तथा अश्वगन्धा को कहा गया है। यथा-

अ. कपिकच्छुर्लघुः शीता वृष्या पित्तानिलापहा।
सिध्मातिसारहन्त्री च वन्ध्यानां चाप्यपत्यदा॥ शौन. निघ.॥

ब. तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम्। भावप्रकाश निघ.॥

स. अश्वगन्धा, कुष्ठगन्धा ह्याश्वाश्वा रोहकः।
वराहकर्णी गोकर्णी तुरगी वरदा वृषः।
अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वृष्या रसायनम्। कैयदेव निघ.॥

द. वृषा कपिकच्छौ। वैद्यक शब्द सिन्धु। वेदोक्त वृषा अर्थात् कपिकच्छु, कौंच एवं अश्वगन्धा ये दोनों औषधियाँ वाजीकरण=पुरुष शक्ति को ठीक करती है।

औषधियों के **सार**=स्वरस से **पुंसं वृषण्यम्**=पौरुष शक्ति को धारण करने की चिकित्सा विधि है। भावप्रकाश में ऋषभक औषधि को वीर्य वर्धक, बलदायक, पुष्टिकारक, दाह क्षयनाशक बताया है।

अपां रसः, अथर्व. ४/४/५ मन्त्र में **अपां**[१] **वनस्पतीनाम्**[२]=जलों एवं वनस्पतियों के सेवन से **आर्शं वृषण्यम्**=रोगनाशक वीर्य शक्ति प्राप्त करने की चिकित्सा का उपदेश है।

अद्याग्ने. अथर्व. ४/४/६, ६/१०१/२, मन्त्र में अग्रणी प्रभु, विद्या, दिव्य भावना ज्ञान आदि वाले जनों से प्रार्थना हैं कि वे, **धनुरिव**=धनुष के समान, **पसः**=राष्ट्र को (**राष्ट्रं पसः**, शत. ब्रा.१३/२/९/६) सौभाग्य को (**भगः सौभाग्यं पसः**, काठ. सं. ३८/४) **तानय**=फैलावें।

आहं तनोमि. अथर्व. ४/४/७, ६/१०१/३ मन्त्र में प्रभु का संदेश है कि जो मैंने धनुष के समान राष्ट्र फैलाया है, शरीर बनाया है, उस राष्ट्र व शरीर को सदा **अनवग्लायता**=सर्वदा ग्लानि रहित मन से (**ग्लै हर्षक्षये**) जीवन के विघ्नों को जीत कर आगे बढ़ा।

अश्वस्या., अथर्व. ४/४/८ सूक्त के इस अष्टम मन्त्र में निर्देश है कि **तनूवशिन्**=जिसने संयम द्वारा शरीर को वश में कर लिया है वह व्यक्ति **अश्वस्य**=घोड़े के समान सबल, स्फूर्ति की शक्ति, **अश्वतरस्य**=खच्चर के समान कार्य वहन करने की शक्ति, **अजस्य**=बकरे की नैरन्तर्य गति शक्ति, **पेत्वस्य**=मेढे के समान जूझने की शक्ति और **ऋषभस्य**=बैल के शकट धुरा वहन कर्म के समान शरीर, राष्ट्र, परिवार आदि को वहन करने की शक्ति धारण करे। मन्त्र का तात्पर्य है शरीर को वश में करने वाला अश्व आदि के समान शक्ति, सामर्थ्य वाला हो जाता है। यह शक्ति की प्राप्ति तथाकथित वाजीकरण तन्त्र नहीं अपितु प्रत्यक्ष दीखने वाला सुफल है।

प्रजापतिश्चरति., तै.आ. ३/१३/१, इस तैत्तिरीय वचन में प्रजापालक परमेश्वर की व्यापक सत्ता का प्रतिपादन है। कम से कम उपेन्द्र

---

१. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्त र्विश्वानि भेषजा। अथर्व.१/६/२, ऋ. १/२३/२०

२. यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतींत्सचतां पर्वतांश्च॥ अथर्व. १/१२/३

राव को अपने **दादा सायण** को ही इस वचन के प्रसङ्ग में पढ़ लिया होता। जहाँ उन्होंने प्रजापति का अर्थ **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** किया है तथा योनि शब्द का अर्थ जगत् का कारण किया है[1]।

उपेन्द्र राव द्वारा प्रस्तुत मन्त्रों में शरीर, राष्ट्र, दायित्व आदि किस प्रकार सबल, सशक्त, निष्ठामय बनाये जा सकते हैं, इस का निदर्शन है, बीभत्सता, तान्त्रिकता की गन्ध भी नहीं है। उपेन्द्र राव स्वतः ही तान्त्रिक, तन्त्रानुरागी हैं, अत एव इन मन्त्रों में वाज, काम, अश्व, अश्वतर, वृषभ, अज, पेत्व आदि शब्द को देखकर लिङ्ग पुरुष लिङ्ग आदि विषय ही उनकी आँखों के आगे नृत्य करने लगे! **मन्त्रों में कहीं पर भी लिङ्ग शब्द नहीं है**, पुनरपि उन्हें लिङ्ग के ख्वाब आ गये। ये ख्वाब उनकी दूषित मनोवस्था के द्योतक हैं।

शरीर, राष्ट्र आदि की समृद्धि के लिये जिन सशक्त शक्तियों की आवश्यकता है, उन शक्तियों की उपमा के लिए अश्व, अश्वतर आदि शब्द मन्त्रों में निर्दिष्ट हैं। लोक में किसी बहादुर बच्चे को **यह शेर हैं ?** कहा जाता है तो क्या उसका तात्पर्य यह होता है कि बालक हाथ पैर नीचे करके चलता है! दुम हिलाता है आदि ? नहीं, ऐसा नहीं है। इस तरह वेद के अश्व आदि शब्द ताकत एवं शक्ति के मापक है। जड़ मोटर आदि मशीन में हॉर्स पावर कहकर अश्व की शक्ति को ही तो नापते हैं! लिङ्ग समृद्धि को नहीं! छिः! छिः! छिः!

शेप शब्द को देखकर इतना क्यों चौंके ? **शेपः शपतेः स्पृशति कर्मणः**, निरु. ३/७/२१ शेप शब्द का यास्क ने ऐसा निर्वचन कर जैसे प्रजनेन्द्रिय अर्थ किया है, वैसे **शीङ् स्वप्ने**, शप आक्रोशे से निष्पन्न शेप शब्द के ये अर्थ भी होंगे–

१. **शेते येन तत् शेपः।**[2]

अर्थात् जिस कारण से सोता है, वह कारण शेप कहाता है। अर्थात् नींद, **आलस्य, प्रमाद, अभिमान, मिथ्याज्ञान, विचिकित्सा** आदि शेप

---

१. प्रजापतेर्योवि जगत् कारण रूपं वास्तवं स्वरूपम्। तै.आ.सा.भा. ३/२३/१-२

२. शीङ् + असुन्, पुट् आमगश्च, बृङ्शीभ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च, उणा. ४/२०२

शब्द के अर्थ होंगे।

२. शपति आक्रोशति येन सः शेपः।

अर्थात् जिस कारण से अपशब्द करता है, क्रोधित होता है, वह कारण शेप कहाता है। तात्पर्य हुआ **क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या** आदि कारण भी शेप शब्द के वाचक हैं।

इन निर्वचनों के आधार पर अथर्व. ४/४/१ में आये **शेपहर्षिणीम्** पद के शेप शब्द का अर्थ नींद, आलस्य, क्रोध आदि होगा। हर्ष शब्द के साथ शेप का सम्बन्ध होने पर उन क्रोधादि से पीड़ित व्यक्ति को हर्षाने वाली औषधि यह अर्थ जाना जायेगा। शब्दार्थ संगति प्रकरणानुसार की जाती है, मनमानी नहीं।

उपेन्द्र राव की अश्लीलता के व वाजीकरण की **हँसी ठट्ठा के दूसरी किश्त** के मन्त्रों **की समीक्षा**

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया।
एवा ते शेपः सह सायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु॥ अथर्व. ६/७२/१॥
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः॥ अथर्व. ६/७२/२॥
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः॥ अथर्व. ६/७२/३॥

यथा सितः, अथर्व. ६/७२/१, **यथा पसः**, अथर्व. ६/७२/२, **यावदङ्गीनम्**, अथर्व. ६/७२/३, अथर्ववेद के इन मन्त्रों में उपेन्द्र राव ने जंगली भैंसे, हाथी, घोड़े, गधे के लिङ्गों की भाँति पुरुषलिङ्ग के सम्वर्धन की अश्लील कल्पनायें कर डाली हैं। अश्लीलता प्रसङ्ग की बीभत्स पंक्तियाँ उनकी **'जादू टोना का प्रेरक अथर्ववेद'** पुस्तिका के पृ. २३, २४ में द्रष्टव्य है।

श्री उपेन्द्र राव अपनी कल्पित **अश्लीलता की खोज में** आगे लिखते हैं- 'भाँग के नशे में अथर्वा ऋषि ने कुछ भी तो मन्त्र रचना कर डाली! उपेन्द्र

राव को यह नहीं पता कि वे स्वतः भांग के नशे में हैं, जिस नशे के कारण अश्वादि के समान पुरुष लिङ्ग वृद्धि, संभोग से स्त्री को मार डालना आदि निरर्थक कल्पनाओं में वे घूम रहे हैं।

प्रसङ्गत अथर्ववेद के इस सूक्त में राष्ट्र एवं शरीर की पुष्टि संवर्धन का प्रकरण है, संभोग का नहीं। **यथा सितः** प्रथम मन्त्र का अर्थ है-

जैसे विषयों से अबद्ध व्यक्ति राजा अपनी इन्द्रियों को वश में करके बढ़ता है, **असुस्य**[१] **मायया**=प्राणों के द्वारा बढ़ी बुद्धि से शरीर को सुदृढ़ करता है, वैसे **अर्क**[२] **शेपः**=प्राणों वाला **शेपः**=क्रोधी, आलसी व्यक्ति, **सहसा**=बल, शक्ति के द्वारा अङ्ग से अङ्ग को, राष्ट्र से राष्ट्र को, **सं समकम्**=एक गति वाला बनावे।

द्वितीय मन्त्र **यथा पसः**, अथर्व. ६/७२/२ का अर्थ है-जिन-जिन प्रकारों से, **पसः**=राष्ट्र, **तायात्**=फैले, वायु के समान क्रियांशीलता वाला होवे, विस्तृत होवे, पालन करने वाले राजा के सदृश राष्ट्र होवे[३], उतने-उतने प्रकारों से तुम्हारा राष्ट्र फैले, वृद्धि को प्राप्त हो। अर्थात् राष्ट्र विस्तार के परस्पर सम्बन्ध, क्रियाशीलता आदि उपाय तुम्हारे राष्ट्र को प्राप्त हों।

तृतीय मन्त्र **यावदङ्गीनम्**., अथर्व. ६/७२/३ मन्त्र का अर्थ है- **पारस्वतम्**=पालन करने वाले राजा आदि का राष्ट्र, **यावत्**=जितनी हाथी, भारवाही गर्दभ की, **आङ्गीनम्**=अङ्गों, सेनाओं वाला होता है तथा जितनी अश्व की शक्तियों से युक्त होता है, उतनी शक्तियों से तुम्हारा, **पसः**=राष्ट्र बढे।

मन्त्र में राष्ट्र संवर्धन हेतु हाथी, घोड़े, गर्दभ आदि शक्ति के समन्वय, संचय का तथा अश्वादि पालन करने का निर्देश है।

इस सूक्त का **वाज**=वीर्य आदि के संवर्धन परक अर्थ करें तो भी

---

१. *प्राण वा असुः। शत. ब्रा. ६/६/२/६*

२. *प्राणो वा अर्कः। शत. ब्रा. १०/४/१/२३, १०/६/२/७*

३. *परस्वतः=पालन करने वाला, परः पालनम्, पृ पालनपूरणोः तद्वान् परस्वान् तस्य पारस्वतः।*

आक्षेप्ता की अश्लीलता का गन्धाभास नहीं है।

अर्क[1] आक औषधि तथा सूर्य को कहते हैं। दोनों ही पदार्थ **वाज**=बल, शक्ति, वीर्य आदि को बढ़ाते हैं। आक भक्षणादि से, सूर्य रश्मियाँ द्वारा रोग निवृत्ति करके लाभ देता है। वीर्य संवर्धन पक्ष में मन्त्रों का आशय है-

जिस प्रकार **असितः**=संयमी व्यक्ति, विषयों से अबद्ध होकर शरीर को पुष्ट करता है, वैसे शक्तिहीन व्यक्ति, **वाज**=वीर्यशक्ति को **अर्क**=आक औषधि तथा सूर्य रश्मि सेवन से अङ्गों को पुष्ट करे। हस्ती, भारवाही गर्दभ और अश्व की शक्तियों का सामर्थ्य प्राप्त करे। इस प्रकार यहाँ श्री उपेन्द्र राव **हृष्ट संभोग** की चर्चा नहीं है, अपितु विविध सामर्थ्य ग्रहण करने का उपदेश है।

उपेन्द्र रावजी की **अश्लीलता के तृतीय किश्त** के मन्त्रों की समीक्षा :-

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि॥ अथर्व. ६/१०१/१॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः॥ अथर्व. ६/१०१/२॥

आ वृषायस्व अथर्व. ६/१०१/१, **येन कृषम्**.अथर्व.६/१०१/२ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में भी उपेन्द्र राव पूर्व की भाँति अश्लीलता के सागर में डूब रहे हैं। अपने इस आनन्द के गर्व में विज्ञों पर व्यंग करते हुए लिखते हैं-

अपौरुषेयत्ववादी-विद्वान वेदों को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिए शास्त्र प्रमाणों को ढूँढते रहते हैं तथा सदा चौबीसों घंटे शास्त्रार्थ के लिए सन्नद्ध रहते हैं। यह नहीं सोचते कि पहले मन्त्र रचना की शैली का अध्ययन किया जाये एवं **मन्त्र क्या-क्या अनर्थ** कह व कर रहे हैं ? उसे भी देखा जाये।' पृ. २४॥

---

१. (i) अलर्क कुसुमं वृष्यम्। कैयदेव निघ.॥
(ii) पुष्पोद्धृतं पिबेन्मूलं श्वेतातस्य प्रयत्नतः।
सप्तरात्रं तु गोक्षीरैः वृद्धोऽपि तरुणायते। कामरत्न २/३
(iii) असावादित्योऽर्क पुष्पम्। शाङ्. आ. १/४

उपेन्द्र राव कितना भी प्रयत्न कर लें ? कितना ही कोस लें ? पर उनकी अश्लीलता को ज्ञानी ग्रहण करने वाले नहीं।

प्रसङ्गीय मन्त्रों में भी राष्ट्र आदि की समृद्धि का ही निर्देश है। **आ वृषायस्व.**, अथर्व. ६/१०१/१ मन्त्र का अर्थ है-हे ब्रह्मणस्पति ! ज्ञानी ! तू ऐसा शक्तिशाली प्रयत्न कर जिससे तू प्राण धारक बने। वृद्धि और विस्तार को प्राप्त करे। उस वृद्धि से तेरे, **यथाङ्गम्**=प्रत्येक अङ्ग में (अङ्गऽमनतिक्रम्य) **शेपः**=शक्ति, सामर्थ्य बढ़े। उस सामर्थ्य से **योषितम्**= वाणी के सामर्थ्य को (**योषा कि वाक्**, शत. ब्रा. १/४/४/४, **योषा+ इतच्**[१]**=योषितम्**), **इत् जहि**[२]=निश्चय से प्राप्त करो।

योषित् शब्द का अर्थ स्त्री लेंगे तो भी किसी भी प्रकार से मन्त्र से अश्लीलता नहीं टपकती। स्त्री सम्बन्ध जोड़ने पर भी शक्ति, प्राण, प्राण वृद्धि, अङ्गों की निरोगता आवश्यक है। इस नीरोगता के साथ ही स्त्री को प्राप्त किया जा सकता है, सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। अतः **योषित्**=स्त्री प्रसङ्ग में **जहि का प्राप्त अर्थ ही होगा, स्त्री की मौत अर्थ नहीं।**

द्वितीय मन्त्र **येन कृषम्**, अथर्व. ६/१०१/२ मन्त्र का अर्थ है-हे ज्ञानाधार प्रभो ! विद्वन् ! जिस उपाय, जिस कर्म से दुर्बल को सबल बनाया जाता है और रोगी को तृप्त किया जाता है (हिवि पृणार्थाः) उसी उपाय या कर्म से, राष्ट्र को (**राष्ट्रं पसः**, शत.ब्रा. १३/२/९/६) धनुष के समान अर्थात् सैनिक सामर्थ्यानुसार फैलाओ।

इस प्रकार उपेन्द्र राव का विचित्र एवं मारक वाजीकरण प्रसङ्ग उत्थापन निरा बीभत्स और निरर्थक है। शास्त्रार्थ के लिये सदा चुनौती है !! रहेगी भी !

अञ्जनों (आञ्जनों) की झूठी बड़ाई, की समीक्षा :-

इस शीर्षक में आक्षेप्ता उपेन्द्र राव ने तथाकथित झूठी जादू टोना की शत्रु मारक विधि के अञ्जन प्रयोग का सम्बन्ध वेदमन्त्रों में आये आञ्जन शब्द के साथ लगाकर **अथर्ववेद चिकित्सा विधियाँ ठगी से भरपूर हैं** यह

१. *तदस्य संज्ञातं तारकादिभ्य इतच् पा. ५/२/३६*
२. *(i) हन हिंसागत्योः, गतेस्त्रयो र्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति।*
(ii) हन् धातु की विशेष व्याख्या पृष्ठ २६ पर देखें।

अद्भुत अन्वेषण किया है। अपने इस अन्वेषण की सिद्धि में एड़ी चोटी का जोर भी खूब लगाया है। उपेन्द्र राव के आक्षिप्त मन्त्र हैं -

त्रैककुदाञ्जनम्

अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ अथर्व. ४/९/२ ॥
उतासि परिपाणं यातुम्भनमाञ्जन। अथर्व. ४/९/३ ॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्यानाभिशोचनम्।
तैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥ अथर्व. ४/९/५ ॥
असन्मंत्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥ अथर्व. ४/९/६ ॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ अथर्व. ४/९/९ ॥

अश्वानामवर्ताम्, अथर्व. ४/९/२, **उतासि** अथर्व. ४/९/३, **नैनं प्राप्नोति,** अथर्व. ४/९/५, असत् मन्त्रात्, अथर्व. ४/९/६, **यदाञ्जनं त्रैकुदाञ्जनम्,** अथर्व. ४/९/९, उपेन्द्र राव का मानना है कि अथर्व के इन मन्त्रों में अञ्जन के प्रयोग से शत्रु तथा हिंसक पशुओं को **जम्भित**=अदृश्य, स्तम्भित, वशीभूत करने की विद्या का निर्देश है, जो कि झूठी है।

वेद के सभी शब्द यौगिक

वेदमन्त्रों का निहितार्थ तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक मन्त्रार्थ की यौगिकार्थ प्रक्रिया न समझ ली जाती। यौगिक प्रक्रिया शब्द के व्यापकार्थ को स्पष्ट करती है। वेद के सभी शब्द यौगिक व योग रूढि हैं, रूढि नहीं हैं। अतः वेद का प्रत्येक शब्द रूढि अर्थ का वाचक नहीं होता।

यौगिक प्रक्रिया वेदार्थ की मेरुदण्ड है, अतः यास्क ने लिखा है -

अर्थ नित्यः परीक्षेत, केनचित् वृत्ति सामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षर वर्ण सामान्यान्निर्ब्रूयात्। न त्वेव न निब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियते, विषयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। निरु. २/१/१

अर्थात् अर्थ को मुख्य मानकर प्रत्येक शब्द का निर्वचन अवश्य किया जाये, उस शब्द का धातु और प्रत्यय अवश्य बतावें। उस शब्द में अर्थानुसारी धातु या प्रत्यय की समानता न मिले, तो भी अक्षर, वर्ण की समानता मात्र से

निर्वचन अवश्य करें, **निर्वचन न करें, ऐसा नहीं**। वर्ण, अक्षर की समानता में प्रकृति प्रत्यय संस्कार, शब्द अनुबन्ध का बिना विचार किये निर्वचन करें।

इस प्रकार प्रसङ्गगत मन्त्रों में जो आञ्जन शब्द आया है तथा जो **णिजन्त अञ्ज् व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु** धातु से ल्युट् प्रत्यय द्वारा बना है। उसका यौगिकार्थ है-अञ्जयतीति आञ्जनम् अर्थात् **व्यक्ति**=प्रकट, **म्रक्षण**=संघात (**म्रक्ष संघाते, म्रक्ष इत्येके**), **कान्ति**=दीप्ति, **गति**=गति, ज्ञान, प्राप्ति कराने वाला। इतने अर्थ जिस-जिस पदार्थ में हैं, वह-वह पदार्थ आञ्जन शब्दाभिधेय है। चाहे वह ईश्वर हो, जीव हो, प्रकृति हो, प्रकृति के पदार्थ हों।

प्रकरणानुसार यहाँ **आञ्जन** शब्द का प्राधानिक अर्थ ईश्वर है। **अश्वानामवर्ताम्**, अथर्व. ४/९/२ मन्त्र का अर्थ है-हे **आञ्जन**=जगत् शरीर आदि को प्रकट करने वाले प्रभो! आप गतियुक्त, निरन्तर कर्मों में व्याप्त, **अश्वानाम्**=इन्द्रियों के रक्षण के लिये हमारे हृदयों में स्थित हैं।

उतासि., अथर्व. ४/९/३ मन्त्र का अर्थ है-**हे आञ्जन**=सारे संसार को गति देने वाले प्रभो! आप सर्वत्र रक्षा करते हैं और **यातु जम्भनम्**[1]=पीड़ा, यातना को नष्ट करते हो।

नैनं प्राप्नोति, अथर्व. ४/९/५ इस मन्त्र का संगतार्थ है-**हे आञ्जन**=ज्ञानी प्रभो! तुम्हें जो धारण करता है, ध्यान में प्राप्त कर लेता है, **एनम्**=ऐसे व्यक्ति को, **शपथः**=अपशब्द, गाली, क्रोध (**शप आक्रोशे**) प्राप्त नहीं होता और न **कृत्या**=हिंसा (**कृञ् हिंसायाम्**) होती है और न शोक होता और **न एनम्**=ऐसे व्यक्ति को कोई विघ्न विरोध प्राप्त होता है।

असन् मन्त्रात्, अथर्व. ४/९/६, मन्त्र का अर्थ है-हे **आञ्जन**=प्रकाशक प्रभो! हमें असत्य कुविचारों से, दुःस्वप्नों से, दुष्कर्मों से शान्ति निवारक कारणों से, **पाहि**=बचाइये और दौर्मनस्य उन प्यार भरी क्रोध युक्त आँखों से बचाइये।

---

१. *यातुं प्रापणं गतिं जम्भयति नाशयति (जभि नाशने) इति यातुजम्भनम्। अर्थात् जो गति को नष्ट करते हैं, वे पीड़ा आदि गुण व पदार्थ यातु जम्भन कहे जाते हैं।*

यदाञ्जनम्, अथर्व. ४/९/९ मन्त्र का अर्थ है-**हे आञ्जनम्**=प्रलय करने वाले, **त्रैककुदम्**=ज्ञान, बल क्रिया रूप, **कुकुद**=शिखर वाले प्रभो ! आपको, **हिमवतस्परि**=१०० वर्षों से ऊपर (**शतं हिमा इति शतं वर्षाणि,** शत.ब्रा.१/९/३/१९), **यदा**=जब, **जातम्**=प्रादुर्भूत कर लिया जाता है, **च**=तब वैसा व्यक्ति सब, **यातुम्**=सब भाग दौड़ की गतियों एवं सब पीड़ादायक बीमारियों, रोगों को, **जम्भयत्**=नष्ट कर देता है।

इन मन्त्रों में ईश्वर के ज्ञान, बल का विश्लेषण है, जादू टोना की गन्ध भी नहीं है। **आञ्जन** शब्द का यदि योग रूढार्थ **आञ्जन**=औषधि अर्थ भी लिया जाये, तो भी जादू-टोना शत्रुगारकविधि की गन्ध नहीं है। यह **आञ्जन**[1] औषधि नेत्ररोग, सूजन, सुजाक आदि रोगों की निवारक औषधि है।

हमारे शरीर में कई अङ्ग अत्यन्त संवेदनशील अङ्ग हैं, जिनमें चक्षु भी अत्यन्त संवेदक इन्द्रिय है। चिकित्सा शास्त्रों, चिकित्सकों व हम सबके अनुभव से प्रत्यक्ष है कि आंखों पर कुविचार, दुःस्वप्न, दुष्कर्म, अशान्ति, दौर्मनस्य, क्रोध आदि का गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे आँखे मन्द दृष्टि, अन्धदृष्टि, चिल्ल पिल्ल, चुल्ल[2]=आँख से पानी गिरना काला पानी आदि रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं। क्या ऐसी आँखें **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे**, यजु. ३६/१८ हम स्नेह, मित्रता की आँख से सबको देखें, इस भाव को व्यक्त कर सकती है ? नहीं। हमारे मानसिक भावों का द्योतक मुखमण्डल है। आँखें मुख मण्डल के भावों की प्रतीक एवं ज्ञापक हैं। अच्छे ज्ञापन के लिए स्वस्थ आँखों का होना आवश्यक है। स्वस्थ आँखों के लिए आञ्जन आदि औषधियाँ आवश्यक हैं।

रोग ग्रस्त आँखों के दोषों, विकृतियों को नष्ट करने के लिये आञ्जन औषधि हिमालयीय क्षेत्र, पश्चिमी समुद्र, उड़ीसा, आसाम, सिलहट, सिलोन,

१. *आञ्जन औषधि है जिसे लौकिक संस्कृत में अञ्जन वृक्ष, गुजरात में अञ्जन, महाराष्ट्र में अञ्जनी, मुम्बई में अञ्जनकरपा, कन्नड में अलमारु, अल्ली, अश्वेदि तेलगू में अल्लि, मिदाल्लि, पेदाल्लि, तमिल में अहिल, अञ्जनी, कासा, अंग्रजी में आर्यन उडट्री, लेटित में Memedylon Ebole । वनौषधि चन्द्रोदय ॥*

२. *क्लिन्नस्य चिल्पिल्लश्चास्म चक्षुषी, चुलादेशो वक्तव्यः, पा. वा. ५/२/३३*

मलाया द्वीप आदि स्थानों में उत्पन्न होती है। उनमें हिम प्रदेश की औषधि अधिक उपयुक्त होती है। वह भी हिम प्रदेश के त्रिककुत् स्थान की। त्रिककुत् हिम प्रदेश के उस स्थान को कहते हैं-जहाँ पर्वतों के शिखर मिले होते हैं।

त्रीणि ककुत् सदृशानि शिखराणि यस्मिन् प्रदेशे तत् त्रिककुत्स्थानम्, अर्थात् जहाँ पशुओं के ककुत् समान हिम प्रदेश के पर्वत शिखर तीन ककुत् रूप में उठे होते हैं, वह हिम प्रदेश **त्रिककुत्** कहलाता है।

त्रिककुत् पर्वत श्रेणियों का यह दृश्य सुलेमान पर्वत, श्रीनगर की पर्वत श्रृंखलाओं एवं उनके मध्य में टोबा और काकड़ की पर्वत श्रृंखलाओं में दीखता है। इनकी श्रृंखलायें तिहरी दीवार जैसी दीखती हैं। इन श्रृंखलाओं में उत्पन्न औषधियाँ त्रिककुत् कही जाती है, जिनसे नेत्र भयङ्कर ज्वर, कफ प्रकोप, कामला, प्रमाद, आलस्य, जड़ता आदि की चिकित्सा की जाती है। लोक में पर्वतीय आञ्जन औषधि से की जानेवाली चिकित्सा का स्त्रोत **यदाञ्जनं त्रैककुदम्,** अथर्व. ४/९/९ आदि मन्त्रों से ही लिया गया है।

आञ्जन औषधि से की जा रही नेत्र चिकित्सा जादू टोना या ठगी नहीं है। आञ्जन औषधि से बनी नेत्र औषधि सुलेमानी सुरमा[1] नाम से आज भी प्रसिद्ध है। पंजाब और सिन्ध में सुलेमानी सुरमा अधिक प्रयोग में आता है। सिन्ध के लोग सौवीर अर्थात् उत्तरी सिन्ध में बने होने के कारण इस सुलेमानी सुरमें को सौवीराञ्जन भी कहते हैं। यह त्रिककुत् अञ्जन, **यातुधान**=दर्शन गति के बाधक समस्त रोगों को नष्ट करता है। वेद में आये **यातुजम्भनम्** अथर्व. ४/९/३, **यातुधान्यः**, अथर्व. ४/९/९ शब्दों का अर्थ हाथ पैर वाले शत्रु पिशाच अर्थ नहीं है। अपितु रोग या रोगजनक प्राणियों के वाचक हैं। वेद का रोग दूरीकरण का कथन झूठी बड़ाई नहीं है, यथार्थ कथन है।

आञ्जन औषधि की इस विशेषता के कारण ही आयुर्वेदिक ग्रन्थों के नेत्र चिकित्सा प्रकरण में सौवीराञ्जन[2]=त्रिककुत् आञ्जन को उपयुक्त बताया

---

१. *सुलेमान पर्वत में आञ्जन औषधि के उत्पन्न होने से यह संज्ञा है।*

२. *सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्। पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्त्रावणार्थे रसायञ्जनम्।*
चरक सूत्र. ५/१५

गया है। अंग्रेजी में जिसे एण्टीमनी सल्फर (Antimony Sulphur) कहते हैं। इस औषधि का चिकित्सालयों में प्रतिदिन उपयोग लिया जा रहा है।

पाप छुड़ाने वाले एवं बड़ाई करने वाले मन्त्रों, की समीक्षा :-

बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाह पुरुषः ।
तस्मात्सहस्त्रवीर्य मुंञ्च नः पर्यंहसः ॥ अथर्व. १९/४४/८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्त्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ अथर्व. १९/४४/९ ॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥
अथर्व. १९/४५/४ ॥

बह्वी३दम्, अथर्व. १९/४४/८, **यदापो.** अथर्व. १९/४४/९, चतुर्वीरम्, अथर्व. १९/४५/४ अथर्ववेद के इन मन्त्रों को उपेन्द्र राव ने **ठगी, ठगविद्या के संदेश** देने वाला एवं **जादू टोना का साधक** माना है।

बह्वीदम्, अथर्व. १९/४४/८ मन्त्र का अर्थ है-हे आञ्जन **राजन्**= सर्वप्रकाशक परमेश्वर व औषध मनुष्य **इदं बहु अनृतम्**=प्रातः से सायंकाल तक खूब झूठ बोलता है, उस अनृत से, तज्जनित पाप से, रोग से, हे अनन्त सामर्थ्यवाले परमेश्वर व औषधि ! हमें बचाइये।

यदापो. अथर्व. १९/४४/९ मन्त्र का तात्पर्य है-हे व्यापक गतिशील परमेश्वर ! आञ्जन औषधि ! तुम अघन्या हो, रक्षक हो, दोष, रोग दूर करने से वरणीय हो। परमेश्वर और औषधि अनन्त सामर्थ्यवाले हमारे पापों, दुःखों को दूर करें।

चतुर्वीरम्, अथर्व. १९/४५/४ मन्त्र का अर्थ है-**चतुर्वीरम्**=मुख, बाहू, उरु, पाद चार अङ्गों को समर्थ बनाने वाले **आञ्जन**=परमेश्वर या औषधि का सेवन करने वाला, अन्दर समाहित करने वाला व्यक्ति सबल, निर्भय होता है, सूर्य की भाँति **ध्रुव**=अडिग हो जाता है, श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। सभी प्रजायें अनुकूल बन जाती हैं। यह मन्त्र जितेन्द्रियता, आरोग्यता का प्रतिपादक है।

इस प्रकार इन मन्त्रों में **जादू टोना की कोई विधि** निर्दिष्ट **नहीं** हैं।

परमात्मा की भक्ति आन्तरिक दोषों को दूर करती है, आञ्जन औषधि भक्षण पातन द्वारा शारीरिक कैंसर आदि रोगों तथा नेत्र रोगों को दूर करती है। जो व्यक्ति नेत्र की कीमत नहीं समझता, देखने की इच्छा नहीं रखता, वह ही ऊल जलूल बातें कर सकता है। श्री उपेन्द्र राव को आञ्जन औषधि की चिकित्सा ठगी लगती है, तो लगे, अपनी नेत्र ज्योति गंवाना चाहते हैं, तो गंवावें।

मणि धारण की झूठी प्रशंसा, की समीक्षा :-

इस शीर्षक में आक्षेप्ता श्री राव ने **मणि** = शोभा, कान्ति के संवर्धक शङ्ख, प्रतिसर, वरण आदि सामुद्रिक, पार्थिव आदि पदार्थ जो आरोग्य, धन धान्य आदि ऐश्वर्य को देने वाले हैं, उनका **खूब जमकर हँसी ठ्ठा** किया है। भारत के कई मूर्ख राजा इन मणियों को हाथ में बाँधते थे। क्या इन मणियों से 'अल्ट्रा वायोलेट रे' अथवा 'लेजर बीम' निकलती थी ? अथर्ववेद प्रशंसक विद्वानों ने इन मणियों को जड़ी बूटी वाली औषधि माना है, तो कइयों ने इन्हें नेता शिरोमणि माना है, आदि लिखकर बड़ा आनन्द मनाया है। अपने इस आनन्द में मस्त होकर विद्वानों पर आरोप करते हुये उन्होंने लिखा -

'जादू-टोना की ठगी की दुष्ट विधियों में एक है, मणिधारण करना। ... । किसी ने वेद अपौरुषेयत्व के नशे में मन्त्रों द्वारा मणियों की अवास्तविक बड़ाई एवं ठगविद्या के उल्लेख की ओर ध्यान नहीं दिया। पृ. २६॥

आक्षेप्ता की इस विज्ञप्ति से घिरे हुए मन्त्र हैं -

वाताज्जातो अन्तरिक्षवाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख कृशनः पात्वंहसः ॥ अथर्व. ४।१०।१॥
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ॥ अथर्व. ४।१०।२॥
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥ अथर्व. ४।१०।५॥
देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्याप्स्वान्तः।

तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥
अथर्व. ४।१०।७॥

वाताज्जातो अथर्व. ४।१०।१, **यो अग्रतो** अथर्व. ४।१०।२, **समुद्राज्जातो** अथर्व. ४।१०।५, **देवानामस्थि** अथर्व. ४।१०।७ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में जादू टोना की दुष्ट विधियाँ हैं, ऐसा श्री उपेन्द्र राव कहते हैं। **मणि प्रसङ्ग** में श्री उपेन्द्र राव का यह मन्तव्य पदार्थ विज्ञान से नितान्त परे है।

अथर्ववेद अक्षर विज्ञान, मनो विज्ञान, आयुर्विज्ञान, सृष्टि विज्ञान, पदार्थ विज्ञान आदि विज्ञानों के साथ चिकित्सा विज्ञान, भैषज्य विज्ञान, कर्मज व्याधि विज्ञान आदि का गहन, गम्भीर विज्ञान है। ताण्ड्य ब्राह्मण में अथर्ववेद के चिकित्सा विज्ञान को भैषज्य बताते हुए कहा है -

भैषजं वै देवानामथर्वाणो भेषज्यायै वरिष्ट्यै ॥ ताण्ड्य ब्रा. १६।१०।१०॥

अर्थात् अथर्वन् ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र दिव्य गुणों की भेषज है, इसलिए ये **साम** = गीति मन्त्र **भेषजम्**[1] =भय निवारक, शान्ति दायक तथा अहिंसा होते हैं, हिंसा के भाव को नष्ट करते हैं।

अथर्ववेद चिकित्सा विज्ञान का भी शास्त्र है, अतः आयुर्वेद का उद्गम भी अथर्ववेद है। सुश्रुत में कहा है-

इह खलु आयुर्वेदं नाम उपाङ्गमथर्ववेदस्य। सुश्रु. १/५ ॥

अर्थात् आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है।

ब्राह्मण तथा सुश्रुत के इन वचनों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद चिकित्सा का निधि रूप ज्ञान है। चिकित्सा निधि अथर्ववेद की मणि चिकित्सा वह चिकित्सा है, जिसमें चिकित्सकीय पदार्थों का आभ्यन्तर तथा बाह्य रूप से उपयोग लिया जाता है।

मणि

मणि शब्द **मण शब्दार्थाः** धातु से सर्वधातुभ्य इन्, उणा. ४/११९ उणादि सूत्र द्वारा इन प्रत्यय करके सिद्ध होता है। **मणति शब्दायतीति मणिः** अर्थात् जो शब्द योग्य बनाता है या शब्द योग्य, प्रशंसा योग्य है, वह

---

१. भेषज शब्द का निर्वचन एवं वाच्यार्थ पृष्ठ ४ पर देखें।

मणि कहाता है। मणि वे पदार्थ हैं, जिनके सेवन से निर्बल सबल हो जाते हैं, अमूल्य बहुमूल्य, अप्रशस्य प्रशंसनीय योग्य बनते हैं तथा पाषाण, वृक्ष आदि द्रव्य, पदार्थ मणि हैं। मणियों के चार भेद हैं -

१. **खनिज**[1]=हीरा, पन्ना, स्फटिक, सोना, चांदी आदि तथा भूमि, खेत आदि।

२. **सामुद्रिक**[2]=मोती, मूंगा, शङ्ख आदि।

३. **प्राणिज**=कस्तूरी, श्रृंग, हाथी दाँत, जहर मोहरा आदि तथा मनुष्यादि के बल, वीर्य आदि गुण।

४. **वानस्पत्य**[3]=नीम, गूलर, तुलसी, बिल्व आदि औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं इनके मूल=कन्द, अन्न, फल, फूल, पत्र आदि तथा गुटिक बटी, रसायन आदि।

हीरा, शङ्ख, लता आदि स्त्री मणियों के सेवन, धारण के प्रयोजन हैं-

१. शोभा, अलङ्कार, कान्ति का होना।

२. रोग नाश, रोग अनाक्रमण, विजातीय द्रव्य, विष आदि का प्रतिकार, संहार।

३. नीरोगता, शक्ति, शौर्य, प्रसन्नता, वीरता जीव आदि की वृद्धि होना।

इन मणियों का धारण करना वाममार्गियों द्वारा स्वीकृत **गण्डा ताबीज, डोरा धागा** आदि **नहीं है,** अपितु यह **मणियों द्वारा आरोग्य लाभ** की आयुर्वेदिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है। ईश्वरोक्त वेद का चिकित्सा विधान है। इन मणियों का उपयोग खाने तथा लगाने के रूप में होता है। इन चारों प्रकार की मणियों का प्रभाव **मिर्च मणि** के उदाहरण से भली भाँति समझ

---

१. खनिः स्त्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः। कौटि. २/२७/११/२, अर्थात् किसी खदान, विशेष जल प्रवाह तथा प्रकीर्णक=इन दोनों से भिन्न स्थानों में उत्पन्न मणि खनिज मणि कहाते हैं।

२. मणिः कौटो मालेयकः पारसमुद्रकश्च। कौटि. २/२७/११/२, अर्थात् कौट=मलय सागर के कोटि स्थान, मालेयकः=मलय देश के कर्णी पर्वत तथा पारसमुद्रकः=समुद्र पार सिंगल में उत्पन्न तीन प्रकार की मणियाँ होती हैं।

३. मणिर्वीरुधां त्रायमाणो. । अथर्व.८/७/१४, अर्थात् वीरुध=लता, औषधियों से बनायी गई, मणिः=गुटिका आदि औषधि रोगों से बचाने वाली होती हैं।

आ जायेगा। मिर्च नित्यप्रति भक्षण करते हैं, मिर्च का प्रभाव अन्दर खाने पर भी प्रत्यक्ष दीखता है, ऊपर से लगाने, स्पर्श होने पर भी दीखता है। शान्त औषधियों का प्रभाव प्रत्यक्ष दीखता नहीं, पर पड़ता अवश्य है। धारण का मात्र पहनना अर्थ नहीं होता, लगाना भी होता है। चिकित्सा प्रसङ्ग में चारों मणियों को कूट, पीस आदि द्वारा लगाना, गुटिका, वटी आदि रूप में खाना आदि सब धारण करने का तात्पर्य है।

शङ्खमणिः

वाताज्जातो. अथर्व. ४/१०/१-७ मन्त्रों का देवता शंख है। इन मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय शंख है। **शाम्यतीति शङ्खः**[1]=जो तापों को शान्त करता है, शान्ति प्रदान करता है, वह शङ्ख कहलाता है। आध्यात्मिक पक्ष में परमात्मा व जीवात्मा शंख है। क्योंकि ये दोनों इन्द्रियों को शान्त करते हैं, काम, क्रोध आदि शत्रुओं का दमन करते हैं। आधिदैविक पक्ष में शान्ति प्रदान करने से जल तत्त्व की भी शङ्ख संज्ञा है। आधिभौतिक पक्ष में जल में उत्पन्न होने वाला, समुद्र तथा बड़ी नदियों में उत्पन्न होने वाला आरोग्यजनक पदार्थ शङ्ख कहा जाता है। अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के १० वें सूक्त के इन मन्त्रों में तीनों पक्षों के अर्थों का संकेत है।

चिकित्सा प्रसङ्ग में समुद्र तथा नदी में उत्पन्न शङ्ख पदार्थ का ग्रहण होगा। उस आरोग्य जनक शङ्ख पदार्थ की उत्पत्ति का अथर्व. ४/१०/१-७ मन्त्रों में गम्भीर रहस्य निर्दिष्ट है। प्रथम मन्त्र का अर्थ है- समुद्र में उत्पन्न होने वाले शंख में मोती का निर्माण, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य तथा सुवर्ण आदि पार्थिव पदार्थों के सम्बन्ध से होता है। इतने बड़े समुदाय के संयोग से बना, **कृशनः शङ्ख**= चमकीला, सुनहरा शङ्ख मोती (**क्रशनमिति हिरण्यनाम,** निघ.१/२) हमें, **अहसः पातु**=रोग, पीड़ा, पाप, दोष आदि से सुरक्षित करता है। इस मन्त्र में जहाँ शङ्ख द्वारा रोग निवारण की चिकित्सा बतायी है, वहीं यह भी संकेत किया है, कि शङ्ख का मोती केवल समुद्र से ही नहीं बनता, अपितु वृष्टि, वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत्, सूर्य, सुवर्ण आदि भी मोती

१. *शमु उपशमे + खः, शमेः खः, उणा. १/१०२ इति सूत्रेण खः प्रत्ययः।*

निर्माण में सहाय्यक होते हैं।

यो अग्रतो. अथर्व. ४/१०/२ मन्त्र का अर्थ है-जो समुद्र के अन्दर चमकीले पदार्थों में सर्व प्रथम शङ्ख का मोती उत्पन्न हुआ है उस शङ्ख मोती से, **रक्षांसि**[1]=रक्त, मांस खाने वाले कृमियों को, **हत्वा**=नष्ट कर, **विषहामहे**=उनके विष को दूर कर सकते हैं।

मन्त्र में बाह्य तथा आन्तरिक कृमियों के दूरीकरण का शंख मणि को सहायक बताया है।

समुद्राज्जातो. अथर्व. ४/१०/५ मन्त्र का अर्थ है-समुद्र से उत्पन्न हुआ शङ्ख मणि, मोती तथा **वृत्र**=मेघ की सहायता से उत्पन्न हुआ शङ्ख, मणि, **दैवासुरेभ्यः**=दैविक अर्थात् आकाशीय विद्युत् आदि से जनित पीड़ाओं **हेत्याः**=घातक विषजन्य रोगों से हमें चारों ओर से बचाता है।

देवानामस्थि. अथर्व. ४/१०/७ मन्त्र का अर्थ है-**देवानाम्**=प्राणों की (**प्राणा वै देवाः**, शत. ब्रा. ८/२/२/८) शङ्ख मणि सुनहरी अस्थि स्वरूप है। जो मुक्ता शङ्ख के जलों में उत्पन्न होता है वह शङ्ख तेज, जीवन, बल, दीर्घायुत्व, सौ वार्षिक जीवन देने वाला है।

मन्त्र का तात्पर्य है कि शङ्ख तेज, बल, जीवन, दीर्घायु देने वाला है तथा रोग शामक पदार्थ है।

अथर्ववेद के इस सूक्त में शङ्ख मणि, शङ्ख मोती के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का विवेचन है। मानसिक, आन्तरिक, बाह्य विषघात, आकाशीय विद्युत् उत्पात आदि के संत्रास से सुरक्षित करने वाला यह सामुद्रिक शङ्ख होता है। **शङ्ख मणि** मस्तिष्क, बुद्धि तथा हृदय सम्बन्धी रोग दूर कर मन, मस्तिष्क, बुद्धि का संतुलन बनाती है, बुद्धि निर्मल करती है, दुर्विचार नष्ट कर हटाती है।

वनौषधि चन्द्रोदय, भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में शङ्ख मणि को पौष्टिक, बलकारक, शीतल, नेत्र हितकारी, कान्ति वर्धक एवं गुल्म, संग्रहणी, विष

---

१. *रक्षांसि पद का निर्वचन व अर्थ पृष्ठ ७, ८ पर द्रष्टव्य है।*

दोष, श्वास रोग नष्ट करने वाला बताया है[1]। इन ग्रन्थों में मोती के चमकीले स्वरूप[2], उत्पत्ति[3] स्थान आदि का भी विशद वर्णन है।

शङ्ख मणि औषध है जादू टोना, गण्डा ताबीज का पिटारा नहीं है। युद्ध में शस्त्रों पर शंङ्ख आदि की लगी मणियाँ अपनी चमक से विषघातक अस्त्रों के प्रभाव को रोकती हैं, विषैली गैसों को नष्ट करती हैं।

प्रतिसरो मणिः=स्राक्त्यो मणिः

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराम बध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ अथर्व. ८/५/१ ॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्त्रः। अथर्व. ८/५/३
अयं स्राक्त्यसो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः। अथर्व. ८/५/४॥
स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि राक्षसः ॥ अथर्व. ८/५/८॥
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ अथर्व. ८/५/८ ॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ अथर्व. ८/५/१३ ॥

अयं प्रतिसरो. अथर्व. ८/५/१, **स्राक्त्येन.** अथर्व. ८/५/८, **स इद् व्याघ्रो.** अथर्व. ८/५/१२, **नैनं घ्नन्ति.**, अथर्व. ८/५/१३ अथर्ववेद

---

१. *मौक्तिकं सुमधुरं सुशीतलं दृष्टि रोगशमनं विषपिहम्।*
राजयक्ष्म परिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्धनम् ॥
कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यजित्।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ निघण्टु रत्ना. ॥

२. (i) *शंखस्या च्युतहारिणो जलनिधौ ये वंशजा कम्बुकास्तेष्वन्तः*
किल मौक्तिकं भवति वै तच्छुक्रतारानिभम्।
(ii) *वै क्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।*
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः।
गरुडोद्गारश्चैव ज्ञातव्या मणयो ह्यमी ॥ आयुर्वेद प्रकाश ५/१३१

३. *शुक्तिः शङ्खो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः।*
वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञै मौक्तिक योनयः ॥ आयुर्वेद प्रकाश ५/१३

के इन मन्त्रों में **सपत्नहा, वृत्रहन्, पराभावयन्, विमृथः, हन्मि, सपत्न कशेनः, घ्नन्ति** शब्द आये हैं। जिनको देखकर आक्षेपक वेदोक्त मणियों को झूठी प्रशंसा वाली तथा मूर्खों की बातें कह रहे हैं।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में **प्रतिसर** और **स्त्राक्त्य** शब्द आये हैं। जिनमें **प्रतिसर** का अर्थ है -

प्रतिसरतीति प्रतिसरः, अर्थात् जो किसी के प्रति घूमता हुआ जाये वह पदार्थ **प्रतिसर** कहाता है। तात्पर्य हुआ **प्रतिसर**=घेर कर कार्य करने वाला पदार्थ प्रतिसर संज्ञक होता है।

स्त्राक्त्य का अर्थ है-

सृत्वा अनक्ति इति स्त्रक् (सृ गतौ, अञ्ज् व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) **स्त्रग् एव स्त्राक्त्यः**, अर्थात् जो सरकते हुए गति करते हैं, प्राप्त होते हैं वे पदार्थ स्त्राक्त्य कहे जाते हैं। तात्पर्य हुआ **स्त्राक्त्य**=नैरन्तर्य से कार्य करनेवाले पदार्थ स्त्राक्त्य होते हैं। ये दोनों प्रतिसर स्त्राक्त्य नाम एक ही पदार्थ के वाचक हैं।

व्युत्पत्त्यनुसार **प्रतिसर** या **स्त्राक्त्य** शब्द ईश्वर, वीर्य, पराक्रम, औषधि आदि पदार्थों के वाचक हैं। जो रोग, दोष, शत्रु आदि को **प्रतिसर**=घेरा बनाकर, **स्त्राक्त्य**=नैरन्तर्य की गति से नष्ट करते हैं।

वेदों के शब्द यौगिक हैं, रूढि नहीं है। अतः सपत्न का अर्थ रोग, दुर्वृत्ति, राष्ट्र घातक आदि हैं। शरीर में विद्यमान **सपत्न**=रोगों को, ईश्वर, वीर्य शक्ति औषधि आदि नष्ट करते हैं। **राष्ट्रीय सपत्न**=शत्रुओं को वीर पुरुष नष्ट करते हैं। अथर्ववेद के ८/५/१-१३ मन्त्रों में शारीरिक रोगों, राष्ट्रीय घातकों को पराभूत करने का उपाय निर्दिष्ट हैं। **नैनं घ्नन्ति.** १३ वे मन्त्र में बताया है-

जो ईश्वरीय बल, वीर्य बल एवं औषधि बल को प्राप्त कर लेता है उसे **अप्सरस्**[1]=सौन्दर्य प्रिय कृमि, कीट, मनुष्यादि प्राणी, **गन्धर्व**[2]=इन्द्रियासक्त

---

१. अप्सरस शब्द का विस्तृत विवेचन पृष्ठ ८ पर देखें।
२. गन्धर्व शब्द का विस्तृत विवेचन पृष्ठ ८ पर देखें।

प्राणी दुर्वृत्तियाँ, कृमि आदि तथा **मर्त्याः**=मरने, जीने की प्रवृत्ति में संलग्न मनुष्यादि पराजित नहीं कर सकते।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में वैद्यों द्वारा **प्रतिसर मणि**=स्त्राक्त्य मणि की पहचान एकमुखी रुद्राक्ष के रूप में बतायी गई है। रुद्राक्ष वायु नाशक, कफ निःसारक, हृदय को बल देने वाला है। रुद्राक्ष रूप प्रतिसर मणि=स्त्राक्त्य मणि ओज और बल देने वाली औषधि है। रुद्राक्ष सेवन द्वारा बल, वीर्य, ओज से सम्पन्न व्यक्ति पर सर्प, व्याघ्र आदि का आक्रमण प्राणघातक सिद्ध नहीं होता। मेधा, प्रतिभा प्रखर बनती है।

सायणाचार्य प्रतिसर मणि=स्त्राक्त्य मणि को **तिलक** औषधि मानते हैं[१]। कौशिक सूत्र के भाष्यकार दारिल केशव प्रतिसर मणि को सिलुत्ककः औषधि मानते हैं[२]।

पर अनुभवी वैद्य सायणाचार्य एवं कौशिक सूत्र भाष्यकार दारिल केशव के तिलक व सिलुत्कक औषधि मन्तव्य से सहमत नहीं है **'अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान'** के लेखक अनुभवी **वैद्यराज पं. देवदत्त शास्त्री,** इलाहबाद लिखते हैं-

सायण एवं कौशिक सूत्र भाष्यकार दारिल केशव का प्रतिसर मणि= स्त्राक्त्य मणि को तिलक वृक्ष तथा सिलुत्कक औषधि मानना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रतिसर=स्त्राक्त्य मणि की राजनिघण्टु में जो पहचान **पीतमणि पुष्पराजः तिलकवृक्ष निर्मितो मणिः** पुखराज रत्न तथा तिलक वृक्ष से बतायी गई है, वह अथर्ववेद में कहे गये प्रतिसर=स्त्राक्त्य मणि के गुण घटते हैं[३]।

वैद्य पं. देवदत्त शास्त्री ने नेपाल नरेश के राजगुरु स्व. हेमराज शर्मा द्वारा संदर्शित **अंशु दीपिका व रत्न दीपिका**, में एकमुखी रुद्राक्ष को स्त्राक्त्य मणि से अभिहित किया गया है...। नाम, रूप, गुण धर्म में स्त्राक्त्य मणि

---

१. अनेनार्थ सूक्तेन दध्नि मधुनि च त्रिरात्रं वासितं तिलकमणिं सम्पात्य अभिमन्तय बध्नीयात्। अथर्व. सा.भा. ८/५/१

२. अयं प्रतिसर इति सिलुत्ककः। कौशिक सूत्र भाष्य ८/१९॥

३. अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान, पृ.१९७॥

और रुद्राक्ष में पूर्ण समानता और अभिन्नता है। प्रतिसर=स्राक्त्य मणि के रूप में सिलुत्कक की पहचान हमें कहीं भी नहीं मिली है[1]।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मन्त्रों में **प्रतिसर**=स्राक्त्य मणि शब्द ईश्वर, वीर्य, बल, पराक्रम, औषधि का वाचक है। और ये सभी पदार्थ **सपत्न**=रोग, शत्रु, रूप दोषों, दुर्गुणों, कष्टों से बचाते हैं। बचाव की यह न झूठी प्रशंसा है और न ही मूर्खपन का विश्वास। प्रयोग करके लाभ उठाने का है।

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैस्त्वा जिघांसति।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ अथर्व. ८/५/१५ ॥
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥ अथर्व. ८/५/२२ ॥

यस्त्वा कृत्याभिः. अथर्व. ८/५/१५, **इन्द्रो बध्नातु**. अथर्व. ८/५/२२ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में आक्षेपक उपेन्द्र राव **कृत्या**=जादू टोना मान रहे हैं, जो उनका निरर्थक अपलाप है।

वेदों के शब्द यौगिक हे, रूढ्यर्थक नहीं है[2]। अतः यौगिक होने से एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। वेदार्थ के इस सिद्धान्त को न जानने वाले किसी भी एक शब्द को देखकर रूढ्यर्थ में निमग्न हो जाते हैं। ऐसे ही जन मन्त्रों में **कृत्या** शब्द देखते ही वाममार्गियों के जादू टोने की अर्थ संगति लगा बैठते हैं। **कृत्या** शब्द का मात्र हिंसा अर्थ ही नहीं है, अपितु बहुत से अर्थ हैं। **कृत्या** शब्द की निष्पत्ति अनेक धातुओं से होती है।

डुकृञ् करणे+क्यप्=कृत्या, विभाषा कृवृषोः, पा. ३/१/१२० **कृञः श च** पा. ३/३/१०० इति क्यय् प्रत्ययः।

कृञ् हिंसायाम्+क्यप्=कृत्या, विभाषा कृवृषोः पा. ३/३/१०० इति क्यप् प्रत्ययः।

कृती छेदने+क्यप्=कृत्या ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः, पा. ३/३/११० इति क्यप् प्रत्ययः।

---

१. *अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान, पृ. १९७ ॥*
२. *(i) नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।*
यन्न विशेष पदार्थ समुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्तदूह्यम् ॥ पा. महाभा. ३/३ .'ः
(ii) यौगिक शब्द की विशेष व्याख्या पृ. ५७ पर द्रष्टव्य है।

कुर्वन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो करते हैं, जिसके द्वारा करते हैं, जिस कर्म, क्रिया को करते हैं, वे सब कृत्या संज्ञक हैं।

कृन्तन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो काटते हैं या काटने वाले हैं, जिसके द्वारा काटते हैं एवं जिसको काटते हैं, वे सब **कृत्या** हैं।

तात्पर्य यह हुआ कर्म करने वाले, कर्म के साधन एवं किया जाता हुआ कर्म **कृत्या** शब्द के शब्दार्थ हैं। हिंसा करने वाले, हिंसा के साधन, हिंसा कर्म करने का प्रयत्न हिंसा शब्द के वाच्यार्थ हैं एवं काटने वाले, काटने के साधन, काटने का कर्म आदि कृत्या शब्द के अभिहितार्थ हैं।

कृत्या शब्द के इन शब्दार्थों का प्रकरणानुसार विनियोजन होता है। जहाँ रोग, दुष्ट शत्रु आदि पीड़ादायक पदार्थों का प्रसङ्ग होता है, वहाँ हिंसन, कर्तन कृत्या शब्द का अर्थ संगतार्थ होता है। जहाँ रोग, शत्रु अर्थ नहीं होता, वहाँ कृत्या का अर्थ कर्म, कर्म साधनों का अर्थ संगत होता है।

यस्त्वा. अथर्व. ८/५/१५ मन्त्र में **कृत्याभिः** शब्द विशेष्य है, **दीक्षाभिः यज्ञैः** विशेषण हैं। तदनु मन्त्रार्थ है-जो **दीक्षाभिः**=मौन आदि विशेष व्रतों, **यज्ञैः**=दान आदि **कृत्याभिः**=कर्मों से, **जिघांसति**=जीतना चाहे, प्राप्त करना चाहे, उसे **इन्द्रः**=वह ऐश्वर्यशाली जीव, **वज्रेण शतपर्वणा**= सौ की पूरक व्रजरूप तेजस्वी वाणी से (पृ पूरणे, वज्र एवं वाक्, ऐ.ब्रा. २/२१) **जहि**=प्राप्त करे, परास्त करे।

इन्द्रो बध्नातु. अथर्व. ८/५/२२ इस मन्त्र में **मणि** शब्द आया है, जिसका प्रसङ्गानुसार बल, वीर्य सम्पन्न पुरुष रत्न अर्थ है। मन्त्रार्थ है- **इन्द्र**=परमात्मा, **स्वस्तिदा**=कल्याणकारी जो मनुष्य है उस तुझ के लिए ऐसे **मणिम्**=बल, वीर्य सम्पन्न पुरुष रत्न को सम्बन्धित करे जो जयशील, अपराजित, प्रभुभक्त, जितेन्द्रिय, निर्भय तथा सुखवर्षक होवे तथा वह रात दिन सब ओर से रक्षा करनेवाला हो।

इस प्रकार इन मन्त्रों में **कृत्या**=जादू टोना का संकेत नहीं है, अपितु **कृत्या** शब्द कर्म का अभिधायक है।

वरणमणिः

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।

तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः॥ अथर्व. १०/३/१

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्।

अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते॥ अथर्व.१०/३/४

अयं मे वरणो. अथर्व. १०/३/१, **अयं ते कृत्याम्**. अथर्व. १०/३/४, अथर्ववेद के इन मन्त्रों में आक्षेप्ता पाप निवारण का जादू टोना मानते हैं, यह उनकी भूल है।

अथर्ववेद के दशम काण्ड के तृतीय सूक्त में वरणमणि का प्रतिपादन है। वरण का अर्थ है-

वरति, वृणाति, वारयति वृणोति वृणुते वेति वरणः।

अर्थात् जो संयमन, स्वीकार करता है, ढकता है, वह **वरण** कहा जाता है।

यह **वरण** शब्द ईश्वर, जितेन्द्रिय, राजा औषधि आदि का वाचक है। इन सभी अर्थों की संगति इन मन्त्रों के साथ संभव है। इन मन्त्रों की औषधि संगति में **वरण का अर्थ वरण वनस्पति है**। वेदोक्त वरण वनस्पति को वैद्यों की भाषा में **बिल्व** सदृश वृक्ष विशेष माना जाता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थ भावप्रकाश में वरण को **वरुण** नाम से व्याख्यात किया गया है। वरण औषधि गलितकुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, रक्तविकार आदि का विनाशक तथा हृदय बलकारक है। भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में वरण के गुण बताते हुए कहा है-

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः। भावप्रकाश निघण्टु।

अर्थात् वरण वनस्पति के वरुण, सेतु, तिक्तशाक एवं कुमारक नाम हैं।

वरुणो.... कृमीन् रक्तदोषं शीर्षवातं मूत्राघातं, हृद्रुजम् हृद्रोगं नाशयत्येव। निघण्टु रत्ना.

अथार्त् **वरुण**=वरण वनस्पति कृमि, रक्तदोष, सिर की वायु, मूत्र रोग और हृदय रोगों को नष्ट करती है। हृदय रोग को निश्चित ही नष्ट करती है।

वरण वृक्ष रुधिर विकार नाशक, वात विनाशक है मूत्र, कृच्छ्र, सुजाग आदि रोगों की उत्तम औषधि है।

प्रसङ्गगत **अयं मे वरणा**. अथर्व. १०/३/१ मन्त्र में ईश्वर या वैद्य से आरोग्यता के लिये प्रार्थना की गई है। मन्त्र का अर्थ है-हे ईश्वर या वैद्य ! यह सुभूषित करने वाली वरुण औषधि **सपत्न**=रोग आदि की नाशक है। सुख सेचक है, उस वरुण औषधि के द्वारा वैद्य, **त्वम्**=आप, **शत्रून्**=शिर, हृदय, रक्त आदि के रोगों को दूर कर दीजिये, नष्ट कीजिये।

अयम् के कृत्याम्... अथर्व. १०-३-४ मन्त्र में ईश्वरीय आश्वासन अथवा वैद्य आश्वासन का संकेत है। मन्त्र के अर्थ है-हे आतुर ! तुम्हारी फैली हुई कर्म क्रिया को **वरण**-वरुण वनस्पति शक्ति प्रदान कर, सम्पन्न करे, पुरुष सम्बन्धी भयों को दूर करे। यह वरुण औषधि सभी प्रकार के पापों को रोगों को दूर करेगी।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में जादू टोना का कोई संकेत नहीं है। वरण पदार्थ औषधि है। इस वेदोक्त **वरण मणि** को प्रकृत सूक्त में ही वनस्पति नाम दिया है। मन्त्र है -

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः।
यक्ष्मो योऽस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्॥ अथर्व. १०/३/५

अर्थात् यह दिव्य गुण सम्पन्न वरण वनस्पति, **वारयाता**=ढकने के लिये, रोगों के निवारण के लिये है, यह रोगी में आविष्ट यक्ष्म रोग को दूर करने वाली है। **देवाः**=दिव्य गुण सम्पन्न वैद्य इसके द्वारा, **तम्**=उन रोगों को नष्ट करता है, रोकता है।

वरण मणि का उपयोग हृद् रोग, हृत् शूल आदि में स्वरस आदि के भक्षण, तथा पत्रादि के लेपन, गोली आदि के रूप में किया जाता है। इसके सेवन से स्वप्न दोष, निद्रा आदि रोग दूर होते हैं।

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादयो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते॥ अथर्व. १०/३/७
यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा।

एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥

अथर्व. १०/३/१३

अरात्यास्त्वा. अथर्व. १०/३/७, **यथा वातो वनस्पति.** अथर्व. १०/३/१३ मन्त्रों का सम्बन्ध आक्षेप्ता **अभिचार कर्म** = शत्रुमारक तथाकथित जादू टोना व पुरश्चरण से कर रहे हैं। जबकि मन्त्रों में इन कर्मों का कोई विधान नहीं है। बड़ा ही आश्चर्य है ! **घञन्त चर** धातु के साथ **अभि** का सम्बन्ध होते ही **कौशिक सूत्रकार** सायणाचार्य आदि भाष्यकारों एवं ब्लूम फील्ड, कीथ आदि पाश्चात्त्य विद्वानों को जादू टोना, झाड़ फूँक आदि बीभत्स अर्थ ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

अन्य उपसर्गों की भाँति **अभि** उपसर्ग भी अनेकार्थक है।

पूजोक्तीच्छादने नृत्ये साहश्याम्नययोरभि।

सारुप्याभिमुखव्याधी स्याद् भृशार्थ प्रयोगयोः ॥ लघुउपसर्गवृत्तिः १०॥

अर्थात् **अभि** उपसर्ग **पूजा**=सत्कार, **उक्ति**=कहना, **इच्छा**=चाह, **अदन**=खाना, **नृत्य**=नाचना, **साहश्य**=समान, **आम्नाय**=वेदाभ्यास, **सारुप्य**=अनुरूप, **अभिमुख**=सामने, **व्याधि**=रोग, **भृशार्थ**=बहुत, **प्रयोग**=प्रयोग इन अर्थों में होता है।

अभि सर्वतो भावे च, अर्थात् अभि के सर्वतो भाव की ओर भी अर्थ हैं।

अभि शब्द के इन अर्थों के परिप्रेक्ष्य में प्रकृत **अरात्याः**. अथर्व. १०/३/७ मन्त्र में आये **अभिचार शब्द का अर्थ रोग, पीड़ा आदि ही संगत होता है**। इस अर्थ में ही मन्त्रगत **वरणः वारयिष्यते** पद संगत हो सकता है। वरण ईश्वर, वीर्य, राजा तथा औषधि आदि पदार्थ हैं। यह पूर्व के विवेचन से स्पष्ट है। इस प्रकार मन्त्रार्थ हुआ-

वरणः=ईश्वर, वीर्य, वरुण औषधि तुझ आतुर को, **अराति**= अदानवृत्ति (**रा दाने**) से, **निर्ऋतिः**=दुराचार से, **अभिचारात्**=रोग आक्रमण से और भय से तथा मृत्यु के अतिप्रबल उत्पीड़न से, **वारयिष्यते**=बचायेगी।

मन्त्र का तात्पर्य है **वरण**=ईश्वरीय शक्ति, वीर्य का बल एवं औषधि

का सेवन इतना बलशाली बना देते हैं कि दुराचार, रोग आदि के भय नहीं सताते। **अभिचार का अर्थ** रोग, पीड़ा आदि है, जादू टोना नहीं।

इसी प्रकार **यथा वातो.** अथर्व. १०/३/१३ मन्त्र में **पुरश्चरण**=गिड़गिड़ाहट नहीं है, अपितु वरण शक्ति के तेज का प्रकथन है। मन्त्रार्थ है-

हे वरणमणि ! जैसे वायु पीपल, गूलर आदि औषधियों को तथा अन्य वृक्षों को अपने **ओजसा**=ओज शक्ति से, **भनक्ति**=नष्ट कर देती है (**भज विश्राणने**) उखाड़ देती है, वैसे मेरे पूर्व से उत्पन्न और आगे होने वाले, **सपत्न**=अन्य गतिविधियों के साथ रहने वाले रोग व पीड़ाओं को, **भङ्ग्धि**=नष्ट करती हो और रक्षा करती हो।

ये मन्त्र मूत्र कृच्छ्र, सुजाग, हृत् शूल आदि रोग निवारण के मन्त्र हैं, जादू टोना, अभिचार पुरश्चरण के अभिद्योतक मन्त्र नहीं हैं। जो आयुर्वेदिक चिकित्सा करने, कारने वाले हैं, वे वरणमणि के गुण, लाभ से भली भाँति परिचित है।

तांस्त्वं प्रच्छिन्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः॥ अथर्व. १०/३/१६॥
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज अहितम्।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समवक्तु मा॥ अथर्व. १०/३/१७॥

तांस्त्वं प्र. अथर्व. १०/३/१६, **यथा सूर्यो.** अथर्व. १०/३/१७ इन दो मन्त्रों में तथा पूर्व के १४ वें, १५ वें मन्त्रों में ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आक्षेपक ने पुनरुक्त का दोष जड़ा है, वह अनुचित है।

वेदों में जहाँ-जहाँ पुनर्वचन है वह **पुनरुक्त** नहीं कहा जाता है, अपितु **अनुवाद** कहा जाता है। वेदों के पुनर्वचन को अनुवाद क्यों कहते हैं ? क्योंकि अनुवाद संज्ञा सार्थक कथन की होती है, निरर्थक की पुनरुक्त होती है। जैसा कि वात्स्यायन कहते हैं -

अर्थवानभ्यासोऽनुवादः। न्याय द. वात्स्या. २/१/६१

अर्थात् अर्थवान् अभ्यास को अनुवाद कहते हैं। अनुवाद किसका

होता है ? इसे स्पष्ट करते हुये गौतम ने कहा है -

विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः । न्याय द. २/१/६१

अर्थात् कर्म की विधि का जो विधान किया गया उसका जो **अनुवचन**=पश्चात् वचन होता है, वह अनुवाद कहाता है।

पुनरुक्त किसे कहते हैं ? इसे बताते हुये वात्स्यायन कहते हैं -

अनर्थकोऽभ्यासः पुनरुक्तम् । न्याय द. वात्स्या. २/१/६१

अर्थात् अनर्थक अभ्यास को पुनरुक्त कहते हैं।

वात्स्यायन तथा गौतम के इन वचनों से स्पष्ट है वेदों में आये पुनर्कथन[1] को **पुनरुक्त** नहीं जा सकता, उसकी तो अनुवाद संज्ञा है। मन्त्रों में जिस विधि या कर्म का पहले निर्देश है, उसका पुनः आवर्तन उस कर्म या विधि की आवश्यकता की सार्थकता से किया गया है।

लोक में भी अभीष्ट की सिद्धि न होने तक पुनः पुनः कर्म की आवृत्ति की जाती है। व्यक्ति को चाहे प्रथम कक्षा उत्तीर्ण करनी हो, चाहे अन्तिम डिग्री प्राप्त करनी हो पाठक को वही एक पाठ पढ़ना लिखना, तैयार करना रूप समान कर्म करना पड़ता है और इस कर्म में पढ़ाने वाले भी भिन्न-भिन्न होते हैं, पर पढ़ने का कर्म तद्वत् एक ही रहता है।

प्रसङ्गगत **यथा वातः**, अथर्व. १०/३/१४ **एवा सपत्नात्.** अथर्व. १०/३/१५ मन्त्रों में **पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु** इस मन्त्रांश का जो आवर्तन किया है, उस आवर्तन का प्रयोजन वरण मणि के सामर्थ्य का वर्णन करना है वरण की रोग शामक शक्ति की प्रखरता के कारण से किया गया है।

इसी प्रकार **यथा सूर्यो.** अथर्व. १०/३/१७ मन्त्र से २५ वें मन्त्र तक एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु। तेजसा मा समुक्षतु यशसा समक्तु मा मन्त्रचरण का आवर्तन किया गया है। इस आवर्तन में **कीर्ति**=यशः, प्रसिद्धि, **भूति**=ऐश्वर्य, तेज, **यश**=प्रशंसा की प्राप्ति बार-बार की गई है।

---

१. पुनरुक्त, एवं अनुवाद का विशिष्ट परिज्ञान 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' के आमुख=वेदों पर आरोप वितण्डा स्थित 'त्रुटि रहित वेद' प्रसङ्ग में तथा पुस्तक के प्रश्नोत्तर १३ और १५ में द्रष्टव्य है।

क्योंकि वरण मणि अमृत स्वरूप औषधि है उसमें चन्द्र, आदित्य, पृथिवी, जातवेदस् अग्नि, कन्या, रथ, सोमपीथ=मातृदुग्ध मधुपर्क, अग्निहोत्र, वषट्कार, यजमान, यज्ञ, प्रजापति, परमेष्ठी आदि में सन्निहित जो **यश**=प्राण शक्ति, वीर्य शक्ति है (**प्राण वै यशः**, शत. ब्रा. १०/६/५/६, **यशो वीर्यम्**, शत. ब्रा. १०/६/५/६) वह अकेले वरण शक्ति में है। प्राणों की शक्ति सबको अभीष्ट है। वह प्राण शक्ति जिस जिस स्थान स्थान से अर्जित हो सकती है वहाँ-वहाँ से अर्जित करनी चाहिये। इस अर्जन प्रयोजन से यश प्राप्ति के वचन का पुनर्वचन किया गया है।

यह तात्पर्य हुआ कि **वरण मणि** सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि के सदृश दीप्ति वाला चमक वाला, यज्ञिय प्रवृत्ति वाला, पालन पोषण शक्ति वाला, दिव्यता को धारण करने वाला बनाती है। **वरणमणि की यह झूठी** या तान्त्रिक **प्रशंसा** नहीं है, **अपितु यथार्थ कथन** है। ईश्वर सबका कल्याण करता है, ईश्वर द्वारा सृष्ट सब पदार्थ भी कल्याणकारक हैं। जिन-जिन पदार्थों से कल्याण हो सकता है उन-उन में वैसा-वैसा सामर्थ्य, प्रभाव ईश्वर ने रखा है उन कल्याणकारक पदार्थों का वर्णन मन्त्रों में संगृहीत है। इन मन्त्रों को ओझाओं ने नहीं बनाया, अपितु ईश्वर द्वारा उपदिष्ट हैं।

फालमणिः

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्हो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥ अथर्व. १०/६/१
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ अथर्व. १०/६/२

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य. अथर्व. १०/६/१, **वर्म मह्यमयं मणिः**, अथर्व. १०/६/२ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में आक्षेपक को शत्रुवध का जादू टोना प्रतीत हो रहा है। आक्षेपक की यह प्रतीति मन्त्रों के पूर्वापार प्रकरण से नितान्त कल्पित है।

अथर्ववेद के दशम काण्ड के ६वें सूक्त में ३४ मन्त्र हैं। उनमें तृतीय मन्त्र को छोड़ सब मन्त्रों का देवता **वनस्पति** तथा **फालमणि** हैं।

फलिःवनस्पतिर्ज्ञेयो। काशिका ८/४/६, अर्थात् फल वाले द्रव्य=वृक्ष **वनस्पति** जानने चाहिये।

वनानां पाता वा पालयिता वा। निरु. ८/१/३ ॥

अर्थात् जो वन=जल को (**वनमिति जलनाम**, निघ. १/१२) सुरक्षित रखते हैं, वे **वनस्पति** कहे जाते हैं।

वनस्पति शब्द की इन परिभाषाओं के अनुसार उदुम्बर प्लक्ष, अश्वत्थ आदि पदार्थ वनस्पति कहे जाते हैं।

फाल शब्द **फलनिष्पत्तौ** तथा **त्रिफला विशरणे** धातुओं से **अण्** तथा **घञ्** करके निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है-जन्म, उत्पत्ति, पूर्णता, सम्पन्नता प्रदान करने वाला तथा विनष्ट, २ भागों में विभक्त, फटा हुआ।

प्रकृत मन्त्रों में वनस्पति का सम्बन्ध लगाने पर यह अभिलक्षितार्थ होगा कि रसवर्धक उदुम्बर, प्लक्ष, अश्वत्थ आदि शारीरिक शक्ति, प्राणशक्ति, बल और वीर्य प्रदान करते हैं, बल, वीर्य, ओज को सम्पुष्ट करते हैं। **वनस्पति** देवता मानने पर उदाहरण स्वरूप प्रथम **अरातीयोः**. अथर्व. १०/६/१ मन्त्र का अर्थ होगा -

उदुम्बर आदि वनस्पतियों के रसों से उत्पन्न ओज के द्वारा मैं भ्रातृ भाव से रहित शत्रुभूत जो भाई का पुत्र है उसका शिर छिन्न भिन्न करता हूँ, जो अदान प्रवृत्ति वाला है, दुष्ट हृदय वाला है, द्वेष करने वाला है।

मन्त्र में न्याय व्यवस्था का संकेत है। ,यदि कोई राष्ट्र का घातक स्वजन ही हो, तो भी उसे राज्य से दूर करना आवश्यक है। मन्त्र में ओज से भ्रातृव्य के सिर को काटने की बात कही है। **ओज, भाला, तलवार रूप कोई हथियार नहीं है।** ओज दीप्ति व इन्द्रिय शक्ति है, जिसके द्वारा दुष्ट व द्वेष करने वाले को सहृदय व द्वेष शून्य बनाने का संकेत है। सहृदय बनाना व द्वेष शून्य करना ही सिर काटना है। ये कार्य शिर=मस्तिष्क से ही होते हैं।

प्रकृत सूक्त के साथ जब फाल का सम्बन्ध होगा, तब पूर्वापर प्रकरण के अनुसार **फाल** शब्द हल की फाल एवं हल की फाल से बनी क्यारियों वाले, खेत, नदी तट, नदी तट के भूभाग आदि भूमि सम्बन्धी अर्थ

होंगे। क्योंकि खेत, भूमि नदी, हल की फाल आदि अन्न की उत्पत्ति करके प्राणियों की रक्षा करते हैं। यह फालमणि शरीर में धारण करने वाली **माला स्वरूपा** नहीं है। जैसा कि **सायंणाचार्य ने** कौशिक सूत्रानुसार खदिर वृक्ष की फाल से बनी मणि विशेष मानी है। सायणाचार्य के वाक्य है-

खदिर काष्ठफालविकारं मणिं शत्रुनाशाय तथा सर्वकामाप्तये बध्नाति सूक्तेनानेन। अथर्व. सा. भा. १०/६/१

अर्थात् खदिर काष्ठ के फाल के विकार की मणि को शत्रु का नाश करने के लिये तथा सब काम की प्राप्ति के लिए इस सूक्त से बांधे।

उपेन्द्र राव यह आक्षेप सायणाचार्य के इन वाक्यों के आधार पर वेदमन्त्रों को निरर्थक लम्बी प्रशंसावाले मान बैठे।

जबकि इन प्रकृत मन्त्रों में खदिर काष्ठ से बनी फाल मणि विशेष के बांधने आदि का विधान नहीं है, अपितु खेत, अन्न आदि उत्पत्ति एवं उनकी सुरक्षा के प्रबन्ध करने का संदेश है। खेतरूपी फालमणि को काँटा आदि के घेरे द्वारा खेतमणि को बचाना ही फालमणि बाँधना है।

अरातीयोः. अथर्व. १०/६/१ मन्त्र का अर्थ है-अन्न की ओज बल से अदानशील दुष्ट हृदय वाले, द्वेष करने वाले, **भ्रातृव्यस्य**=भ्रातृभाव से शून्य शत्रुभूत (**भ्रातुर्व्यच्च, व्यन्सपत्न्ये,** पा. ४/१/१४४,१४५) सिर को छिन्न भिन्न करता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है अन्न ऐसा बल है जो शत्रुओं को भी दानवृत्ति, उत्तम हृदय वाला बनाकर द्वेष शून्य और भ्रातृ भाव से मुक्त कर देता है।

वर्म मह्यमयम्. अथर्व. १०/६/२ मन्त्र का अर्थ है-ये **मणिः**=मणि रूप अन्न या भूमि, खेत, **फालात्**=हल की फाल से उत्पन्न हुए फाल कहे जाने वाले मेरे लए, **वर्म**=कवच का काम करेंगे। **मन्थनेन**=फाल सहित हल की जुताई से पूर्णता को प्राप्त यह फाल रूप खेत, **रसेन**=अन्न से (**रसः इति अन्ननाम**, निघ. २/७) **वर्चसा**=औषधियों के साथ (**ओषधीनां च वर्चसा**, मै. सं. ४/७/३) प्राप्त होवे।

मन्त्र में आया **फाल** शब्द हल की फाल से रेखाङ्कित व क्यारी बने

खेत का वाचक है, तान्त्रिक खदिर काष्ठ से बनी मणि विशेष का नहीं।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चतसो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥
अथर्व. १०/६/६

यमबध्नात्. अथर्व. १०/६/६ इस मन्त्र को आक्षेपक तान्त्रिक ओझा पुरश्चरण मन्त्र बताते हैं। **यमबध्नात्.** अथर्व. १०/६/६ इस मन्त्र में कान्ति व गति के साधन बताये हैं। मन्त्र का अर्थ है-

बृहस्पति ने जिस, **घृतश्चुतम्**=दिप्ति चुआने वाली (घृ क्षरणदीप्त्योः), **खदिरम्**[1]=पत्तों के रस के सामर्थ्य को देने वाली, **फालम्**=रोगों को नष्ट करने वाली भूमि (क्यारी युक्त हल फाल से फटी हुई, **ञिफला विशरणे**), तेजस्विनी,. **मणिम्**=अन्न रूपा मणि को, **ओजसे**=बल के लिए बाँधा है, संयुक्त किया है, निर्माण किया है। उस मणि को जब, **अग्नि**=प्रगतिशील जीव, **प्रत्यमुञ्चत**=अपनी ओर छोड़ता है, ग्रहण करता है, धारण करता है तब वह अन्न रूपा मणि उसके लिये, **भूयोभूयः**=अधिकाधिक, **श्वः श्वः**=उत्तरोत्तर **आज्यम्**=गति, कान्ति प्रक्षेप आदि सामर्थ्य से (**आ+अञ्ज् व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु+क्यप्**) भर देती है, उस अन्न मणि के सामर्थ्य के द्वारा तू जीव अप्रीतिकर रोग, दुःख आदि को नष्ट करने का सामर्थ्य, **जहि**=प्राप्त कर।

इस मन्त्र में भूमि व अन्न की महत्ता, शक्ति और अन्न प्राप्ति का वर्णन है तथा इसके आगे के मन्त्रों में भी किस सामर्थ्य वाला जीव अन्न व भूमि को प्राप्त कर सकता है ? अन्नादि को प्राप्त कर **द्विषतः**=दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन, रोग, शत्रु आदि को दूर कर सकता है, इसका निर्देश है। जैसे इस मन्त्र में **अग्निः**=अग्रगणी, प्रगतिशील को अन्नादि प्राप्ति का अधिकारी बताया है, वैसे अग्रिम ७-१६ मन्त्रों में जो, **इन्द्र**=इन्द्रिय शक्ति सम्पन्न, **सोम**=शान्ति युक्त, **सूर्य**=गतिशील, प्रेरक, **चन्द्रमा**=अह्लादकारक, **अश्विनौ**[2]=दो के

---

१. *एतत् खलु वै पर्णसारं यत् खदिरः। मै. सं. ३/९/३*
२. *वेदों में अश्विनौ शब्द अध्यापक उपदेशक, राजा प्रजा, राजा रानी, नर नारी, ताता पिता, पिता पुत्र, कृषक सेवक आदि द्वित्व के जोड़े का कथन करता है।*

साहचर्य से कर्म में लगे हुये, प्राण अपान की शक्ति वाले, **सविता**=कर्म उत्पादक, कर्म प्रेरक, कर्मों में संलग्न, यश प्राप्त, **वरुणः**=उत्तम, **देवाः**=दिव्य गुण सम्पन्न वाले जीव, भूमि से अन्न को उत्पन्न करने में, प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। वे अन्न, भूमि के अधिकारी हैं यह निर्देश किया है। इन गुणों वाले जीवों को ही खेत या अन्न मणि **वीर्य**=जीवनीय शक्ति, श्रवण शक्ति, दिग्विजयी सामर्थ्य, श्री, कृषि सामर्थ्य, सत्य सुनृता वाणी, **अमृत**=नीरोगता, सत्य भाषण का सामर्थ्य प्रदान करती है।

इस प्रकार यह भूमि, अन्न रूपा **फालमणि** विचित्र मणि नहीं है, न शत्रुमारक **तान्त्रिकों का तन्त्र** है। यह मणि प्राकृतिक सम्पदा है, जो सर्व हितकारी है। इन मन्त्रों में कृषि का वर्णन है तथा फाल शब्द भूमि व अन्न का वाचक है। इसकी सुस्पष्टता इसी सूक्त के १२ वें मन्त्र से स्पष्ट है। मन्त्र है-

यमबध्नात् बृहस्पतिर्वाताय मणिवाशवे।
तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः॥
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥

अथर्व. १०/६/१२

अर्थात् **बृहस्पति** ने जिस मणि को खेत, भूमि व अन्न को, **वाताय आशवे**=गति व शीघ्रता रूप व्याप्ति के लिये बाँधा है, संयुक्त कर बनाया है, उस इस, **मणिना**=खेत, भूमि व अन्न रूपा मणि के द्वारा नर नारी, **कृषिम्**=अन्नादि उत्पत्ति के कृषि कर्म की रक्षा करें वह क्षेत्र रूपी मणि वैद्यभूत नर नारियों के लिए अधिकाधिक, उत्तरोत्तर महानता देती है, जिस महानता से वह तू जीव शत्रुओं को विनष्ट करने का सामर्थ्य प्राप्त कर।

मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि इस सूक्त में कृषि कर्म के सहायक अन्न आदि तथा अन्न आदि के लाभ आदि का विशद विवेचन है। तान्त्रिकों द्वारा स्वीकृत व अभिमन्त्रित मणि धारण करके शत्रु नाश करने का वर्णन नहीं है। तान्त्रिक मणियों से शत्रुवध करना दुष्ट व सामाजिक तत्त्वों का निष्फल कर्म है।

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत। तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां
बिभिदुःपुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ अथर्व. १०/६/२०

अथर्वाणो. १०/६/२० मन्त्र में **फालमणि**=भूमि, अन्न आदि को प्राप्त कर उसके सामर्थ्य से कौन उत्तमता को प्राप्त होते हैं ? यह निर्दिष्ट किया है। मन्त्रार्थ है-

अर्थात् जब **अथर्वाणः**=स्थिर चित्त, स्थिर प्रज्ञ (थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः, निरु. ११/२/१३) स्थिर मति वालों ने, **फालमणि**=कृषि भूमि, अन्न आदि को, **अबध्नत**=बाँधा, कृषि कर्म किया, अन्न उगाया तथा उन्होंने **अथर्वणा**=स्थिर बुद्धि, प्रभु भक्ति, प्रभु कृपा से फालमणि को बाँधा, तब उन अथर्वाओं के मध्य **मेदिनः**=स्नेह सौहार्द (**त्रिमिदा स्नेहने**)वाले, **अङ्गिरसः**=गतिशील (**अगिगत्यर्थाः**) जन, **दस्यूनां पुरः**=उपेक्षणीय (**दसु उपक्षये**) काम, क्रोधादि शत्रु रूप नगरों को नष्ट करने में समर्थ हो गये। हे जीव ! उस फालमणि के द्वारा तू भी राग, शत्रु रूप बुराइयों को नष्ट करने का सामर्थ्य प्राप्त कर।

यह मन्त्र अथर्वा अथवा अङ्गिरा के कारनामों का सूचक नहीं है, अपितु स्थिर प्रज्ञ जिस उत्तम सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं उस उत्तमता का प्रतिपादक है। तान्त्रिक मणि बन्धन का अर्थ तो कौशिक सूत्रकार और सायणाचार्य आदि भाष्यकारों का है। २२-२८ वें मन्त्रों में भी **मणि**=ईश्वर, वीर्य, कृषि, भूमि, अन्न आदि मणि रूप सामर्थ्यों को, **बृहस्पतिः**[1]=बड़े-बड़े कर्मों का रक्षक, पालक जीव प्राप्त करता है, इसका निर्देश है।

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम्।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात्॥ अथर्व. १०/६/३४
एवमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा॥
अथर्व. १०/६/३५

यस्मै त्वा. अथर्व. १०/६/३४, एवं **एतमिध्मम्.**, अथर्व. १०/६/३५ अथर्व मन्त्रों को आक्षेपक तान्त्रिकों, दक्षिण वाममार्गियों के यज्ञ साधक मान रहे हैं और अपनी पुष्टि में लिख रहे हैं-**'यज्ञ करना तान्त्रिकों** के लिये आवश्यक है। अग्नि देवता तो उनका भी भला करता है वह केवल सम्प्रवादियों के पक्ष में ही बैठा नहीं रहता।' प्र. २९

---

१. *बृहस्पति बृंहतः पाता वा पालयिता वा। निरु. १०/१/६*

दशम काण्ड के षष्ठ सूक्त के अन्तिम इन मन्त्रों के विषय में आक्षेपक का उपर्युक्त कथन प्रलाप मात्र है। सूक्त के इन अन्तिम मन्त्रों में तो सूक्त के सम्पूर्ण मन्त्रों के उद्देश्य का प्रतिपादन किया है।

यस्मै त्वा. अथर्व. १०/६/३४ मन्त्र का अर्थ है-हे **यज्ञ**=श्रेष्ठतम अग्निहोत्र, परोपकार, विद्वत्सम्मान आदि कर्मों की संवर्धक, **मणि**=कृषि, भूमि, अन्न, वीर्य, ईश्वर भक्ति आदि रूपा मणि ! तुझे जिस, **शिवम्**=कल्याणकारी को सौ दक्षिणायन वर्षों के लिए, श्रेष्ठता के लिए जीवन प्रदान कर।

एतमिध्यम्. अथर्व. १०/६/३५ मन्त्र का अर्थ है-हे **अग्नि**=अग्रगणी जीव ! मणि के प्रदीप्त **समाहितम्**=स्वीकृत, धारित सामर्थ्य को धारण करता हुआ, **होमैः**=दान प्रतिदान (**हु दानादयोः**) के द्वारा **प्रति हर्य**=कान्ति को, गति को (**हर्य गतिकान्त्योः**) प्राप्त कर। **तस्मिन् जातवेदसि**=उस अन्नादि मणि के सुविदित ज्ञान होने पर उस समिद्ध ज्ञान से सुमति, कल्याण, अविनाश, प्रजा, चक्षु आदि इन्द्रियों का सामर्थ्य, **पशून्**=पोषक गौ आदि पशु धन को सभी, **विदेम**=प्राप्त करें।

फालमणि के प्रसङ्गगत मन्त्रों में **फाल**=कृषि, कृषि कर्म, ज्ञान, अन्न, वीर्य के गुण कर्म स्वभाव, लाभ का प्रतिपादन है। फालमणि को प्राप्त करने वाले की योग्यता, क्षमता का वर्णन है। **बृहस्पतिः**=बड़े-बड़े कर्म कर्ता, वेदवाणी ज्ञाता विद्वान् के व ईश्वर के सामर्थ्यों का विश्लेषण है। तान्त्रिक ओझा, वाममार्ग आदि तान्त्रिक शत्रुमारक विधियों का वर्णन नहीं है।

दर्भमणिः

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ अथर्व. १९/२८/१
द्विषतस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ धर्म इवाभिन्त्संतापयन् ॥ अथर्व. १९/२८/२
धर्म इवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥ अथर्व. १९/२८/३
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे।

उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥ अथर्व. १९/२८/४
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/५
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/६
वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/७
कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दान् कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/८
पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दो पिंश मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/९
विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दान् विध्य मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२८/१०
निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/१
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/२
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/३
मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/४
मन्थ दर्भ सपत्नान्मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/५
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान्दुर्हार्द पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/६
ओष दर्भ सपत्नान्मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान्दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/७
दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/८
जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान्दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ अथर्व. १९/२९/९

इमं बध्नामि., अथर्व. १९/२८/१, **द्विषतस्तापयन्.** अथर्व १९/२८/२, **धर्म इवाभितपन्.**, अथर्व. १९/२८/३, **भिन्द्धि दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/४, **भिन्द्धि दर्भ.** अथर्व. १९/२८/५, **छिन्द्धि दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/६, **वृश्च दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/७, **कृन्त दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/८, **पिंश दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/९, **विध्य दर्भ.**, अथर्व. १९/२८/१०, तथा **निक्ष दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/१, **तृन्द्धि दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/२, **रुन्द्धि दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/३, **मृण दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/४, **मन्थ दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/५ **पिण्ड्ढि दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/६, **ओष दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/७, **दह दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/८, **जहि दर्भ.**, अथर्व. १९/२९/९, अथर्ववेद के १९वें काण्ड के २८,२९ सूक्त के **इन १९ मन्त्रों को** आक्षेपक श्री उपेन्द्र राव **अत्यन्त क्रूर** एवं **उसामा बिन लादेन के समान राक्षस वृत्ति** के संदेश वाहक एवं सम्प्रदायिकों के ईश्वर द्वारा रचित मानते हैं। इन मन्त्रों की आनुपूर्वी को पढ ईश्वर के प्रति तौबा ही तौबा कर रहे है। इतना ही नहीं ईश्वर के तुणीर में और हिंसक शब्द न थे अतः इन नौ मन्त्रों के बाद वह रुक गया। यह लिखकर अपनी ईश्वर के प्रति अनासक्ति भी प्रकृष्ट रूप में प्रकट की है।

उपेन्द्र राव की ईश्वर के प्रति अनासक्ति के कारण हैं मन्त्रस्थ शब्द विशेष। अथर्ववेद के १९ वें काण्ड के २८ व २९ सूक्तों में **दर्भ** शब्द आया है और उस दर्भ की गुणवत्ता, शक्ति, सामर्थ्य के अभिद्योतक **दम्भनम्**[१], **तपनम्**[२], **तापयन्, संतापयन्, तपन्, अभितपन्, नि तपन्, भिन्द्धि**[३], **वि रुजम्**[४], **उद्यन्**[५], **वि पातय**[६], **छिन्द्धि**[७], **वृश्च**[८], **कृन्त**[९], **पिंश**[१०], **विध्य**[११], **निक्ष**[१२], **तृन्द्धि**[१३], **रुन्द्धि**[१४], **मृण**[१५], **मन्थ**[१६], **पिण्ड्ढि**[१७], **ओष**[१८], **दह**[१९], **जहि**[२०]

१. दम्भु दम्भने।
२. तप संतापे, तप ऐश्वर्ये, तप दाहे, सं + तप्, अभि + तप्, नि + तप्।
३. भिदिर् विदारणे।
४. वि + रुजो भङ्गे।
५. उत् + या प्रापणे।
६. वि + पत गतौ वा।
७. छिदिर् द्वैधीकरणे।
८. ओव्रश्चू छेदने।
९. कृती छेदने।
१०. पिश अवयवे।
११. व्यध ताडने।
१२. णिक्ष चुम्बने।
१३. उतृदिर् हिंसानादरयोः।
१४. रुधिर आवरणे।
१५. मृण हिंसायाम्।
१६. मन्थ विलोडने।
१७. पिष्लृ संचूर्णने।
१८. उष दाहे।
१९. दह भस्मीकरणे।
२०. हन हिंसागत्योः।

शब्द आये हैं। दर्भ की यह शक्ति किस पर नियुक्त होती है ? इसके लिये अनेक विभक्तियों में सपत्न शब्द आया है। उन इन शब्दों को देखकर आक्षेप्ता सीधे **पाकिस्तानी हमलांवरों के आतङ्कवाद** की चपेट में पहुँच गये और संतप्त होकर **ईश्वर को ही कोसने** लग गये।

टंकण दोष से पुनः यह मैटर आ गया।

१. दम्भु दम्भते।
२. तप संतापे, तप ऐश्वर्ये, तप दाहे, सं+तप्, अभि+तप्, नि+तप्।
३. भिदिर् विदारणे।
४. विन्रुजो भङ्गे।
५. उत्+या प्रापणे।
६. वि+पत गतौ वा।
७. छिदिर् द्वैधीकरणे।
८. ओव्रश्चू छेदने।
९. कृती छेदने।
१०. पिश अवयवे।
११. व्यध ताड़ने।
१२. णिक्ष चुम्बने।
१३. उतृदिर् हिंसानादरयोः।
१४. रुचिर आवरणे।
१५. मृण हिंसायाम्।
१६. मन्थ विलोडने।
१७. पिष्लृ संचूर्णने।
१८. उष दाहे।
१९. दह भस्मीकरणे।
२०. हन हिंसागत्योः।

यह प्रत्यक्ष है कि इन मन्त्रों में जो दम्भनम्, तपनम्, भिन्द्धि आदि क्रियावाची शब्द आये हैं, वे सभी दबाने, जलाने, फाड़ने, टुकड़े करने, मारने, छेदने आदि अर्थों वाले हैं। लेकिन किसे दबाना, जलाना करना है ? यह तभी समझ आ सकता है, जब **सपत्न** शब्द का वाच्यार्थ समझ आ जाये।

सपत्न

सपत्न शब्द का अर्थ है-**सह एकार्थे पतति सः सपत्नः**[1], अर्थात् जो एक प्रयोजन के लिए ही गिरे, आये वह **सपत्न** कहा जाता है। तात्पर्य हुआ कि प्रतिद्विन्द्वी शत्रु **बाह्य** और **आन्तरिक** दोनों प्रकार के हैं। बाहर वाले सपत्न वे हैं जो आमने सामने सशस्त्र खड़े होते हैं तथा जो दुर्भिक्ष आदि रूप

---

१. पत् + न, पत्लृ गतौ, सहस्य सभावे सपत्नः।

होते हैं। आन्तरिक सपत्न वे हैं जो जीव के आत्मा, मन, शरीर को अभिव्याप्त कर लेते हैं।

सपत्न दोनों में से कोई भी हों, हटाने आवश्यक हैं। बाहर के सपत्नों को हटाने का कार्य जब साम, दाम से नहीं हो पाता, तब दण्ड हाथ में लिया जाता है। इसी प्रकार आत्मिक सपत्नों को हटाने के लिये औषधि उपचार, चिकित्सा से कार्य न चलने पर शल्य चिकित्सा=चीर फाड़ उपयोग में ली जाती है। लेकिन आत्मिक और मानसिक सपत्नों के हटाने में शल्य चिकित्सा भी काम में नहीं आती। इनकी चिकित्सा में तो ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र, विवेक, यम, नियम का पालन आदि अध्यात्म निदानों के साथ सात्विक पथ्याहार, औषध्यादि उपचार चिकित्सा ही हथियार बनते हैं।

आन्तरिक सपत्न बहुत प्रकार के हैं। यथा-

सपत्नो वा अभिमातिः। शत.ब्रा. ३/९/४/९

अर्थात् **अभिमातिः**=अभिमान, **सपत्नः**=शत्रु है।

अभिमातिर्वै पाप्मा भ्रातृव्यः। मै. सं. २/५/८/९

अर्थात् अभिमान निश्चय से पाप रूप शत्रु (भ्रातुर्व्यच्च, व्यन्सपत्ने, पा. ४/१/१४४, १४५) है।

पाप्मा वै वृत्रः सपत्नः। शत. ब्रा. ८/५/१/६

अर्थात् पाप **सपत्न**=शत्रु है, असुर है।

इन अभिमान व पाप रूप शत्रुओं एवं असुरों से व्यक्ति नख से शिर पर्यन्त अभिव्याप्त रहता है। महर्षि जैमिनि कहते हैं -

व्यतिषिक्तो वै पुरुषः पाप्मभिः। जै.ब्रा. २/२८७

अर्थात् पुरुष पापों से घिरा हुआ है, जाने अनजाने में अनेक पाप वह कर रहा है।

पाप समाज

मुख से अकथ्य, अवध्य रूप अपशब्द बोलना पाप है[1]। दूसरे की हत्या करना, मारना पाप है[2]। दूसरे के अन्नादि आहार को छीनना, खाना पाप

---

१. *एष ह वै मुखेन पापं करोति योऽवाद्यं वदति। जै.ब्रा. २/१३५*

२. *एष ह वै बाहुभ्यां पाप करोति योऽनिघात्यस्य निहन्ति। जै.ब्रा. २/१३५*

है, अभक्ष्य पदार्थ सेवन करना पाप है[१]। दूसरे के प्रति क्रोधादि युक्त हो जाना पाप है[२]।

सोना, आलस्य, क्रोध, भोजन, **अक्ष**=इन्द्रिय तथा द्यूत लिप्सा और परस्त्री की कामना पाप है[३]। राग[४], द्वेष, काम, क्रोध, मोह[५], लोभ, मद मात्सर्य, स्पृहा तृष्णा, ईर्ष्या असूया, द्रोह अमर्ष, विचिकित्सा, मान प्रमाद पाप हैं। इन पापों के कारण शरीर से किये हुए हिंसा, चोरी, परस्त्री गमन, वाणी से मिथ्या भाषण, परुष कठोर वचन, **सूचन**=चुगलीकरना, असम्बद्ध कथन, मन से द्रोहश परद्रव्य इच्छा, जन्म, आत्मा परमात्मा का न मानना सब पाप की कोटि में आते हैं। मृत्यु होना भी पाप हैं[६]। यह पापों का निदर्शन मात्र है। ये पाप आत्मिक, मानसिक[७], शारीरिक तीन प्रकार के हैं। यह पाप समुदाय रोगों को उत्पन्न करता है।

इस प्रकार बाह्य, आभ्यन्तर अनेक **सपत्न**=शत्रु हैं। प्रकृत मन्त्रों में इन्हीं पाप रूप सपत्नों के नाश का साधन दर्भ को बताया है। लोक में **दर्भ** शब्द दाभ, कुशा अर्थों में प्रसिद्ध है, किन्तु वैदिक वाङ्मय में दर्भ संज्ञा इनसे अतिरिक्त बहुत से पदार्थों की गई है। यथा-

आपो दर्भाः, शत. ब्रा. २/२/३/११, आपो हि कुशाः, शत. ब्रा. १/३/१/३

आपो वै वृष्टिः, शाङ् आ. २/१ वीर्यं वा आपः, शत.ब्रा.५/३/४/१

अर्थात् आपः दर्भ हैं, आपः कुश है, आप वृष्टि और वीर्य हैं। तात्पर्य

---

१. *एष ह वा उदरेण पापं करोति योऽनाश्मान्नस्यान्नमत्ति। जै.ब्रा. २/१३५*

२. *एष ह वा पद्भ्यां पापं करोति यो जनमेति। जै.ब्रा. २/१३५*

३. *षड् वै पुरुषे पाप्मानष्षड् विषुवन्तः स्वप्नश्च तन्द्री च।*
मन्युश्च अशनाया च अक्षकाम्या च स्त्रीकाम्या च॥ जै.ब्रा. २/३६३.

४. *रागद्वेषाधिकाराच्चासूयेर्ष्यामायालोभादयो दोषा भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचानृतपरुषसूचनाऽ संबद्धानि मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सा नास्तिक्यञ्चेति। सेय पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय।*

५. *मोहः पापः पापतरो वा। न्याय द. वात्स्या. ४/१/६*

६. *मृत्युर्वै वरुणो मृत्युनैवैनं ग्राहयत्येतद् वै पाप्मनो रूपम्। काठ. १३/२*

७. *मानसास्तु क्रोध शोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्य का मलोभ प्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति। सुश्रु. सूत्र. १/२३/३*

हुआ दर्भ व कुश वृष्टिजल तथा वीर्य की संज्ञा है।

अपां वा एष ओषधीनां रसः यद् दर्भाः । तै.आ. २/११/१

अपां वा एतद् ओषधीनां तेजो यद् दर्भाः । काठ. ३०/१०

अर्थात् इन औषधियों के (आपो रसः कौषी. ब्रा. १२/१) **अप्**=रस का जो तेज है, वह दर्भ है।

अग्निर्वै दर्भस्तम्भः । काठ. सं. १९/१६

अर्थात् तीनों लोकों की अग्नि दर्भ है।

इन ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के इन वचनों से स्पष्ट है कि दर्भ संज्ञा **कुश**=वृष्टि जल, वीर्य औषधियों के रस की है तथा तीनों लोकों के अग्नि तत्त्व की दर्भ संज्ञा है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में **वज्र**=अभ्रक खनिज द्रव्य की दर्भ व कुश संज्ञा की गई है। यथा-

दर्भे च कुशिके व्रज्रम् । राजनिघण्टु वर्ग २३

अर्थात् दर्भ और कुशिक को वज्र कहते हैं, और यह वज्र क्या है ? इसे बताते हुए इसी ग्रन्थ में कहा -

नीलाभ्रं दर्दुरानागः पिनाको वज्र इत्यपि । राज निघण्टु वर्ग १३

अर्थात् **नील**=काला अभ्रक, दर्दुर, नाग, पिनाक, वज्र चार प्रकार का होता है।

सबसे बड़ा दर्भ तो **दृणाति विदारयतीति दर्भः**[1] विदारण गुण होने से **ईश्वर** है। ईश्वर समस्त दुःख, दुर्गुण आदि एवं दुर्भिक्ष आदि का विदारक विनाशक है।

इसी **दर्भ=विदारण**=निवारण गुण के कारण ये सभी वृष्टि जल, वीर्य, अग्नि व औषधियाँ अभ्रक एवं कुश भी दर्भ कहे जाते हैं। वृष्टि अन्नादि के अभाव, दुर्भिक्ष संक्रामक रोगों को दूर करती है। वीर्य रोगों व रोगों के मूलों को नष्ट करता है व उत्साह, ओज बल को प्रदान करता है। अग्नि (**अगिगतौ**) अगति, अप्राप्ति को विनष्ट करता है। औषधियाँ ज्वर, कास, दमा, निर्बलता दुर्बलता आदि व्याधियों को दूर करती है। ईश्वर समस्त दुःखों व दुःखों के

मूलों का विनाश करता है। कुश पीलिया, रक्त दोषों, दमा, तृषा आदि रोगों का शमन करता है। **अभ्रक** त्रिदोष नाशक, प्लीहा, विष विकार, कोढ, प्रमेह, कृमि रोग विनष्ट करता है। अभ्रक शीतल एवं धातु व आयु वर्धन की उत्तम औषधि है।

अभ्रक औषधि खनिज पदार्थ है। अभ्रक पर्वतों के खदानों में बड़े-बड़े ढेलों के रूप में जमा होता है। यह साफ करके कार्य में लिया जाता है। स्वच्छ अभ्रक कांच की तरह चमकता है। यह आग में नहीं जलता है। अभ्रक के **पत्रक**=परत पारदर्शक व मुलायम होते हैं। अभ्रक सफेद, लाल, पीला व काला चार प्रकार का होता है। सफेद अभ्रक चांदी निर्माण में, लाल अभ्रक रसायन निर्माण में, सोना निर्माण में पीला और औषधि निर्माण में काला अभ्रक कार्य में लिया जाता है।

औषधि निर्माण का काला अभ्रक पिनाक, दर्दुर, नाग, वज्र चार प्रकार के गुणों से युक्त होता है। पिनाक अभ्रक अग्नि में डालने पर परत-परत बिखर जाता है, यह महाकुष्ठ रोग को उत्पन्न करता है। दर्दुर[1] अभ्रक आग में पड़ने पर मेंढक के समान शब्द करता है व गोल पिण्डाकार बन जाता है, इसके खाने से मृत्यु भी हो जाती है। नाग अभ्रक अग्नि में पड़ने पर सर्प की भाँति फूँकार जैसा शब्द करता है, इसके खाने से भगन्दर रोग उत्पन्न होता है। **वज्र अभ्रक अग्नि में डालने पर ज्यों का त्यों रहता है, यह अभ्रक सर्वोत्तम औषधि है।** सब प्रकार के कुष्ठ, भगन्दर, प्लीहा आदि रोगों का नाशक तथा वृद्धत्व व मृत्यु को हरने वाला है।

इस प्रकार दर्भ के विभिन्न अर्थों से स्पष्ट है कि दर्भ संज्ञा वृष्टि, वृष्टि जल, वीर्य, अभ्रक आदि की संज्ञा है। प्रकृत मन्त्रों में **सपत्न**=पाप निवारक इन दर्भ रूप वृष्टि जल, वीर्य, अग्नि, वनस्पत्यादि औषधियों, अभ्रक औषधि आदि के गुण, कर्म स्वभावों का प्रतिपादन है। जिनका यथायोग्य अर्थात् पूर्वापर प्रकरण व पद पदार्थ के अनुसार संबन्ध समायोजन होगा।

---

१. दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दुर्दुर ध्वनिम्। गोलकान् बहुशः कृत्वा स स्यान् मृत्युः प्रदायकः। भावप्रकाश निघ.॥

अभ्रक आदि सभी दर्भ आन्तरिक व बाह्य रोगों के निवारक हैं। समस्त रोगों, दुःखों को मसल, पीसकर उनकी वृद्धि को रोकते हैं, नष्ट करते हैं, जला देते हैं, एतदर्थ मन्त्रों में **दम्भनम्, तपनम्, भिन्द्धि, पिण्डि** आदि क्रियाये आई हैं। ये क्रियायें इन औषधि रूप दर्भों के रोग निवारण प्रकारों की ज्ञापक हैं ये उसामा बिन लादेन का राक्षसी, क्रूर आतंक नहीं है और न ही तथाकथित तन्त्रात्मक मणि धारण करने का कोई चिह्न रूप हैं। दर्भ रूप ईश्वर, वीर्य, अभ्रक आदि पदार्थों से आक्षेपक रोगों, पापों से मुक्ति नहीं चाहते, तो न चाहें ? यथार्थ का अपलाप करने का उनका उद्देश्य व्यर्थ है।

इमं बध्नामि., अथर्व. १०/२८/१ मन्त्र का अर्थ है-मैं **ब्रह्मा**=ईश्वर, राजा व वैद्य ! दीर्घ जीवन, दीर्घ उत्तम राज्य व तेज के लिए, **सपत्न**=रोग, पाप नाशक, **दर्भम्**=वीर्य, जल, औषधि आदि मणि को संयुक्त करता हूँ, जिससे हृदय को संतप्त करने वाले, हृदय को अप्रीतिकर, पीड़ित करने वाले रोगों का, **तपनम् दम्भनम्**=नाश व पराभव हो।

दीर्घ जीवन, राज्य, तेज आदि के लिए **दर्भ** = ईश्वर, वीर्य, अभ्रक[१] आदि औषधि सेवन रूप आवश्यक पदार्थ हैं।

द्वितीय द्विषतस्तापयन्.,अथर्व. १९/२८/२ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् **दर्भ मणि**=वीर्य मणि शरीर की विरोधी, **हृदः**[२]=हारक गतियों को तपाने वाली है। शरीर का शातन करने वाले रोग रूप शत्रुओं की, **मनः**=वृद्धि को (**मनस्तद् बृहत्**, ऐ.आ. १/४/२) पराभूत करती है। हे दर्भमणि ! तू चारों ओर फैले दुष्ट हृदय वाले सभी शत्रुओं को, **घर्मः**[३]=दिन अर्थात् सूर्य की भाँति संतप्त कर।

घर्म इवाभितपन्., अथर्व. १९/२८/३ मन्त्र का अर्थ है-ईश्वर,

---

१. *अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुःकरं धातुविवर्धनम्। भावप्रकाश निघ.॥ अर्थात् कषाय आदि गुणों के साथ अभ्रक आयुवर्धक है।*

२. *हृदय शब्द हृञ हरणे, दाण् दाने, इन् गतौ धातुओं से निष्पन्न होता है। यथा-तदेतत् त्रयक्षरं हृदयमिति, हृ इत्येकमक्षरं ...... द इत्येकमक्षरं........यम् इत्येकमक्षरम्। शत.ब्रा. १४/८/४/१*

३. *घर्म इति अहर्नाम। निघ. १/९*

वीर्य, औषधि मणि तू सूर्य की भाँति दीप्त होते हुये ईर्ष्या आदि के शत्रुओं को संतप्त करती है। **सपत्नानाम्**=रोग, पाप रूप शत्रुओं के, **हृदः**=गतियों को, हरण शक्तियों को नष्ट कर। **इन्द्र**=ऐश्वर्यशाली सम्राट् की भाँति शत्रुबल को, **वि रुज**=भंग कर।

भिन्द्धि दर्भ., अथर्व., १९/२८/४ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् **हे दर्भ**=ईश्वर व अग्नि मणि ! तू रोग रूपी शत्रुओं को व ईर्ष्या आदि करने वालों के **हृदयम्**=बल को नष्ट करती है, **उद्यन्**=ऊपर उठती हुई लपटों वाली तू अग्नि ! जैसे कुदाल से भूमि की त्वचा, परत खोदी जाती है, वैसे शरीरस्थ दोषों, रोगों के, **शिरः**=मूलोच्छद कर देती है।

निक्ष दर्भ., अथर्व., १९/२९/१ मन्त्र का अर्थ है-हे **दर्भ**=ईश्वर व वीर्य मणि ! शरीरस्थ, **सपत्न**=दोषों, रोगों व पापों को, **निक्ष**=चूम चाट कर साम, दाम उपायों द्वारा (निक्ष चुम्बने) दूर करती हो। आक्रमणकारी रोगादि शत्रुओं को **निक्ष**=नष्ट करती हो, मेरे सब दुष्ट हार्दिक भावनाओं को नष्ट करती हो, मेरे आलस्यादि अप्रीतिकर दोषों को दूर करती हो।

इन मन्त्रों सहित दोनों सूक्तों के सभी मन्त्रों में राग, द्वेष, काम, क्रोध, आलस्य आदि शत्रुओं के निवारण की, **दर्भ**=ईश्वर, वीर्य, अग्नि, अभ्रक आदि औषधियों द्वारा होने वाली चिकित्सा का महत्तम प्रतिपादन है, इनमें जादू टोना नहीं है। विशद वाच्यार्थों वाली दर्भ मणि का १९ वें काण्ड के २८ वें सूक्त से लेकर ३० व ३२ से ३३ वें सूक्त पर्यन्त वर्णन है। जिसके अद्भुत लाभों, गुणों का वर्णन अनुप्रास शैली में छिन्द्धि, भिन्द्धि, निक्ष, पिंश, वृश्च, कृन्त, रुन्द्धि, पिण्ढि, विध्य, मन्थ, ओष, मृण, जहि, दह, तृन्द्धि आदि क्रियाओं द्वारा किया गया है। दर्भ मणि के इन क्रियाओं जनित लाभ फालतू प्रशंसा नहीं है। ईश्वरोपासक जितेन्द्रिय वैद्य, जितेन्द्रिय राजा इन दर्भ मणियों के शक्ति, सामर्थ्य से भली भाँति सुपरिचित है। ये मणियाँ कैसे उत्पन्न होती हैं ? किस प्रकार से अर्जित की जाती है ? इसका भी बहुत ही स्पष्ट विवेचन १९ वें काण्ड के ३०,३२,३३ सूक्त में किया है।

यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह।

ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ अथर्व. १९/३०/५

यत् समुद्रो., अथर्व., १९/३०/५ अथर्ववेद के इस मन्त्र में दर्भमणि का वर्णन है। जिसका वाच्यार्थ-चाहे ईश्वर हो, वीर्य हो, वृष्टिजल हो, अभ्रक औषधि उन सब मणियों के उत्पत्ति का निर्देशक मन्त्र है। आक्षेपक इस मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को न समझकर दर्भ की फालतू प्रशंसा कहकर ठट्ठा कर रहे हैं। और लिखते हैं-

''इस अविष्कार को भारतीय सेनाप्रमुख को सम्प्रदायी विद्वान् क्यों नहीं बतलाते ? जिससे देश के प्रति रक्षा सम्बन्धी व्यय को अत्यन्त कम किया जा सके ?'' पृ. ३० **सत्य यह है कि आक्षेपक का यह ठट्ठा ही हास्यास्पद है।**

१. मन्त्र के अर्थ हैं-अर्थात् जब **समुद्रः**=अन्तरिक्षस्थ (समुद्र इति अन्तरिक्षनाम, निघ. १/३) विद्युत् चमकती है और उस विद्युत् के साथ, **पर्जन्यः**=मेघ गरजता है तब, **हिरण्ययः**=चमकीली, **बिन्दुः**[१]=वृष्टिजल उत्पन्न होता है, उस बिन्दु से, **दर्भः**=शत्रुनाशक कुशा, वनस्पति आदि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं।

क्या यह फालतू प्रशंसा है ? किसने नहीं देखा ? वृष्टि के बाद धरती **दर्भ**=कुशा, वृक्ष आदि से हरी भरी होती। ये औषधियाँ रोगों को दूर करती है, **दर्भ**=कुशा रोग तथा राज्य की सीमा में आने वाले शत्रुओं के पैर फाड़ डालती है। दर्भ वायु दोषों को दूर कर आयु, बल, पराक्रम की वृद्धि करता है।

२. अर्थात् जब **समुद्रः**=सूर्य (**समुद्द्रवन्ति अस्मात् रश्मयः इति समुद्रः**, निरु. १२/३/२०) **अभ्यक्रन्दत्**=गर्मी में तपने के बाद कम तेजी वाला हुआ (**क्रदि वैक्लव्ये**) आगे बढ़ता है और चमकीली विद्युत् के साथ, **पर्जन्यः** = मेघ गति करता है, गरजता है, तब पर्वतों में चमकीला बिन्दु उत्पन्न होता है और उस बिन्दु से, **दर्भः**=अभ्रक उत्पन्न होता है।

---

१. ***बिदि अवयवे। बिन्दति अवयवी भवतीति बिन्दुः, परिमाणं जलादि कणो वा। उणा. १/१०***

पर्वतों के मध्य अभ्रक की उत्पत्ति के निमित्त सूर्य और मेघ हैं। यह भली भाँति इस मन्त्र से स्पष्ट है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में भी अभ्रक की उत्पत्ति ऐसी ही वर्णित की गई है। यथा-

पुरावधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्।
विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्माद् गगने परिसर्पिताः॥
ते निपेतुर्घनध्वानाः शिखरेषु महीभृताम्।
तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद् गिरिषु चाभ्रकम्॥
तद्वज्रं वज्रपातत्वादभ्रकमभ्रर वोद्भवात।
गगनात्स्खलितं यस्माद् गगनं च ततोमतम्॥ भावप्रकाश निघण्टु॥

अर्थात् जब वज्रधारी इन्द्र रूपा विद्युत् ने वृत्र=मेघ के वध के लिये वज्र उठाया, उससे चिंगारियाँ निकली. जो गगन में फैल गई। वे चिंगारियाँ महापर्वतों के शिखरों में घन-घन ध्वनि करती हुई गिरीं, उनसे ही उन-उन पर्वतों में अभ्रक उत्पन्न हुआ। वज्र रूप बिजली के गिरने के कारण अभ्रक वज्र है, अभ्र रूप गर्जना से उत्पन्न होने के कारण वह अभ्रक है। गगन से गिरा इसलिये उसका नाम गगन भी है।

अभ्रक के परत आदि की विवेचना अग्रिम मन्त्रों में वर्णित है और अभ्रक के लाभों का वर्णन पूर्व किया जा चुका है। अभ्रक खाने के कार्य में भी आता है और अभ्रक का दर्दुर प्रकार बारुद के काम में भी आता है। यह बात सेना प्रमुखों को बताने की नहीं, वे स्वयं जानते हैं।

३. अर्थात् जब **समुद्रः**=रेत, वीर्य (**आपो वै समुद्रः**, शत. ब्रा. १३/८/४/११, आपो रेतः तै. सं. ३/३/१०/३) गति करता है, **पर्जन्य**=जीवात्मा (**परां तृप्तिं जनयतीति पर्जन्यः**) विशिष्ट दीप्ति के साथ गति करता है, तभी वह, **बिन्दुः**=रेत, **हिरण्ययः**=हितकारी (**हितरमणं भवतीति वा हिरण्यम्** (निरु. २/३/१०) होता है। तब **दर्भः**=दर्भ मणि वीर्य रोग नाशक बन जाता है।

इस प्रकार **दर्भमणि** का विशाल सामर्थ्य मन्त्रों में समाख्यात है, जिसे समझना आक्षेपक की बुद्धि से बाहर है।

औदुम्बरमणिः

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्॥ अथर्व. १९/३१/१

औदुम्बरेण मणिना., अथर्व. १९/३१/१, अथर्ववेद के इस मन्त्र में **औदुम्बर मणि** का वर्णन है। उपेन्द्र राव इस मणि को **सपत्नहा**=जादू टोना वाले तथाकथित शत्रुओं की वध करने वाली व किसानों की सिद्धि करने वाली मानते हैं। जो कल्पित व निरर्थक है।

मन्त्र में तृतीया विभक्तिस्थ **औदुम्बरेण** शब्द आया है जो समूह अर्थ में (**तस्य समूहः** पा. ४/२/३६) से अञ् प्रत्यय करके सिद्ध हुआ, जिसका अर्थ है **उदुम्बर वृक्षों का समूह**। सायणाचार्य औदुम्बर को विकार अर्थ में (**तस्य विकारः**, पा. ४/३/१३२) अण् प्रत्यय द्वारा सिद्ध करते हैं, जो स्वर दृष्ट्या अशुद्ध है क्योंकि वेद में औदुम्बर शब्द आद्युदात्त है (**उदुम्बर+अञ्, ञित्यादिर्नित्यम्**, पा. ६/१/१९१) अतः अशुद्ध है।

लोक में उदुम्बर शब्द गूलर के अर्थ में प्रसिद्ध है, जो रोगों का विनाशक है। गूलर शीतल, गर्भ रक्षक, व्रण शोधक है, हड्डी को जोड़ने वाला, पित्त, दाह क्षुधा, तृषा[1], प्रमेह आदि को हरने वाला है ओज, तेज, बल को बढ़ाने वाला है, बन्ध्यात्व दोष हो हटानेवाला है। गूलर एक महौषधि है। इसके जड़, त्वक्, शाखा, पत्र, फल, दुग्ध सब दोष दूरीकरण की अमोघ दवा हैं। शरीरगत, मनोगत दोषों का शमन करता है, सन्तान हीनता की निवृत्ति होती है, आँत सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। औदुम्बर तुष्टि, पुष्टि, शक्ति प्रदान करता है।

उत् अतिशयेन अम्बयति अम्बते वा इति उदुम्बरः[2], अर्थात् उत्तम

१. (i) उदुम्बरः शीतलः स्यात्.....कोमलं चास्य फलं तत्पक्व रक्तरुक्पित्तदाह क्षुत्तृवाश्रमप्रमेहहम्। निघण्टु रत्ना.।
(ii) उदुम्बर फलं पस्वामङ्गुलीतैलपाचितम्। भुक्त्वा मांसं क्षुधां हन्ति पिपासां नात्र संशयः॥ सिद्धनागार्जुन कक्षपुट कौतुककलापाः।
(iii) शिरोषोदुम्बरशीमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकः क्षुद्योगः॥ कौटि. १७८/१

२. उत् + अबि शब्दे + बाहुलकात् अरन् प्रत्ययः।

भली प्रकार शब्द शक्ति देने वाला, शब्द शक्ति को धारण करने वाला उदुम्बर कहलाता है।

इस व्युप्तत्त्यनुसार ईश्वर, जीव तथा वीर्य सामर्थ्य, औषधि आदि वनस्पतियाँ उदुम्बर कही जाती हैं। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **सविता**=सर्व प्रेरक प्रभु ने, **पुष्टिकामाय**=पुष्टि की कामना वाले मेरे लिये, **वेधसा**=विद्वानों के द्वारा (**वेधाः इति मेधाविनाम**,निघ. ३/१५) और मणि रूप गूलर के वृक्ष समूहों व वीर्य द्वारा, **गोष्ठे**=गौशाला में, इन्द्रिय गण में सभी, **पशूनाम्**=अन्नों (**अन्नमूठ वै पशवः**, जै.ब्रा. ३/१४१) की, **स्फातिम्**=वृद्धि की हुई है।

मन्त्र का तात्पर्य हुआ कि पुष्टि के लिए परमेश्वर ने विद्वान् व **औदुम्बर**=वीर्य, औषधि रूप मणि आदि प्रदान किये हैं, जो **गोष्ठ**=इन्द्रियों के आधार स्थान शरीर में, गौ पदार्थ में शक्ति संवर्द्धन करते हैं।

मणियों के पृष्ठ ६२ पर जो लाभ शोभा, मन की प्रसन्नता, वीरता एवं रोग विषहर्ता आदि गुण बताये गये हैं, तदनुसार **उदुम्बर**=गूलर की लकड़ी की आसन्दी पीठ आदि भी निर्मित किये जाते हैं; जो गृह आदि की शोभा वृद्धि बढाते करते हैं।

जङ्गिड मणिः

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं विभृमो वयम्॥ अथर्व. २/४/१

दीर्घायुत्वाय.,अथर्व. २/४/१ अथर्ववेद के इस मन्त्र को आक्षेपक क्षत्रिय और वैश्यों का तन्त्र मंन्त्र बता रहे हैं, जो **निराधार** है।

मन्त्र में **जङ्गिड** शब्द आया है। जिसका शब्द निर्वचन है-

१. यः जगति अत्ति गिरतीति जङ्गिड[1]।

अर्थात् जो रोग, दुःख, पाप आदि शरीर को खाते हैं, उनको खाने वाले पदार्थों को जङ्गिड कहते हैं।

---

१. जमु अदने + ड, अन्यभ्योऽपि दृश्यते, पा. ३/२/११० गृ निगरणे + खच् मेघर्तिभयेषु कृञः, पा. ३/२/४३ इति बाहुलकात्, मुमागमः।

२. जङ्गति मुहुर्भृशं वा गच्छति सः जङ्गिड।

अर्थात् जो बार-बार या अधिक गति करता है वह जङ्गिड कहाता है।

व्युत्पत्त्यनुसार ईश्वर व वीर्य शक्ति जङ्गिड हैं, क्योंकि ईश्वर व वीर्य सर्वत्र व्याप्त रहते हैं तथा सभी पाप, दुःख, रोग आदि को निगलते हैं, नष्ट करते हैं।

व्युत्पत्त्यनुसार औषधि वनस्पतियाँ भी जङ्गिड हैं, जो रस, वटिका आदि के माध्यम से शरीर में व्याप्त होती है, रक्त में मिलकर शरीर में गति करती हैं। **औषधि, वनस्पति के रूप में इस जङ्गिड को बहुत से चिकित्सक सोमलता मानते हैं और कुछ अर्जुन को जङ्गिड औषधी कहते हैं।** सोमलता व अर्जुन दोनों वनस्पतियों के गुण, कर्म, स्वभाव व लाभ मिलते जुलते हैं। जङ्गिड़ प्रतिपादक मन्त्रों में जङ्गिड़ के जो लाभ, गुण आदि मिलते जुलते हैं। जङ्गिड़ के जो लाभ, गुण आदि बताये हैं, वे इन दोनों औषधियों में पाये जाते हैं, अतः दोनों का ही ग्रहण सम्भव है।

मन्त्र में जङ्गिड़ मणि को दीर्घायुष्य देने वाली बताया है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में सोम को भी आयुष्य देने वाला वर्णित किया गया है[1]। सोम रस पान, सोम रसायन व गुटिका से दीर्घायु प्राप्त होती है। सोम विषनाशक, शरीर ह्रास, क्षय निवारक, शारीरिक स्वास्थ्य, स्फूर्ति, बुद्धि, बल, वाक् शक्ति वर्धक होता है। इसके सेवन से सब प्रकार की व्याधियाँ नष्ट होती हैं। सोम मृत्यु से बचाने वाली उत्तम औषधि है।

जङ्गिड़ मणि के गुण, धर्म अर्जुन औषधि में भी विद्यमान हैं। अर्जुन की छाल हृदय दौर्बल्य, यौन विकार, विष दोष, कफ व वायु विकार, स्नायु दौर्बल्य, ज्वर, नेत्रादि रोगों को दूर करती है। हृदय रोग की अद्वितीय औषधि है।

वनौषधि चन्द्रोदय, निघण्टु रत्नाकर, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में अर्जुन की

---

१. ओषधीनां पति सोममुपयुज्यविचक्षणः। दशवर्षसहस्राणि नवां धारयते तनुम्।
ना ग्निर्न तोयं न विषं न शस्त्रं नास्त्रमेव च। तस्यालमायुः क्षपणे समर्थानि भवन्ति हि।
साङ्गोपाङ्गंश्च निखिलान् वेदान् विन्दति तत्त्वतः। चरत्यमोघसंकल्पो देववच्चासिलं जगत्॥ सुश्रु.चिकि. २९/१४,१५,१९

छाल बीज आदि किन-किन रोगों के काम आते हैं ? इसका विस्तार से वर्णन है। निघण्टु रत्नाकर के अनुसार अर्जुन की छाल को व्रण शोधक, मधुर, शीतल, उष्ण, कसेली, कान्तिजनक, बलकारक तथा अस्थि भंग, हृदय रोग, पाण्डु रोग, मेद वृद्धि आदि का नाशक बताया है। सुश्रुतानुसार सर्प दंश, बिच्छू दंश का विष नाशक है अर्जुन।

अर्जुन औषधि के परिप्रेक्ष्य में **दीर्घायुत्वाय.**, अथर्व. २/४/१ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् दीर्घायुष्य तथा उत्तम शब्द शक्ति, उत्तम गति के लिए (रण शब्दार्थाः, रण गतौ) सदा ही **दक्षमाणा**=वृद्धि व तत्परता की कामना करते हुये (**दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च**) हम, **विष्कन्धदूषणम्**=शोषण सूखे रोग रूप दोष करने वाली, (**स्कन्दिर्-गतिशोषणयोः**) **जङ्गिडं मणिम्**=अर्जुन वृक्षमणि को, **बिभृमः**=हम मनुष्य धारण=ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार सोम, वीर्य, व ईश्वर परक भी अर्थ होगा। ये सभी जङ्गिड पदार्थ क्या है ? इसकी विवेचना नहीं कर पाये। सायणाचार्य लिखते हैं-

जङ्गिड़ः वृक्षविशेषो वाराणस्यां प्रसिद्धः। अथर्व. सा.भा. २/४/१

अर्थात् वारासणी में प्रसिद्ध जङ्गिड वृक्ष विशेष है।

जङ्गिडो नाम कश्चिद् ओषधिविशेषः, स च उत्तरप्रदेशे।

अथर्व. सा.भा. १९/३४/१

अर्थात् जङ्गिड़ कोई औषधि विशेष है और वह उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध है।

सायणाचार्य के ये संदिग्ध और परस्पर विरुद्ध कथन हैं, जो कभी सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा सकते।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः॥ अथर्व. १९/३४/१
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन्निष्ठितं भूम्यामधि।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणः पूर्वा विदुः॥ अथर्व. १९/३४/६
इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम्॥ अथर्व. १९/३५/१
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव।

देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ अथर्व. १९/३५/२

जङ्गिडोऽसि., अथर्व. १९/३४/१, **त्रिष्टा देवाः.**, अथर्व. १९/३४/६, तथा **इन्द्रस्य नाम.**, अथर्व. १९/३५/१, **सनो रक्षतु.**, अथर्व. १९/३५/२ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में भी जङ्गिड मणि के ही लाभ, तथा उत्पत्ति प्रयोजन का वर्णन है।

मन्त्रों का तात्पर्यार्थ है-

जङ्गिड़ोऽसि., अथर्व. १९/३४/१ मन्त्र का अर्थ है-हे ईश्वर वीर्य ! तुम उत्पन्न हुये रोगों को निगलने वाले हो, रक्षक हो। हे **जङ्गिड़**=व्याप्त ईश्वर ! आप हमारे सब मनुष्यों व पशुओं की रक्षा करें।

त्रिष्ट्वा देवाः अथर्व.१९/३४/६ मन्त्र का अर्थ है-हे जङ्गिड़ औषध ! विद्वान् वैद्य जन **त्रिष्ट्वा**=तीनों ऋतुओं में भूमि में स्थित तुझ को उत्पन्न करते हैं, प्रकट करते हैं। तुझ औषधि को पालित, पूरित करने वाले जन, तुझे **अङ्गिरा**=अङ्ग-अङ्ग में व्यापने वाली जानते हैं।

अथवा ईश्वर व वीर्य रूप जङ्गिड मणि को, **भूमि**=शरीर में **त्रिष्ट्वा**=शरीर, मन, बुद्धि के हेतु उपासना द्वारा विद्वान् लोग उत्पन्न करते हैं।

इन्द्रस्य नाम., अथर्व. १९/३५/१ मन्त्र का अर्थ है-**इन्द्र**=विद्युत् के, **नाम**=जल को, वर्षा जल को (**नाम इति उदक नाम,** निघ. १/१२) **ऋषयः**=सूर्य रश्मियाँ ग्रहण करती हुई, जङ्गिड औषधि को प्रदान करती हैं। चिकित्सक विद्वान् उस जिस, **जङ्गिड**=अर्जुन, सोम औषधि को, **विष्कन्धदूषनम्**=सूखे रोग को दूर करने वाली सर्व श्रेष्ठ औषधि के रूप में प्रयोग में लाते हैं।

अथवा जीवात्मा का रेत जल को प्राण (**प्राणा ऋषयः.**, शत.ब्रा. ७/२/३/५) धारण करते हुए जो **जङ्गिड**=सर्वव्यापी ईश्वर को प्राप्त करते हैं, जिस ईश्वर रूप जङ्गिड को विद्वान् समस्त रोगों की दवा के रूप में प्रयोग करते हैं।

स नो रक्षतु., अथर्व. १९/३५/१ मन्त्र का अर्थ है- वह **जङ्गिड**=ईश्वर, वीर्य आदि रूप पदार्थ जैसे धनपाल धन की रक्षा करता है, वैसे रक्षा

करता है। उस जिस जङ्गिड पदार्थ को विद्वान् पूर्ण रक्षक, अदानवृत्ति घातक रूप में स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार जङ्गिड मणि वाच्य सभी ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि पदार्थ आरोग्य, स्वास्थ्य, बल, शक्ति आदि के नियोजक पदार्थ हैं। इनमें तन्त्र मन्त्र का कोई लवलेश नहीं है।

शतवारो मणिः

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः॥ अथर्व. १९/३६/१
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वौस्तृड्डाव रक्षांस्यक्रमीत्॥ अथर्व. १९/३६/५

शतवारो., अथर्व. १९/३६/१, **हिरण्यशृङ्ग**., अथर्व. १९/३६/५ अथर्ववेद के ये मन्त्र १९ वे काण्ड के ३६ वे सूक्त के हैं। इस सूक्त में **शतवार मणि**=शतावर औषधि का वर्णन है। मन्त्रों में इस औषधि के शक्ति, सामर्थ्य, प्रभाव का विश्लेषण विद्यमान है। जो यक्ष्मा=रोगनिवारण की उपयुक्त दवा है।

आक्षेप्ता श्री राव का मानना है कि यक्ष्मा नाश के लिये **शतवार**=शतावर औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है। अपनी इस मान्यता की पुष्टि में उन्होंने एक वाक्य लिखा है-सभी जानते हैं कि स्वच्छ जल, वायु का वातावरण एवं संयम पूर्ण आहार विहार से इस रोग को रोका जा सकता है। पृ. ३२

यह निःसंदिग्ध है कि स्वच्छ जल वायु और संयमपूर्ण आहार विहार स्वास्थ्य को ठीक करने वाले साधन हैं, परन्तु जैसे भोजन खायी हुई थाली को मात्र जल से स्वच्छ कर लिया जाता है, स्वच्छ हो भी जाती है पर पूड़ी, पकवान बनाये गये कड़ाही, बटलोई आदि पात्रों को बिना प्रस्थर, रोड़ी आदि कूचे के बिना स्वच्छ नहीं किया जा सकता। स्वच्छता के लिए कोई विशेष कूचा चाहिये। ठीक उसी प्रकार यक्ष्मा अथवा यक्ष्मा सदृश जानलेवा रोगों को बिना औषध आदि साधनों मात्र स्वच्छ जल वायु से रोगों को दूर करना गूलर के फूल के समान ही है।

आक्षेपक शतवार औषधि से तौबा-तौबा करना चाहते हैं, तो कर लें, यह उनके अधिकार की बात है। आक्षेपक की इस चाह से शतवार औषधि का अपलाप नहीं हो सकता।

वेदोक्त शतवार औषधि लोक में शतावर नाम से प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् वैद्य शतवार औषधि की पहचान ऋषभक औषधि के रूप में करते हैं। इन मान्यताओं के दो कारण हैं-शब्द साम्यता तथा विशेषण साम्यता।

१. शब्द साम्यता के कारण वेदोक्त शतवार औषधि शतावर के रूप में पहचानी जाती है।

२. शतवार मणि के प्रतिपादक इस ३६ वें सूक्त के पञ्चम मन्त्र में **शतवार का ऋषभः विशेषण** दिया है-**हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः।** अथर्व. १९/३६/५ इस मन्त्रानुसार शतवार लोक में ऋषभक औषधि जानी जाती है।

शतवार तथा ऋषभक औषधि यद्यपि दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, तथापि दोनों के गुण, लाभ मिलते जुलते हैं, अतः वेद के शतवार पद से दोनों ग्रहण किये जा सकते हैं। वेद में शतवार के जो गुण और लाभ बताये हैं वे दोनों शतावर तथा ऋषभक औषधियों में विद्यमान है -

शतवार औषधि में अनेक रोगों को नष्ट करने का सामर्थ्य है। शतवार का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है-

शतं वारयतीति शतवारः, अर्थात् जो सैंकड़ों=बहुत रोगों का निवारण करने वाला है, वह शतवार कहा जाता है।

शत=बहुत रोगों को दूर करने का तेज, शक्ति ईश्वर, वीर्य, जितेन्द्रिय पुरुष एवं शतावर, ऋषभक आदि औषधियों में विद्यमान है, अतः ये सभी शतवार संज्ञक हैं।

ईश्वर, वीर्य आदि तथा शतवार औषधि सैंकड़ों रोगों को दूर करती है, इसका समर्थन प्रकृत सूत्र का षष्ठ मन्त्र ही कर रहा है। मन्त्र है-

शतामहं दुर्नाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वतीनां शतवारेण वारये॥ अथर्व. १९/३६/६

अर्थात् मैं ईश्वरोपासक व वैद्य, **दुर्णाम**=कुत्सित क्षय, कुष्ठ, दद्रु, पाप्मा, गुल्म आदि नाम वाले, **गन्धर्व**=शरीर में गन्ध छोड़ने वाले, रक्तादि धातुओं में फैलने वाले, सैंकड़ों पीड़ा देने वाले पुराने रोगों को **शतवारेण**=वीर्य, औषधि आदि द्वारा, **शतम्**=समस्त रोगों को हटाता हूँ।

शतवार औषधि शीतल, पित्त नाशक, वीर्य वर्धक, बलकारक, नेत्र हितकारी, पुष्टि कारक, गुल्म, सूजन, अतिसार, दुर्बलता, वातज्वर, दाह, क्षय रोगों की नाशक है। वनौषधि चन्द्रोदय आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में गर्भ संधान कारक, गर्भ पुष्टिकारक, रक्तमांसादि के दोषों, गुह्य रोगों की निवारक **शतवार**=शतावर व ऋषभक[1] रूप औषधियों को माना गया है। इस औषधि का अथर्ववेद के १९ वें काण्ड के ३६ वें सूक्त में वर्णन है।

आक्षेपक के मिथ्यालाप को मर्दन करने वाले **शतवारो.**,अथर्व. १९/३६/१ मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **शतवारः**=सौ अनेक रोगों का वारण करने वाले ईश्वर, वीर्य, शतावर औषधि आदि मणि रूप पदार्थ यक्ष्म के नाना रोग प्रकारों को खा लेते हैं। अपने तेज से, **रक्षांसि**[2]=यक्ष्म कृमियों को शतवार मणि अपने वर्चस के साथ शरीर में आरूढ होती हुई **दुर्णाम्**[3]=बुरे, अवद्य नाम वाले गुह्य रोगों कृमियों को नष्ट करती है।

हिरण्यशृङ्ग., अथर्व. १९/३६/५ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् यह शतवार मणि चमकीले वर्ण वाले, **शृङ्गः**=अग्रभाग वाली है, **ऋषभः**=बलशाली है। दुष्ट कुत्सित नाम वाले अर्श, शोथ, संग्रहणी आदि नामक सब रोगों को नष्ट कर रोग कृमियों को दूर भगा देती है।

---

१. (i) ऋषभक=ऋषभ औषधि के आयुर्वेद वर्णित पहचान व गुण हैं-
ऋषभो गोपतिर्धीरो विषानी दुर्धरो वृषः।
ककुद्मान पुंगवो वोढा श्रृंगी धुर्यश्च भूपतिः ॥ राजनिघण्टु ॥ शतवार=ऋषभक का शृङ्गी नाम भी है-शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते. । अथर्व. १९/३६/२
(ii) जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्री शिखरोद्भवौ। रसोनकन्दवत् कन्दौ निस्सारौ सूक्ष्मपत्रकौ। जीवकः कूर्चिकाकार ऋषभो वृषश्रृङ्गवत्। भावप्रकाश निघण्टु ॥
२. रक्षांसि पद का अर्थ पृष्ठ ७, ८ पर देखें।
२. दुर्णामा कृमिर्भवति पापनामा। निरु.६/३/१२

शतवार मणि औषधि के ये गुण अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है, बहुतों के द्वारा अनुभूत गुण हैं।

अस्तृतमणिः

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥

अथर्व. १९/४६/१

अस्मिन्मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्व-स्तृतस्त्वाभि रक्षतु॥

अथर्व. १९/४६/५

आक्षेपक ने **प्रजापतिष्ट्वा.**, अथर्व. १९/४६/१, **अस्मिन्मणावेक-शतम्.**, अथर्व. १९/४६/५ अथर्ववेद के इन मन्त्रों को उद्धृत कर **अस्तृत मणि** को तान्त्रिक व जंगली, अन्धविश्वासी जनों द्वारा की जाने वाली मूर्ख चिकित्सा का कार्य बताया है। **'यहाँ मणि पुराण समाप्त हुआ'** इस वाक्य के साथ वेदोक्त **मणि**=ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि मणियों पर जो आक्षेपक ने अपने अपलाप का कहर ढहाया है, उसकी अन्तिम श्वास ली है।

वेद में मणि शब्द देखते ही तत्क्षण आक्षेपक श्री राव सामुद्रिक मणियों के ढेर की कल्पना में कूद गये हैं और उन्हें डूबन के लिए समुद्र में गोते भी खूब लगाये, पर मिली उन्हें कौड़ी भी नहीं।

अथर्ववेद के १९ वें काण्ड के ४६ वें सूक्त में ७ मन्त्र हैं, जिनमें अस्तृतमंणि का वर्णन है। **अस्तृत** शब्द की निष्पत्ति नैघण्टुक **स्तृणातीति वधकर्मा**, निघ. २/१९, वधकर्म वाली स्तृणाति धातु से नञ् पूर्वक क्त प्रत्यय द्वारा होती है। जिसका अर्थ है-

न स्तृणातीति अस्तृतः, अर्थात् जो अहिंसित है, हिंसा रहित है, वह अस्तृत कहा जाता है।

इस व्युत्पत्त्यनुसार ईश्वर, वीर्य, वीर्य शक्ति, जितेन्द्रिय व्यक्ति तथा सोमलता आदि औषधियाँ अस्तृत शब्द के वाच्यार्थ हैं।

प्रजापतिष्ट्वा., अथर्व. १९/४६/१ मन्त्र का अर्थ है-प्रजापालक ईश्वर ने, **वीर्याय**=बल, पराक्रम के लिये, **कम्**=सुख के लिये तुझ,

अस्तृतम्=अहिंसनीय, अनाशनीय वीर्य शक्ति को शरीर में सर्व प्रथम बाँधा है। उस वीर्य शक्ति को ही मैं आयु, तेज और पराक्रम एवं बल के लिए तुझ शरीर में बाँधता हूँ, जो अहिंसित होता हुआ, तुझ शरीर को रक्षित करे।

मन्त्र में शरीर के ओज, बल, तेज की अभिवृद्धि हेतु **अस्तृत**=वीर्य को, ईश्वर भक्ति को हिंसित साधन निर्दिष्ट किया है।

अस्मिन्., अथर्व. १९/४६/५ मन्त्र का अर्थ है-इस **अस्तृते**= अहिंसित वीर्य मणि व ईश्वर में, १०१ **वीर्य**=बलों की शक्ति है। इसमें हजारों जीवन दायिनी शक्तियाँ हैं। हे वीर्यमणि ! व्याघ्र के समान सभी शत्रुओं को, **अभितिष्ठ**=परास्त कर, जो रोग रूप शत्रु हैं, जो तुझे परास्त करना चाहते हैं, वे नीचे हो जायें, कुचल जायें। वह अहिंसित वीर्य मणि तुझ की चारों ओर से रक्षा करे।

इन मन्त्रार्थों से स्पष्ट है कि **अस्तृतमणि** अर्थात् ईश्वर, वीर्य आदि मणियाँ आन्तरिक, बाह्य आदि सभी शत्रुओं को परास्त करने का सामर्थ्य प्रदान करती है। वीर्य आत्मिक, शारीरिक बलों की सर्वोत्तम औषधि है। वीर्यमणि शरीर की वह शक्ति है, जिसके क्षीण, नष्ट होने पर मृत्यु हो जाती है। वीर्य के सामर्थ्य को ज्ञापित करने वाला यह वाक्य अतिप्रसिद्ध है -

मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात्।

कुछ विद्वज्जन, **अस्तृतमणि** का सम्बन्ध व्याघ्र, सिंह नखजटित शस्त्रों में करते हैं। वेदार्थ की अर्थ प्रक्रियाओं में आधिभौतिक प्रक्रिया भी है, उस परिप्रेक्ष्य में व्याघ्र, सिंह नख युक्त जटित शस्त्र अर्थ भी संभव है। एतादृश मजबूत शस्त्रों के द्वारा राष्ट्र रक्षा होने पर, शारीरिक, राष्ट्रीय ओज, तेज, बल आदि की वृद्धि होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है **अस्तृतमणि** तन्त्र मन्त्र, जादू टोना, गण्डा ताबीज से संबन्धित पदार्थ नहीं है। सुरक्षा, स्वास्थ्य प्रदान करने वाले पदार्थ हैं।

हत्या के लिए ओषधि-वनस्पतियों को **उकसाना, की समीक्षा**

इस शीर्षक में आक्षेप्ता ने अपामार्ग वनस्पति की खूब खिल्ली उड़ाई है। अपामार्ग तान्त्रिक हिंसा कर्म का साधन है, इसकी पुष्टि में उन्होंने कुछ एक

मन्त्र उद्धृत किये हैं-

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि॥ अथर्व. ४/१७/४
स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो.... भङ्गेन हतोऽसौ
फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा॥ यजु. ७/३
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाःफट् करिक्रति॥ अथर्व. ४/१८/३
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः॥ अथर्व. ४/१९/३

यां ते चक्रुः., अथर्व. ४/१७/४, **अमा कृत्वा.**, अथर्व. ४/१८/३, **अग्रमेष्यो.**, अथर्व. ४/१९/३ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में अपामार्ग वनस्पति का वर्णन है। इस अपामार्ग का सम्बन्ध तान्त्रिक हिंसा कर्मों से जोड़ना आक्षेपक की महती **भ्रान्ति** है।

अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के १७, १८ व १९ वें इन ३ सूक्तों में अपामार्ग का वर्णन है। **अपामार्ग** की शब्द सिद्धि अप+आङ्पूर्वक+मृजू **शौचालङ्करयोः** धातु से घञ् करके होती है। जिसका अर्थ है-

अप विपर्ययेण[1] आ समन्तात् मार्जयति मार्जति वा इति अपामार्गः।

अर्थात् जो उल्टे वार के रूप में चारों ओर से शुद्ध करता है, अलङ्कृत् करता है, वह पदार्थ अपामार्ग[2] कहा जाता है।

अपामार्ग शब्द की परिभाषा करते हुए शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है कि-

प्रतीचीनफलो वा अपामार्गः, शत. ब्रा. ५/२/४/२०, अर्थात् **प्रतीचीन**=उल्टा वार रूप फलवाला अपामार्ग होता है।

तात्पर्य हुआ अपामार्ग बुराई, दोष, विकृति आदि का प्रतिद्वन्द्वी होता

---

१. *अप इति उपसर्गः अत्र विपर्यये वर्तते।*
२. *अपामार्ग की विशेष व्याख्या लेखिका की 'अन्तरिक्ष वसिष्ठ ब्रह्म आदि विज्ञान' पुस्तक के पृष्ठ ८१-८९ पृष्ठों पर द्रष्टव्य है।*

है, बुराई, दोष आदि को नितान्त समाप्त करने वाला होता है।

अपामार्ग की इन व्युत्पत्ति व परिभाषा के अनुसार **ईश्वर** व **अपामार्ग नामा औषधि** सदृश पदार्थ अपामार्ग कहे जाते हैं।

वनौषधि चन्द्रोदय में अपामार्ग वनस्पति के बहुत से गुणों व प्रभावों का वर्णन है। अपामार्ग कफ, कण्डू, आंव तथा रक्त विकारों को दूर करता है। हृदय रोग, मेद रोग, उदर रोग को दूर कर पाचन शक्ति को बढाता है। अपामार्ग धातुवर्धक, वीर्यवर्धक और योनि आदि विकारों का शामक है। अपामार्ग के ये गुण अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है। अनुभवी वैद्यों ने खूब अनुभूत प्रयोग किये हैं।

या ते चक्रुः., अथर्व. ४/१७/४ मन्त्र का अर्थ है-जिस **कृत्याम्**[१]=हिंसा को (**कृ हिंसायाम्**) तेरे कच्चे अपक्व शरीर रूपी पात्र में रोग, कृमि करते हैं। जस, **कृत्या**=हिंसा क्रिया को रोग, कृमि कच्चे मांस में करते हैं उन, **कृत्यामृतः**=हिंसा करने वाले रोग, कृमियों को, **तया**=उस षष्ठ मन्त्रोक्त (**अपामार्ग त्वया**)=अपामार्ग के द्वारा वैद्य व ईश्वर नष्ट करे।

मन्त्र का संदेश है, **कृत्या**=हिंसक कृमियों का खाना, काटना रूप व्यापार अपामार्ग औषधि से दूर करना चाहिये।

अमा कृत्वा., अथर्व. ४/१८/३ मन्त्र का अर्थ है-जो **अमा**=छिपा हुआ साथ रहकर हिंसा रूप पाप करके उस पाप से दूसरे को, **जिघांसति**=अधिकृत करना चाहता है। तब उस, **दग्धायाम्**=जलती हुई अग्नि में बहुत से पत्थरों के मेल से फट् शब्द करे।

मन्त्र का देवता **अपामार्ग** है। तात्पर्य यह हुआ कि जब कोई प्राणघातक हमला करे, उस समय, **अश्मानः**=पत्थर, पुटाश आदि चटखने वाले पदार्थों को अग्नि में जलाकर **अपामार्ग**=विरोधी प्रतिक्रिया स्वरूप फट्-फट् शब्द करे। अग्नि में पुटाश, पत्थर आदि डालने पर फट्-फट् शब्द होता है। मन्त्र

---

१. ***(ii)* कृत्या शब्द की विशेष अर्थ 'प्रतिसरो मणिः' प्रकरण के पृष्ठ ६७ पर द्रष्टव्य है।**
***(ii)* कृत्या शब्द के शब्द, निवेचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ पर द्रष्टव्य है।**

में पदार्थों के योग से हुये फट् शब्द के अनुकरण को कथन करनेवाला फट् शब्द है। मन्त्र का फट् शब्द वाममार्गियों के तन्त्र मन्त्र का ज्ञापक नहीं है। जैसा कि आक्षेपक ने वेद के फट् शब्द को तान्त्रिकों का फट् शब्द समझ लिया है तथा अपनी इस भ्रष्ट सोच की पुष्टि में **स्वाङ्कृतोऽसि .... प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा**, यजु. ७/३ मन्त्र भी उद्धृत कर डाला।

वेद तथा वाममार्ग दोनों के फट् शब्द में अन्तर है। तान्त्रिक तो मुँह से फट्शब्द बोलकर डराते, धमकाते हैं और मन्त्र में यह प्रतिपादित किया है कि आग्रेय पदार्थों को अग्नि में डालने पर 'फट्' ऐसा शब्द होता है जो प्रतिद्वन्द्वी को भयभीत करता है।

स्वाङ्कृतोऽसि... फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा। यजु. ७/३ यजुर्वेद के इस मन्त्र में आया **फट्** शब्द **त्रिफला विशरणे** धातु का क्विबन्त रूप है। **फलितं विशीर्णं यत्तत् फट्,** अर्थात् जो नष्ट हुआ है, वह फट् कहा जाता है यजुः मन्त्रस्थ फट् शब्द की मन्त्रार्थ संगति इस प्रकार है -

भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा, अर्थात् **फट्**[1]=नष्ट होने पर, **हतः**=मारे जाने पर तुम्हे जीवन के लिये, सत्य के मर्दन से इस अज्ञान के विविध सुख के लिए सामर्थ्य देता हूँ।

मन्त्र का फट् शब्द तान्त्रिकों के सिद्धि का वाचक नहीं है। तान्त्रिकों के मारण मोहन का फट् शब्द उनकी मन गढन्त क्रिया का ज्ञापक है।

अग्रमेष्योषधनीनाम्., अथर्व. ४/१९/३, मन्त्र का अर्थ है- हे अपामार्ग औषधि व भेषज रूप परमेश्वर ! तू अपनी, **ज्योति**=सामर्थ्य रूप सर्वोत्तम है, तू **पाकस्य**=दुग्धपायी शिशुओं का (पिबतीति पाकः) रक्षक है और **रक्षसः**[2]=रोग कृमियों का, **हन्ता**=नाशक है।

अपामार्ग सम्बन्धी इन मन्त्रों में हत्या के लिये औषधियों को आदेश नहीं दिया जा रहा है, अपितु औषधियों में कृमिनाश का गुण स्वतः विद्यमान

---

१. *फट् शब्द का विशेष विवेचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर ३० में द्रष्टव्य है।*
२. *रक्षस् शब्द का विशिष्ट वाच्यार्थ पृष्ठ ७ पर द्रष्टव्य है।*

है, जिसका मन्त्रों में प्रतिपादन है। हत्या के लिए औषधि वनस्पतियों को उकसाना आक्षेपक का यह कथन आक्षेपक की बड़बड़ाहट मात्र है।

अथर्ववेदीय-पिशाचपुराण सबका मार्गदर्शक, की समीक्षा

यह शीर्षक जितने धमाके का है उतना ही निःसार है। आक्षेपक श्री राव ने इस प्रकरण में **पिशाच** शब्द की डुगडुगी पीटी है। वेदों में **पिशाच** शब्द अनेक विभक्तियों से युक्त ३० स्थानों पर आया है। ऋग्वेद में १ बार, यजुर्वेद में २ बार तथा अथर्ववेद में २७ बार।

वेद में आये अनेक विभक्त्यन्त **पिशाच** शब्द वाले ऋग्वेदादि से २८ मन्त्रों को आक्षेपक ने उद्धृत किया है। वे मन्त्र हैं-

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण।
सर्वं रक्षो नि बर्हय॥ ऋ. १/१३३/५
पिशाचेभ्यो बिंदलकारी। यजु. ३०/८
न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानाभोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥
यजु. ३४/५१, अथर्व. १/३५/२

इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः॥ अथर्व. १/१६/३
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा॥ अथर्व. २/१८/४
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे॥ अथर्व. ४/२०/६
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः॥ अथर्व. ४/२०/७
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चाति सर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय॥ अथर्व. ४/२०/९
सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे। अथर्व. ४/३६/४
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोतमामिव। अथर्व. ४/२०/९
न पिशाचैः सं शक्नोभि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे॥ अथर्व. ४/३६/७
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते॥ अथर्व. ४/३६/८
पिशाचान् त्सर्वानोषधे प्र मृणीति सहस्व च॥ अथर्व. ४/३७/१०
अक्ष्यौ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि॥ अथर्व. ५/२९/४

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तमग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥ अथर्व. ५/२९/५
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥ अथर्व. ५/२९/६
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तुच्छिनत्तु सोमः शिरो अस्यधृष्णुः ।अथर्व. ५/२९/१०
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् । अथर्व. ४/३/७
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥ अथर्व. ५/२९/१४
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतो वीर्या यमेन समजीगमत् ॥ अथर्व. ६/३२/२
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥ अथर्व. ८/२/१२
ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ अथर्व. १२/१/५०
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेमा ॥
अथर्व. १२/३/१५
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥अथर्व. १२/३/४३

पिशङ्गभृष्टिम्., ऋ. १/१३३/५,**पिशाचेभ्यो**. यजु. ३०/८, **न तद्रक्षांसि पिशाचाः**, यजु. ३४/५१, अथर्व. १/३५/२, **इदं विष्कन्धम्.**, अथर्व. १/१६/३, **पिशाचक्षयणमसि.**, अथर्व. २/१८/४, **पिशाचान्.**, अथर्व. ४/२०/६, **वीध्रेन**, अथर्व. ४/२०/७ **यो अन्तरिक्षेण.**, अथर्व. ४/२०/९, **सहे पिशाचान्.**, अथर्व. ४/३६/४, **तपनो अस्मि.**, अथर्व. ४/३६/६, **न पिशाचैः**, अथर्व. ४/३६/७, **पिशाचाः**, अथर्व. ४/३६/८, **पिशाचान्**. अथर्व. ५/२९/६, **क्षीरे**. अथर्व. ५/२९/७, **अपां मा.**, अथर्व. ५/२९/८, **दिवा मा.**, अथर्व. ५/२९/९, **क्रव्यादमग्र.**, अथर्व. ५/२९/१०, **इन्द्रजाः**. अथर्व. ४/३/७, **एतास्ते.**, अथर्व. ५/२९/१४,

रुद्रो वो., अथर्व. ६/३२/२, **आरादरातिम्.**, अथर्व. ८/२/१२, **ये गन्धर्वाः.**, अथर्व. १२/१/५०, **वनस्पतिः.**, अथर्व. १२/३/१५, **अग्नीरक्षः.**, अथर्व. १२/३/४३ ऋग्वेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद के इन मन्त्रों में पिशाच शब्द देखकर आक्षेपक उपेन्द्र राव सीधे उन की, कहानियों के आनन्द में पहुँच गये जिन्हें बाणभट्ट की आत्मकथा आदि ग्रन्थों में, संस्कृत साहित्य में बाण, कालिदास दण्डी आदि कवियों ने उद्धृत किया है। जिनमें वाममार्गियों की साधना के पिशाच पिशाचियों की घृणित मद्य, मांस व मद्यघटियों का वर्णन है।

आक्षेपक के मत में ये मन्त्र वाममार्गियों के तन्त्र मन्त्र के साधक हैं तथा अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के १६ वे सूक्त के प्रथम मन्त्र में जो **अमावास्यां रात्रिम्** शब्द आये हैं, वे रात्रि में की जानेवाले तान्त्रिक विधि के उद्भावक हैं।

गन्धर्व, पिशाच, रक्षस आदि शरीरधारी व्यक्ति विशेष हैं, साधारण मनुष्य नहीं। और न गन्धर्व, पिशाच आदि रोगजनक कृमि हैं।

आक्षेपक की यह पिशाच प्रकरण सम्बन्धी समस्त ऊहा बिना सिर पैर की है। कुछ कहना चाहिए अतः कुछ भी कह डाला है। आक्षेपक के कथन के निःसारता के लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, पिशाच शब्द की व्युत्पत्ति ही उनके कथन की निःसारता को बताने में पूर्ण समर्थ है। **पिशाच**[1] की व्युत्पत्ति है-

पिशितमवयवयभूतं मांसरुधिरादिकमाचमतीति पिशाचः।

अर्थात् जो अवयवभूत मांस, रुधिर आदि एवं अन्नादि कणों को खाने, चाटने वाले कृमि, जीव आदि हैं वे पिशाच कहे जाते हैं।

तात्पर्य यह हुआ कि शरीर में रोगादि उत्पन्न कर मांसादि को सुखाने वाले रोगजन्य कृमि, मांसादि को खाने वाले प्राणी एवं मांस भक्षी मनुष्य पिशाच कहे जाते हैं। पिशाच न तो मनुष्यादि से भिन्न व्यक्ति विशेष हैं, न विशेष योनिवाले हैं, अपितु पिशाच तो वे सभी हैं जो-जो मांस खाते हैं, मांस

---

१. *पिशाच की विशेष व्याख्या पृष्ठ ९ पर द्रष्टव्य है।*

आदि को सुखाते हैं। इस प्रकार रोगजन्य कृमि, सूक्ष्म जन्तु, इन कृमि, जन्तु से आहत प्राणी, कुत्सित कर्म करने वाले एवं मांसादि खाने वाले, शव को खाने वाले जो कोई भी मनुष्य कृमि व प्राणी हैं, वे सभी पिशाच संज्ञक होते हैं।

प्रसङ्गगत मन्त्रों में शरीर, राष्ट्र आदि को **पिशाच**=दुःख, पीड़ा, हानि पहुँचाने वाले रोगादि संकट उत्पन्न करने वाले कृमि, जन्तु मनुष्य आदि जो भी हैं, उनके निवारण, उपशयन आदि की शिक्षा, औषधि का प्रतिपादन है।

पिशङ्गभृष्टिम्., ऋ. १/१३३/५ ऋग्वेद के इस मन्त्र में **इन्द्र**= ऐश्वर्यशाली ईश्वर, राजा आदि से प्रार्थना की गई है कि जो **पिशङ्ग**=पीलिया रोग से भ्रष्ट, भयकारी तथा मांस शोषक, खादक कृमि या जन हैं, **रक्षः**=जिनसे बचना आवश्यक है, उन सब को निर्मूल करे, बाहर निकाले।

पिशाचेभ्यः., यजु. ३०/८ यजुर्वेद के इस मन्त्र में सर्व शक्तिसम्पन्न ईश्वर व राजा से प्रार्थना की गई है कि **पिशाचेभ्यः**[1]=मांस आदि भक्षक अथवा नष्ट आशा वाले कृमि, मनुष्य आदि दुःखदायी कष्टकारक प्राणियों को तथा, **विदलकारीम्**=टुकड़े-टुकड़े करने वाली शक्तियों को ईश्वर, राजा **परा सुव**=दूर करें।

न तद्रक्षांसि., यजु. ३४/५१, अथर्व. १/३५/२ मन्त्र का देवता **तेज** है। मन्त्र का अर्थ है-विद्वानों का जो प्रथम अवस्था का ओज है उसे तथा जो, **दाक्षायणम्**=चतुर, निपुण के द्वारा धारण करने योग्य, **हिरण्यम्**=वीर्य है (**रेतो हिरण्यम्**, मै.सं. ३/७/५) उसको धारण कर लेता है, वह विद्वानों में दीर्घ आयु एवं मननशीलों में बड़ी आयु को प्राप्त करता है, उसे पिशाच और **रक्षः**[2] रूप घातक शोषक कृमि, रोग, म्लेच्छ प्राणी आदि, **न तरन्ति**=नहीं प्राप्त कर सकते।

इन तीनों मन्त्रों के अर्थों से स्पष्ट है कि पिशाच कोई योनि विशेष वाला मनुष्य नहीं है, दुःखदायी कृमि, प्राणी मनुष्य आदि हैं।

इदं विष्कन्धम्., अथर्व. १/१६/३ इस मन्त्र में **पिशाच्याः** शब्द

---

१. *पिशिता नष्टा आशा येषां हे पिशाचाः। दया.भा.यजु. ३०/८*

२. *रक्षः शब्द का निर्वचन व विशेष अर्थ व्याख्या पृष्ठ ७ पर द्रष्टव्य है।*

आया है, जिसे देख आक्षेपक यह संदेह कर बैठे कि यह मन्त्र तान्त्रिकों द्वारा अमावस्या की रात्रि में की जा रही, तान्त्रिक विधि के अन्तर्गत जो कोई स्त्री मद्य, मांस आदि का भक्षण करती है, छिपकर घृणित कार्य करती है, उस स्त्री का अभिद्योतक है। आक्षेप्ता का यह मन्तव्य प्रकरण के विरुद्ध है।

इस मन्त्र के पूर्व द्वितीय मन्त्र में तथा इस मन्त्र के अग्रिम चतुर्थ मन्त्र में विभिन्न विभिक्तियों में **सीस** शब्द आया है। जो खनिज द्रव्य है। इस **सीस** खनिज द्रव्य को लोक में **सीसा** कहते हैं। सीसा दो प्रकार का होता है-**कुमार** और **समल**।

आयुर्वेदिक वनौषधि चन्द्रोदय ग्रन्थानुसार सीसा क्षय, वात विकार, गुल्म, पाण्डु रोग, भ्रम, कृमि, कफ, शूल, प्रमेह, संग्रहणी और गुदा के रोगों को नष्ट करने वाला है।

प्रकृत मन्त्र में आधिदैविक पक्ष में खनिज द्रव्य सीसा से होने वाली चिकित्सा का प्रतिपादन है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **इदम्**=यह, **सीसा**=खनिज द्रव्य, **विष्कन्धम्**=शोषक, गतिरोधक (**विस्कन्दिर् गतिशोषणयोः**) को पराभूत करता है, यह सीसा, **अत्त्रिणः**=औरों को खा जाने वालों को पीड़ित करता है, रोकता है। इस सीसा के द्वारा जितनी, **पिशाच्याः**=रोग, कृमि, पापी, मांसभक्षण आदि प्रवृत्तियों के, **जातानि**=प्रकार हैं, उत्पत्तियाँ हैं, उन सबको पराभूत करता हूँ।

मन्त्र में शोषण, खादक आदि दुवृत्तियों की खनिज द्रव्य सीसा द्वारा होने वाली चिकित्सा का संकेत है। किसी को दुःखी पीड़ित करने की वृत्ति शारीरिक, मानसिक दोषों से उत्पन्न होती है। औषध द्वारा मानसिक आदि दोषों को दूर किया जाता है।

सीसा खनिज द्रव्य का जैसे चिकित्सा कार्य में उपयोग लिया जाता है, वैसे युद्धादि में शत्रु नाश के लिये भी उपयोग में लाया जाता है। आधिभौतिक पक्ष में जो शत्रु राज्य व राष्ट्र घातक हैं, उन्हें सीसा द्वारा नष्ट कर राज्य व राष्ट्र सुरक्षित करने का मन्त्र का संदेश है। इस पक्ष में मन्त्रार्थ है-

अर्थात् इस सीसा द्रव्य से निर्मित गोली आदि शस्त्र, **विष्कन्धम्**=मार्ग

रोधक शत्रुओं को पराभूत करता है। यह सीसा औरों को खा जाने वाले परभक्षियों का नाशक है, जितने भी पिशाच वृत्तिवालों की सन्तानें=सहयोगी हैं, उन सबको मैं राष्ट्र रक्षक सीसा से पराभूत करता हूँ।

इस अर्थ पक्ष में राष्ट्राध्यक्ष की राष्ट्र रक्षक रूप प्रतिज्ञा को प्रकट करने वाला यह मन्त्र है। इस प्रकार इन मन्त्रार्थों से स्पष्ट है कि मन्त्रों में तान्त्रिक पिशाची का वर्णन नहीं है, अपितु **पिशाच** = उत्पीड़कों के नाश का प्रकथन है।

पिशाचक्षयणमि., अथर्व. २/१८/४ मन्त्र का देवता **अग्नि**[1] है। अग्नि शब्द ईश्वर, राजा, सूर्य आदि का वाचक है। ईश्वर आदि अग्रगामियों से खादक, शोषक दुवृत्तियों एवं कृमि, कीटों से बचने के सामर्थ्य की प्रार्थना की गई है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे प्रभो ! आप **पिशाचक्षयणम्**=काम, क्रोध, ईर्ष्या, शोक आदि रोग, कृमि, कीट आदि की शक्ति के विनाशक हैं। मुझे भी काम, क्रोधादि तथा रोग, कृमि, कीट आदि के, **चातनम्** = विनष्ट करने की (**चातयतिर्नाशने.**, निरु. ६/६/३०) शक्ति प्रदान करें, यह मेरी, **स्वाहा**=प्रार्थना है।

मन्त्र में शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक वृत्तियों के शोधक बल की याचना, प्रार्थना है। इन आध्यात्मिक आदि वृत्तियों के परिशुद्ध होने पर काम, क्रोधादि तथा दूसरों को शोषण करने की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती है। यहाँ मन्त्रगत पिशाच का सम्बन्ध किसी शरीरधारी योनि विशेष मनुष्य से नहीं है।

पिशाचान्., अथर्व. ४/२०/६ अथर्ववेद के इस मन्त्र का देवता ओषधि[2] है। जो **ओष**=दाह, जलन, पीड़ा आदि को नष्ट करते हैं, उन्हें ओषधि कहते हैं। ईश्वर, जल, अग्नि आदि एवं वृक्ष, वनस्पति आदि पदार्थ

---

१. इस सूक्त सम्बन्धी अग्नि शब्द का अर्थ विशेष 'शत्रुनाशक अग्नि से शत्रुनाशक बल की प्राप्ति, की समीक्षा' में पृष्ठ ३२ पर देखें।

२. वृक्ष, वनस्पति विषयक ओषधि शब्द अर्थ विशेष पृष्ठ ४ पर द्रष्टव्य है।

दाह, पीड़ा आदि से मुक्त करते हैं, अतः ये सब ओषधि कहे जाते हैं। **ओषधि**=दवा पक्ष में मन्त्र का अर्थ है-

हे ओषधि ! मैं तेरा, **आरभे**=आश्रय कर रहा हूँ, तू सभी, **पिशाचान्**=मांस भक्षक (**पिशितम्=मांसम् आचमन्ति अश्नन्ति तान्**) रोगों, रोग जनक कीट आदि को दिखा दे।

मन्त्र का तात्पर्य है ओषधियाँ शरीरस्थ जितने भी प्रकार के खादक, शोषक कृमि, रोग, कीटाणु रूप पिशाच हैं, घातक मनुष्य हैं, उनसे प्राप्त सब कष्टों को नष्ट नहीं करती है। मन्त्रस्थ पिशाच शब्द का अर्थ वाममार्गी पिशाच नहीं है।

वीध्रे सूर्यम्., अथर्व. ४/२०/७ मन्त्र में पिशाच शब्द है। मन्त्र का अर्थ है-हे औषधि रूप परमेश्वर ! वनस्पति रूप औषधि ! तू **वीध्रे**=अन्तरिक्ष में (**विविध विशेषेण वा इन्धन्ते दीप्यन्ते अस्मिन् ग्रह नक्षत्रादीनि इति वीध्रम्**[1]) गति करते हुये सूर्य के समान, **पिशाचम्**=मांस भक्षक कृमि रोग, कीटाणु आदि बाधकों को छिपाओ मत। जैसे सूर्य सब पदार्थों का संदर्शक है, छिपा नहीं रहता, वैसे ही मांसभक्षकों का ज्ञान करा दो।

यो अन्तरिक्षेण., अथर्व. ४/२०/९ मन्त्र में पिशाच का ज्ञान कराने की ईश्वर व औषधि से प्रार्थना है। मन्त्र का अर्थ है-जो पैशाचिक वृत्तिवाले काम, क्रोध आदि हैं एवं रोग, कृमि आदि हैं। उनमें से जो कोई **पिशाच**=पीड़क हृदय व अन्तरिक्ष में विद्यमान है व संचरण करता है, और जो मस्तिष्क रूप द्युलोक अथवा अन्तरिक्ष में अतिशय रूप से गति करता है, जो शरीर व भूमि को अपना, **नाथम्**=आश्रय मानता है, **तम्**=ऐसे, **पिशाच**=घातक को, पीड़क को दिखा दो।

मन्त्र का तात्पर्य है जो **पिशाच**=घातक दुवृत्ति व घातक रोग, कीटाणु हृदय, मस्तिष्क एवं शरीर के किसी भी अवयव में विद्यमान हैं, उनको जब औषधि रूप परमेश्वर तथा वनस्पतियों का रस इत्यादि प्रकट कर देते हैं, तो उनका उपचार शीघ्र होता है।

---

१. वाविन्धेः, उणा. २/२७

चतुर्थ काण्ड के इस २० वें सूक्त का देवता **ओषधि** है। ईश्वर रूप औषधि तो स्पष्ट है। फल रसादि प्रदायक औषधि कौन सी ली जाये ? इसका परिज्ञान इसी सूक्त के तीसरे मन्त्र से ज्ञात हो जाता है। तीसरा मन्त्र है-

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका। अथर्व. ४/२०/३

मन्त्र में **सुपर्ण** शब्द आया है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में **सुपर्ण कमल को कहा है।** यथा-

सुपर्णः पदिमन्याम्। वैद्यक शब्दसिन्धु श.मा. ॥

अर्थात् सुपर्णकमल का वाचक है।

कमल के कई प्रकार हैं। श्वेत कमल, नील कमल, रक्त कमल, नीलोत्पल कमल आदि।

श्वेत कमल-नेत्र ज्योति वर्धक[1] तथा रक्त शोधक, सूजन, व्रण नाशक है।

नील कमल-शीतल, पित्तनाशक, रुचिकारक, देह को दृढ़ तथा बालों की वृद्धि करने वाला है।

रक्त कमल-कड़वा, रक्त शोधक, कफ, पित्त, वात का शामक तथा वीर्य वर्धक होता है।

नीलोत्पल कमल-स्वादिष्ट, रक्त, पित्त शोधक होता है।

इस प्रकार इस सूक्त का देवता **सुपर्ण**=कमल है, जो नेत्रादि रोगों को दूर करता है। कमल औषधि से चिकित्सा करने का संदेश इन मन्त्रों में है, वाममार्गी पिशाच पिशाचियों का कथन इन मन्त्रों में नहीं है।

इस सूक्त में चिकित्सा का संदेश है यह सायणाचार्य भी मानते है, चिकित्सा की औषधि उन्होंने सदम्पुष्पा मानी है अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी में **मातृनामा** औषधि लिखी हैं। इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह सूक्त चिकित्सा का निर्देशक है। पर यह दूसरी बात है कि इन दोनों **सदम्पुष्पा** व **मातृनामा** औषधियों का मन्त्रों में वर्णन नहीं है, **सुपर्ण**=कमल का तो है। अतः इन

---

१. *(i)* **श्वेतं तु कमलं मधुरं वर्णकृन्नेत्र्यम्। निघण्टु रत्ना. ॥**
(ii) **कज्जलं काञ्चनं चैव सित्यदमस्य केशरम्।....।**
सर्वाञ्जनख्यातं पातालनिधिदर्शनम्॥ सिद्धनागार्जुन कक्षपुटं ५ ॥

मन्त्रों में श्वेत कमल औषधि का सम्बन्ध प्रसङ्ग सम्बन्धित है।

अथर्ववेद के चतुर्थ मण्डल के ३६ वें सूक्त में १० मन्त्र हैं, जिनका देवता **सत्यौजा अग्निः है**[1]। जिसका अर्थ है अग्रगण्य सत्य के **ओजः**=बल वाला। ईश्वर, दुर्वृत्तियों रहित जीव, राजा आदि **सत्यौजा अग्नि** कहे जाते हैं।

सहे पिशाचान्., अथर्व. ४/३६/४ मन्त्र में सर्वरक्षक ईश्वर, एवं राष्ट्र रक्षक राजा की ओर से उनके सामंर्थ्य स्वरूप का प्रकथन है। मन्त्र का अर्थ है-मैं, **पिशाचान्**=पीड़कों, मांसभक्षकों को अपने बल से पराभूत करता हूँ, उनकी बल, धन आदि रूप सम्पत्ति को ग्रहण करता हूँ और उन्हें परास्त करता हूँ।

तपनो अस्मि., अथर्व. ४/३६/६ मन्त्र का अर्थ है-मैं ईश्वर व राजा, **पिशाचान्**=पीड़कों, मांसखोरों का जैसे गौ आदि पशुओं के स्वामी को व्याघ्र संतप्त करता है, वैसे संतप्त करने वाला हूँ।

न पिशाचैः., अथर्व. ४/३६/७ मन्त्र का अर्थ हैं-अर्थात् मैं ईश्वर व राजा, **पिशाचैः**=मांसखोरों, उत्पीड़कों के साथ सन्धि नहीं कर सकता, न चोरों के साथ, **न वनर्गुभिः**=वन में छिपे विचरण करने वाले डाकुओं के साथ मेल कर सकता हूँ। मैं जिस-जिस ग्राम में प्रविष्ट हूँ, शासन करता हूँ, उस-उस ग्राम से पिशाच नष्ट हो जाते हैं, मेरी शक्ति उन पिशाचों को नष्ट कर देती है।

पिशाचाः., अथर्व. ४/३६/८ मन्त्र का अर्थ है-उस-उस ग्राम से, **पिशाचाः**=मांस भक्षी, घातक नष्ट हो जाते हैं और वे पाप को नहीं जानते यानी वे पाप को करना भूल जाते हैं। ईश्वरीय दण्ड या राज दण्ड आदि का यह लाभ होता है।

इस प्रकार इस सूक्त के मन्त्रों में शरीर, राज्य आदि के **पिशाच**=घातकों को नष्ट करने वाले ईश्वर, राजा आदि के सामर्थ्य का वर्णन है।

---

1. *तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा। यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अशतियात्॥ अथर्व. ४/३६/१॥*

पिशाचान्., अथर्व. ४/३७/१० यह मन्त्र अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के ३७ वें सूक्त का मन्त्र है। जिसमें पिशाच आदि के निवारण के उपाय निर्दिष्ट किये हैं। वे उपाय हैं-ईश्वर, सूर्य, विद्युत् आदि एवं औषधि। पिशाच निवारक इन शक्तियों का इस सूक्त के **अजशृङ्गराटकी**, अथर्व. ४/३७/६, **भीमा इन्द्रस्य हेतयः**, अथर्व. ४/३७/८ इन मन्त्रों में प्रतिपादन किया गया है। वे शक्तिशाली **अजशृङ्गी**[1]=मेढाशृङ्गी, गुड़मार औषधि एवं **इन्द्रस्य**= ईश्वर, सूर्य, रश्मि, विद्युत् आदि पदार्थ चिकित्सा के साधन है। मन्त्र का अर्थ है-

हे **अजशृङ्गि**=मेढाशृङ्गी औषधि ! सब, **पिशाचान्**=मांस खादक, कृमियों को मसल दे और इन कृमियों के बल को धर्षित कर दे, सदा के लिये नष्ट कर दे।

अक्ष्यौनि विध्य., अथर्व. ५/२९/४ यह मन्त्र अथर्ववेद के पंचम काण्ड के २९ वें सूक्त का है, जिसका देवता जातवेदा: है। इस सूक्त में कृमि चिकित्सा का वर्णन है। **जातवेदाः** शब्द ईश्वर, अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि दैविक पदार्थों का वाचक है[2]। इस सूक्त में १५ मन्त्र हैं। **अक्ष्यौ नि विध्य** चतुर्थ मन्त्र में **पिशाच** शब्द आया है। **पिशाच** शब्द को देखकर आक्षेप्ता का मानना है कि इस ५ वें मण्डल के २९ वें सूक्त में जहाँ-जहाँ पिशाच शब्द है वे वे मन्त्र वाममार्गियों के जादू टोना के अभिद्योतक हैं। यह मन्तव्य पूर्वापर प्रकरण के विरुद्ध है। मन्त्रों में मांसभक्षक कृमि, रोग, प्राणघातक पशु, मनुष्य जो भी हैं, उनके निवारण का निर्देश है।

आक्षिप्त सूक्त में **जातवेदाः** वाच्य ईश्वर, सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों से कैसे उपयोग लिया जाये ? इसका वर्णन है। सूक्त के चतुर्थ मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् जो भी कोई रक्त भक्षक कृमि, शत्रु रूप पिशाच इस शरीर को खाता है, उसकी ईश्वर, औषधि आदि आँखे बींध दें, हृदय बींध दें, जिह्वा

---

१. ***अजशृङ्गी औषधि का विशेष अर्थ पृष्ठ १४ में द्रष्टव्य है।***

२. ***यत्तु किंचिदाग्नेयं तज्जातवेदसानां स्थाने युज्यते। अयमेवाग्निर्जातवेदाः निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते॥ निरु. ७/५/१९-२०***

काट दे, दांतों को मसल दें, बुराइयों को अमिश्रण=दूर करने वाले अग्नि परमात्मा उस पिशाच को नष्ट कर दे।

मन्त्र में रोग, कृमि आदि के कीटाणुओं, जीवाणुओं को नष्ट करने की ईश्वर, औषधि आदि से प्रार्थना है। वाममार्ग की क्रिया का वर्णन नहीं है।

यदस्य हृतम्., अथर्व ५/२९/५ मन्त्र का अर्थ है-**अग्ने**=उन्नति पथ पर ले जाने वले ईश्वर, वैद्य आदि जन ! इस शरीर को, **पिशाचैः**=मांसभक्षी रोग कृमियों द्वारा जो मांस हरण कर लिया गया है, खा लिया गया है, इधर उधर कर दिया गया है, नोंच लिया गया है खाया गया है उसको ज्ञानी जन तुम ! **पुनः आ भर**=फिर से औषध आदि के द्वारा शरीर को भर दो। हम इस खाये हुए शरीर में प्राण शक्ति की, मांस की प्रेरणा चाहते हैं।

मन्त्र में **पुन आ भर**=फिर से भर दो, यह जो प्रार्थना की गई है, उससे स्पष्ट है कि **पिशाच** शब्द रोगजनक कृमि अथवा प्रहार द्वारा घात करने वाले मनुष्य आदि का वाचक शब्द है। वाममार्गियों के जादू टोना का वाचक पिशाच शब्द नहीं है।

आमे सुपक्वे., अथर्व. ५/२९/६ मन्त्र का अर्थ है-जो **पिशाचः**=रोग कृमि अथवा अन्न, फल आदि को नष्ट करने वाले कृमि, कच्चे अन्न अदि में, भोजनादि के रूप में बने सुपक्व अन्न में, **शबल**=अधपक्के अन्न में अथवा **विपक्वे**=खूब पके, **अशने**=भोजन में, खाद्य पदार्थों में प्रविष्ट होकर मुझ जीव को हानि पहुँचाता है, मारना चाहता है (**दभ्नोति इति वधकर्मा**, निघ. २/१९) वह पिशाच अपनी विस्तृत कृमि सन्तति के साथ नष्ट हो जाये तथा सभी प्रकार के, **पिशाचाः**=रोग जन्तु नष्ट हो जायें, शरीर से दूर हो जायें, और शरीर, **अगदः**=रोग रहित हो जाये।

मन्त्र में **अगदः** शब्द आया है। गद शब्द रोग का वाचक है (**गदः कृष्णाजुने रोगे हैमः**) और **न+गद=अगद, अगद** शब्द रोग रहितता का वाचक है। इस प्रकार अगद शब्द से ही सुस्पष्ट है कि अथर्ववेद के पंचक काण्ड का २९ वाँ सूक्त चिकित्सा का प्रतिपादक है। रोगजनक पिशाचों से बचने की चिकित्सा ईश्वर, अग्नि, सूर्य, औषधि आदि द्वारा की जाती है।

कृव्यादमग्ने., अथर्व. ५/२९/१० इस अथर्व मन्त्र में अग्रगणी सर्वव्यापक ईश्वर, ज्ञानी वैद्य अथवा अग्नि आदि से आतुर का प्रतिवेदन है कि **क्रव्यादम्**=शरीरस्थ मांस को खाने वाले **रुधिरम्**=रक्त दूषित करने वाले, मन, बुद्धि, स्मृति को नष्ट करने वाले, **पिशाचम्**=रोग कृमियों को, ऐश्वर्यशाली जितेन्द्रिय मनुष्य बलशाली होता हुआ, आत्मिक बलरूपी वज्र व क्रिया रूप वज्र से कृमियों को नष्ट करे। जितेन्द्रिय की **सोम**=वीर्य शक्ति एवं सोम औषधि रोग कीटाणुओं के सिर को छिन्न भिन्न कर दे। ईश्वर, वीर्य, सोम आदि औषधि, **पिशाच** = रोग कृमियों को, **धृष्णु** = धर्षण करने वाले हैं।

मन्त्र में जो **क्रव्याद, रुधिर, पिशाच** शब्द आये हैं, व वाममार्गियों की जादू टोनावाली रक्त, मांस आदि खाने खिलानेवाली क्रियाओं व पिशाचियों के द्योतक नहीं हैं। अपितु षष्ठ मन्त्र में कहे गये, **अगदः**=रोग रहितता, नीरोगता से सम्बन्धित चिकित्सा के अभिद्योतक शब्द हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सूक्त में नीरोगता के लिये चिकित्सा विधि, नीरोगता देने वाले जातवेदाः पद से वाच्य ईश्वर, अग्नि, औषधि आदि पदार्थों एवं जिनसे नीरोगता प्राप्त करनी है, उन मांस खाने वाले, रुधिर पीने वाले घातक पिशाच रूप कृमियों के, शत्रुओं के उपाय विशेष निर्दिष्ट हैं।

इन्द्रजाः सोमजाः, अथर्व. ४/३/७ यह मन्त्र अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के तृतीय सूक्त का मन्त्र है। मन्त्र में आये **सोमजाः** पद की खिल्ली उड़ाने वाला आक्षेपक का बड़बड़ाहट रूप कथन है-

"अभी तक वेदों ने मार काट करने का प्रमुख कार्य इन्द्र को एवं जलाने जैसा कार्य अग्नि को दिया था। परन्तु अब अथर्ववेद ने उनके साथ सोम को भी सम्मिलित करके उसको सिर काटने का काम दे दिया!" पृ. ३६

आक्षेपक यह ऊल जलूल बड़बड़ाहट रूप कथन इस कारण कर बैठे, क्योंकि आक्षेपक इन्द्र, अग्नि, सोम शक्तियों को योनि विशेष, व्यक्ति विशेष निष्ठ मानते हैं। आक्षेपक का यह मन्तव्य बुद्धिमानों का मन्तव्य नहीं है। इन्द्र, अग्नि, सोम शक्तियाँ पृथक्-पृथक् नहीं है, साहचर्य रूप शक्ति हैं,

साहचर्य से रहने वाली शक्तियाँ हैं।

जिस किसी भी पदार्थ में जितेन्द्रियता का सामर्थ्य, अग्रगामित्व का सामर्थ्य और **सोम**=सौम्य, शान्ति का सामर्थ्य है वह पदार्थ इन्द्र अग्नि, सोम कहा जाता है। इन सामर्थ्यों वाले चाहे जड़ हो या चेतन, वे सभी इन्द्र, अग्नि, सोम संज्ञक होते हैं। इन्द्र अग्नि, सोम सामर्थ्यता जड़, चेतन पदार्थ संयमन, उद्यमन और संतुलन के द्वारा किसी भी विनाशकारी ताकत को विनष्ट करने में पूर्ण समर्थ बन जाता है। सोम कोई शरीरधारी रूप देवता नहीं है, जो अग्नि है, जो इन्द्र है वह ही सोम होता है। इसलिए आक्षेपक श्री राव का सोम को सिर काट देने का काम देना यह कथन निःसार है। इतना ही नहीं, पूर्ण सामर्थ्य के लिए तो **अथर्वा, अथर्वणः भावः आथर्वणम्**=एकाग्रता, स्थिरता भी आवश्यक है, जो प्रकृत मन्त्र में **आथर्वणमसि** शब्द द्वारा व्यक्त की गई है। इस प्रकार मन्त्र का अर्थ है-**इन्द्रजाः**=जितेन्द्रियता की शक्तियाँ, **सोमजाः**=सन्तुलन की शक्तियाँ, **आथर्वणम्**=एकाग्रता प्रदान करने वाली होती हैं, ये शक्तियाँ तथा **व्याघ्रजम्भनम्**=व्याघ्र के समान हिंसक, घातक शक्तियों को नष्ट करने वाली होती है।

एतास्ते., अथर्व. ५/२९/१४ अथर्ववेद के इस मन्त्र में उपेन्द्रराव पिशाच शब्द देखकर हिंस्त्र पशुओं के वशीकरण जादू टोना का मन्त्र बता रहे हैं, जो पूर्वापर प्रकरण से विरुद्ध है। सूक्त के अन्य मन्त्रों की भाँति इस मन्त्र में भी **पिशाच**=मांसभक्षक रूप रोग कृमियों के निवारण का ही प्रतिपादन है! मन्त्र का अर्थ है-

हे **जातवेदः**=पृथिवी के प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान जातवेदस् अग्नि! यज्ञाग्नि! ये तुझ में डाली गई समिधायें, **पिशाच जम्भनीः**=रोगादि उत्पादक पिशाच रूप कृमियों को विनष्ट करने वाली है, उन समिधाओं से तू जीव भली प्रकार युक्त हो और **एनाः**=इन मांसभक्षक कृमियों को पकड़ ले, जकड़ ले।

अग्नि रूप ईश्वर पक्ष में मन्त्रार्थ है-हे **जातवेदः अग्ने**=सर्व पदार्थों में व्यापक ईश्वर! समिधा रूप तुम्हारा ज्ञान रोगादि कृमियों को नष्ट करने वाला

है। तुम उन ज्ञान दीप्तियों से हमें युक्त करो और इन पिशाच रूप रोग कृमियों को दूर ले जाओ।

औषधि पक्ष का अर्थ है-हे **जातवेदः[1] अग्ने**=उत्पन्न हुए प्रत्येक मनुष्यों के द्वारा ज्ञात, गृहीत कमल, तुलसी आदि रूप तेजस्वी औषधियों ! तुम्हारी रसादि रूप, **समिधाः**=शक्तियाँ, **पिशाचजम्भनीः**=रोगों को नष्ट करने वाली हैं। हे जीव ! तू उन औषधियाँ का सेवन कर और इन रोग रूप पिशाच को दूर कर दे।

इस प्रकार मन्त्र में कहीं पर भी हिंस्त्र पशुओं के वशीकरण की गन्ध नहीं है, आक्षेपक का व्यर्थ का अपलाप है।

रुद्रो ग्रीवा., अथर्व. ६/३२/२ यह मन्त्र अथर्ववेद के षष्ठ काण्ड के ३२ वें सूक्त का मन्त्र है। जिसमें आक्षेपक हिंस्त्र पशुओं के वशीकरण का गुर देख रहे हैं तथा मन्त्र में आये रुद्र शब्द को देखकर व्यक्ति विशेष मानते हुए **रुद्र को** तान्त्रिक **जादू कर** कह रहे है जो सत्य का अपलाप मात्र है।

मन्त्रस्थ रुद्र[2] शब्द वायु, प्राण, अपान आदि ११ प्राणों, ईश्वर, राजा, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थों का वाचक है। मन्त्र में स्वास्थ्य प्राप्ति की प्रार्थना है। मन्त्र का अर्थ है-**रुद्रः**=ईश्वर, अग्नि, वायु आदि तुम सब, **पिशाचाः**=मांसभक्षकों की ग्रीवा को नष्ट कर दो और हे **यातुधानाः**=गति आदि को नष्ट करने वाले, यातना देने वाले कृमियों ! तुम्हारी शक्तियों को भी रुद्र शक्ति नष्ट कर दे। अन्यच्च तुम्हारी पसलियों को, **वीरुत्[3]**=बहुत शक्तियों वाली औषधियाँ तुम्हें, **ममे**=मृत्यु के साथ जोड़ देवे।

इस प्रकार इस मन्त्र में हिंस्त्र पशुओं के वशीकरण एवं तान्त्रिक रुद्र का वर्णन नहीं है, अपितु **पिशाचाः यातुधानाः**=रोगों, कृमियों, घातकों से बचने के चिकित्सा विशेष निर्देश हैं। रुद्र उस सामर्थ्य का नाम जो उत्पीड़कों को विनष्ट करता है उस रुद्र सामर्थ्य से युक्त ईश्वर, अग्नि आदि अनेक

---

१. *या वा अग्नेर्जातवौदास्तनुंस्त्येष प्रजा हिनस्त्यग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानः।* काठ. सं. ६/७॥

२. *जातानि चैनं विदुः।* निरु. ७/१०/१९

३. *रुद्रो रौतीति सतः, रोरुयमाणो द्रवतीति वा, रोदमतेर्वा।* निरु. १०/१/६

पदार्थ हैं।

आरादरातिम्., अथर्व. ८/२/१२ यह मन्त्र अथर्ववेद के अष्टम मण्डल के द्वितीय सूक्त का है। **असुं त आयुः.**, अथर्व. ८/२/१, **आयुः प्रतरं ते दधामि**, अथर्व. ८/२/२ आदि इन सूक्तस्थ मन्त्रों में आये आयु शब्द से स्पष्ट है कि इस सूक्त में आयु संवर्द्धन के जो-जो ईश्वर, वायु, अग्नि, सूर्य आदि पदार्थ व औषधि आदि हैं, उनके द्वारा कैसे लाभ लिया जाये और किनसे लाभ होता है, इसका सूक्त में वर्णन है। किन्तु मन्त्र में आये **पिशाचान्** शब्द का वाच्यार्थ व्यक्ति विशेष शरीरधारी मानकर आक्षेप्ता मन्त्र को वाममार्गियों की विधि का ज्ञापक मान रहे हैं,जो भ्रान्ति मात्र है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् आयु बाधक जो, **अरातिम्**=कृपणता, अदानवृत्ति, रोग, व **निर्ऋतिम्**=कष्ट प्राप्ति है, उसको दूर से ही हम भगाते हैं। **ग्राहिम्**=अङ्गों को पकड़ने वाले वात रोग, रुमाटिज्म आर्थ्र ईटिस सदृश रोगों को, **क्रव्यादः पिशाचान्**=मांस को खाने, सुखाने वाले रोगकृमियों को दूर करते हैं। जो दुःस्थिति राक्षत्व, को, **तम इव**=जैसे अन्धकार को दूर किया जाता है, वैसे ईश्वर, अग्नि, औषधि आदि के द्वारा हम दूर करते हैं।

मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि **पिशाच**, रक्षस शब्द योनि विशेष वाले मानव शरीरधारी अर्थ के वाचक नहीं हैं, अपितु दोषादि जनक रोग, कृमि, दुःखोत्पादक मनुष्य आदि के वाचक हैं। तान्त्रिक विधियों का संकेतक यह मन्त्र नहीं है।

ये गन्धर्वाः., अथर्व. १२/१/५० मन्त्र अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के प्रथम सूक्त का है। सम्पूर्ण सूक्त का देवता **भूमि** है। भूमि की समृद्धि, उर्वरकता, भूमि के कार्य, भूमि की उपयोगिता आदि इस सूक्त में वर्णित है।

मन्त्र में **गन्धर्वाः, पिशाचान्, रक्षांसि** शब्द देखकर आक्षेपक को योनि विशेष वाले कल्पित गन्धर्व, पिशाच आदि की कल्पना प्रत्यक्ष हो गई, और यह पंक्ति लिख मारी कि 'गन्धर्व, अप्सराएँ, राक्षस, पिशाच आदि मानव शरीरधारी व्यक्ति विशेष हैं, किन्तु साधारण मानव नहीं हैं। **पृ. ३७**

आक्षेपक का यह कथन सत्य नहीं है, कोरी कल्पना ही कल्पना है, जो निराधार है।

गन्धर्व, अप्सरस, रक्षस=राक्षस, पिशाच आदि शब्द यौगिक हैं। यौगिक होने से ये अनेक अर्थवाले हैं, जिनकी प्रकरणानुसार संगति होती है। दुःख, कष्ट, रोग, घात प्रतिघात आदि पीड़ा, संग्राम के प्रकरण में रोगजन्य कृमि, कीटाणु, घातक उपाय, घात करने वाले कोई भी जन साधारण, मनुष्य पशु आदि के ही गन्धर्व, पिशाच आदि शब्द वाचक होते हैं, व्यक्ति विशेष के नहीं। इन रक्षः, पिशाच आदि शब्दों का निर्वधन, व्युत्पत्ति, अर्थ आदि पृष्ठ ७,८,९ में द्रष्टव्य है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् जो **गन्धर्वाः**[१]=गन्ध, इतर फुलेल की ओर मडराने वाले हैं, **अप्सरसः**[२]=रूप की ओर आकृष्ट होने वाले हैं और जो **अरायाः**=अदान वृत्ति वाले कञ्जूस हैं, **किमीदिनः**[३]=अब क्या अब क्या, यह क्या, यह क्या ? अपनी सिद्धि के लिए इन प्रश्नों में घूमते रहते हैं, **पिशाचान्**[४]=मांस भक्षकों और सब रोग कृमियों को, स्वार्थवृत्ति वालों को हे भूमि ! हम से दूर कर।

मन्त्र में **अरायाः** शब्द आया है जो अदानवृत्ति का वाचक है और उन्नति का बाधक है। वैसे ही **अरायाः** शब्द के साथ आये हुए **गन्धर्वाः अप्सरसः, पिशाचाः** शब्द भी उन रोग कीटाणु आदि घातकों के ही वाचक हैं, जो पुष्टि, समृद्धि, शक्ति को नष्ट करते हैं। इस प्रकार ये गन्धर्व आदि शब्द व्यक्ति विशेष के वाचक नहीं है।

· **वनस्पतिः**., अथर्व. १२/३/१५, **अग्नि रक्षः**. अथर्व. १२/३/४३ ये दोनों मन्त्र १२ वें काण्ड के तृतीय सूक्त के मन्त्र हैं। इस सूक्त में **स्वर्ग**=ज्ञान, प्रकाश, धन, सम्पत्ति, आरोग्य किन-किन पदार्थों से, किन-किन साधनों से अर्जित होते हैं व किन प्रयत्नों से अर्जित किये जाते हैं ? स्वर्ग

---

१. *गन्धर्व शब्द का निर्वचन, व्युत्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ८ में द्रष्टव्य है।*
२. *अप्सरा शब्द का निर्वचन, व्युत्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ८ में द्रष्टव्य है।*
३. *किमीदिनः शब्द का निर्वचन, व्युत्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ८ में द्रष्टव्य है।*
४. *पिशाच शब्द का निर्वचन, व्युत्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ८ में द्रष्टव्य है।*

किस स्वरूप का नाम हैं ? आदि की विवेचना की गई है। इस सूक्त में **स्वर्ग** शब्द को देखकर उपेन्द्र राव ईसाई, मुसलमान व पुराणों के ऐयाशी स्वर्ग के आनन्द में मग्न हो गये और लिख दिया-

''पौराणिक स्वर्ग की कल्पना के लिये अथर्ववेद में बहुत कुछ मसला उपलब्ध कराता है। पृ. ३७ **आक्षेपक का यह लिखना सत्य समन्वित नहीं है**। **वेद** में कहीं पर भी **स्वर्ग का बीभत्स वर्णन नहीं** है। जैसे पुराण, कुरान आदि में स्वर्ग की कल्पना में लिखा है कि स्वर्ग में हूरें होती हैं, वेश्याओं के नाच गाने होते हैं आदि-आदि। वेदोक्त स्वर्ग वैसा नहीं है। वेदोक्त स्वर्ग तो परिशुद्ध स्वर्ग है, निःस्वार्थ होकर दूसरों को जीने का अवसर देने को स्वर्ग कहा गया है। रोगादि की निवृत्ति भी स्वर्ग कहा गया है। प्रकरणगत मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **वनस्पतिः**=औषधियों, वनस्पतियों के फल फूल, रसादि दिव्य गुण हमें प्राप्त हों। वनस्पतियों का यह आहार भक्षण, रक्षः, **पिशाचान्**= रोगोत्पादक, मांसभक्षक रोगों, दोषों से, **अपबाधमानः**=रक्षा करने वाला हो, व औषधियों का भोजन ऊपर उठाने वाला हो तथा वाणी को प्रशंसा को प्रदान करने वाला हो, उस वाणी के सहारे, माध्यम से सभी लोकों को जीत लेवें, सभी लोकों के ऐश्वर्य से युक्त हो जावें।

मन्त्र का तात्पर्य है-**वनस्पतिः**=औषधियों का आहार **रक्षः पिशाच** आदि की वृत्तियों से व दुःखों से दूर रखता है एवं दिव्य गुण युक्त बनाता है, परमात्मा की भक्ति के योग्य करता है तथा सम्पूर्ण विजयों में यश की प्राप्ति कराता है।

आक्षिप्त सूक्त के **अग्नी रक्षः**. ४३ वें मन्त्र का अर्थ है-**अग्निः**=ईश्वर, राजा, ज्ञान व भौतिक अग्नि, औषधि आदि, दिव्यता विरोधी, **रक्षः**=राक्षसवृत्ति को तपा दें, नष्ट कर दें, जिससे कि मांसखोर, पिशाचवृत्ति वाले रोग, कृमि, कीट, मनुष्यादि शरीर को, राष्ट्र को ग्रहण न करें, अपना अड्डा न जमाये। इन राक्षसी वृत्तियों को हम अपने समीप से दूर से ही भगाते हैं, रोकते हैं, हमारे शरीर को, राष्ट्र को, **आदित्याः अङ्गिरस**=जितेन्द्रिय ज्ञानी गति शील जन,

सचन्ताम्=प्राप्त हों।

इस प्रकार सिद्ध है कि आक्षेपक श्री राव का **'अथर्ववेदीय पिशाच पुराण' आक्षेप** का बवण्डर व्यर्थ, निरर्थक रस्सा कसी है। पिशाच, अप्सरा आदि मान शरीरधारी व्यक्ति विशेष नहीं हैं, अपितु दुःख, कष्ट, सन्ताप देने वाले जो-जो जड़ चेतन हैं, वे-वे पिशाच आदि के वाचक हैं, जिनकी यथा प्रकरण संगति करनी चाहिये।

आक्षेपक श्री राव ने अपने पिशाच पुराण की समाप्ति में 'अथर्वा (ने).... फालतू दुष्ट मन्त्रों की रचना करके इस वेद को ६००० मन्त्रों वाला मोटा वेद बना दिया। उधर ऋग्वेद कालीन ऋषियों ने भी तो सूर्य, मेघ, वर्षा से सम्बन्धित सामान्य विज्ञान को बतलाने के लिए व्यर्थ में ही सहस्त्रों मन्त्रों से देवताओं की स्तुति करके ऋग्वेद को १०००० मन्त्रों वाला महाभारत बना दिया था। पृ. ३७ आदि लेखन किया है, जो अलीक है, व्यर्थ है।

अलीक क्यों है ? क्योंकि चारों वेदों के ज्ञान, कर्म उपासना और विज्ञान अपने-अपने प्रमुख विषय हैं। उन विषयों के प्रतिपादन के लिए जितने मन्त्रों की आवश्यकता थी, उस विषय को व्यक्त करने के हेतु से उतने-उतने मन्त्र ईश्वर द्वारा प्रदत्त हैं। उस आवश्यक मन्त्र समुदाय को महाभारत बना दिया ! या ऊल जलूल मन्त्रों की रचना करके भर दिया। ऋङ्महाभारत में इन्द्र, वृत्र के मेघ काल्पनिक युद्ध का कवितामय वर्णन है आदि शब्दोपाधि देना मूढता के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

महर्षि दयानन्द ने वेदमन्त्र विषयक इस मूढता को ध्वस्त करने के लिए चारों वेदों के विषय विज्ञान का निर्देश **ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका** के प्रश्नोत्तर विषय में किया है। ऋग्वेद विषय प्रतिपादक वाक्य है-

ऋग्वेदे सर्वेषां पदार्थानां गुणप्रकाशः कृतोऽस्ति। ....

न यावद् गुणगुणिनो साक्षाद् ज्ञानं भवति, नैव तावत् संस्कारः प्रीतिश्च, न चाभ्यां विना प्रवृत्तिर्भवति, तया विना सुखभावश्चेति। एतद्विद्याविधायकत्वादृग्वेदः प्रथमं परिगणितुं योग्योऽस्ति।

ऋ. भा.भू. प्रश्नो. पृ. ३७४

अर्थात् ऋग्वेद में सभी पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया गया है।

क्योंकि जब तक गुण गुणी का साक्षात् ज्ञान नहीं होता, तब तक उन पदार्थों के प्रति लगाव, उन पदार्थों को सीखने का प्रयत्न और प्रीति नहीं होती और न गुण गुणी के ज्ञान के बिना उस कर्म को करने की प्रवृत्ति होती है। जिस प्रवृत्ति के बिना सुख का अभाव ही होता है, सुख की उपलब्धि नहीं होती। इस प्रकार इस पदार्थ विद्या का विधायक होने से ऋग्वेद की गणना प्रथम ही की गई ।

यजुर्वेद का विषय निर्देशक वाक्य है-

तथा यजुर्वेदे विदितगुणानां पदार्थानां सकाशात् क्रिययानेकविद्योपकारग्रहणाय विधानं कृतमस्ति। ....

एवं च यथापदार्थगुणज्ञानान्तरं क्रिययोपकारेण सर्वजगद्धितसंपादनं कार्यं भवति। यजुर्वेद एतद्विद्याप्रतिपादकत्वाद् द्वितीयः परिगणितोऽस्तीति बोध्यम्। ऋ.भा.भू. प्रश्नो. पृ. ३७४, ३७५।

अर्थात् तथा यजुर्वेद में गुण, कर्म, स्वभाव रूप से परिज्ञात पदार्थों के सामर्थ्य से अनेक क्रियाओं के द्वारा, अनेक विद्याओं के ग्रहण से उपकार के लिए क्रियाकाण्ड का विधान किया है। और जो पदार्थ जिस गुण वाला है उस गुण ज्ञान के अनन्तर क्रिया के करने से सारे जगत् का हित सम्पादन का कार्य होता है। यजुर्वेद में ऐसी विद्या का प्रतिपादन होने से द्वितीय संख्या के रूप में यजुर्वेद का परिगणन होता है।

सामवेद का विषय निर्देशक वाक्य है-

तथा सामवेदे ज्ञानक्रियाविद्ययोर्दीर्घविचारेण फलावधिपर्यन्तं विद्याविचारः। तथा ज्ञानकर्मकाण्डयोरूपासनायाश्च किमत्युन्नतिर्भवितुमर्हति, किञ्चैतेषां फलं भवति। सामवेदे एतद् विधायकत्वात् तृतीयो गण्यत इति। ऋ.भा.भू.प्रश्नो.पृ. ३७४, ३७५।

अर्थात् सामवेद में ज्ञान, क्रिया, विद्या के दीर्घ विचार के द्वारा जो फल प्राप्ति होती है, उस विद्या का विचार किया गया है।

और ज्ञान, कर्म, उपासना की कितनी उन्नति, वृद्धि हो सकती है ? इनका फल कहाँ तक हो सकता है ? सामवेद में इस वृद्धि और फल रूपी विद्या का विधान होने से सामवेद तृतीय गिना जाता है।

अथर्ववेद का विषय प्रतिपादक वाक्य है-

एवमथर्ववेदेऽपि त्रयाणां वेदानां मध्ये यो विद्याफलविचारो विहितोऽस्ति तस्य पूर्तिकरणेन रक्षोन्नती विहिते स्तः। एवमेवाथर्ववेदस्त्रयान्तर्गतविद्यानां परिशेषरक्षणविधायकत्वाच्चतुर्थः परिगण्यत इति। ऋ.भा.भू.प्रश्नो.पृ. ३७४,३७५।

अर्थात् अथर्ववेद में भी तीनों वेदों के अन्दर जो विद्या और विद्या के फल का विचार किया गया है, उनकी पूर्ति व संशय निवृत्ति करके रक्षा और उन्नति विधान किये हैं।

इस प्रकार अथर्ववेद तीनों वेदों के अन्तर्गत आनेवाली विद्याओं की पूर्त्ति तथा रक्षण का विधायक होने से अथर्ववेद चतुर्थ संख्या के रूप में गिना जाता है।

महर्षि दयानन्द के **चारों वेदों के विषय परिज्ञान कारक इन वाक्यों से स्पष्ट है** कि वेदों के विषय **ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान्** का ज्ञान बृहत् व गूढ है। उस गूढता के परिज्ञान हेतु बहुल मन्त्र समुदाय भी आवश्यक हैं। विषय प्रतिपादक बृहत् मन्त्र समायोजना को महाभारत या भरमार कह कर हँसी ठट्ठा करना स्वतः की ही हँसी करना है, वेदज्ञान की नहीं।

ऋग्वेद में **इन्द्र वृत्र**=सूर्य, विद्युत् व मेघ के संघर्षण से वृष्टिजल उपलब्ध होता है, इस विज्ञान का वर्णन है। ऋग्वेद का यह वृष्टि विज्ञान प्राणी मात्र को परिज्ञात है। उसको काल्पनिक युद्ध बताना, अपनी प्रस्तर बुद्धि को उद्घाटित करना है। मेघ वर्षा अनादि काल से ही चले आ रहे हैं और उस अनादि कालता के कार्य को जीव भी अनादि काल से भली भाँति समझता आ रहा है। आक्षेपक के इस घृणित अपलाप से वृष्टि का होना काल्पनिक अपलाप नहीं बन सकती। इस प्रकार यह हुई उपेन्द्र राव के पिशाच पुराण की गाथा की पूर्णता।

वेदों में प्रवेश-समग्र कृत्या प्रपञ्च, की समीक्षा

वेदों में **कृत्या**[1] शब्द अनेक विभक्तियों तथा **कृत्, कृतः** आदि,

1. *वेदों में आये कृत्या शब्द के विभिन्न रूपों के उदाहरणहक् शब्द हैं - कृत्या, कृत्याः, कृत्यभिः, कृत्याम्, कृत्ये। कृत्याकृत्, कृत्याकृतः, कृत्याकृतम्, कृत्याकृता, कृत्याकृते। कृत्यादूषणः, कृत्यादूषणम्, कृत्यादूषणीः, कृत्यादूषिः।*

दूषणम्, दूषणीः आदि शब्दों के सथ समस्त रूपों में लगभग ८७ बार आया है। जिसमें अथर्ववेद में **८३** बार, ऋग्वेद में **२** बार, एवं यजुर्वेद में २ स्थानों पर समाख्यात है।

कृत्या शब्द के सम्बन्ध में सामान्यतया लोगों में एक भ्रम समाविष्ट है जिसका नाम सुनते ही भयाक्रान्त हो जाते हैं। जन साधारण की भाषा में कृत्या वह कर्म है, जो स्त्रियों, नीच पुरुषों, राजाओं, ब्राह्मणों, कापालिकों, डाकिनी, शाकिनी द्वारा अपनी स्वार्थिक अभीष्ट सिद्धि के लिए घातक, मारण प्रयोग किये जाते हैं। जन साधारण इन कृत्या प्रयोगों को **मन्त्र=जादू टोना** एवं **मूठ** नाम देता है व समझता है। कृत्या प्रयोगों के ये जादू टोना आदि नाम तान्त्रिक लोगों ने फैलाये। तान्त्रिकों के अनुसार घातक, मारण प्रयोगों का कृत्या नाम इसलिए है, क्योंकि घातक प्रयोग जिस पर किया जाता है उस व्यक्ति की मिट्टी की मूर्त्ति बनाकर, अथवा कागज या कपड़े पर चित्र बनाकर किया जाता है। इतना ही नहीं तान्त्रिक इस कृत्या कर्म को जिसे पीड़ित करना हो उसके बालों, वस्त्रों, खान पान की वस्तुओं, अन्न, खेत, गौ आदि पशुओं, मांस आदि को भी माध्यम बनाते हैं। तान्त्रिकों द्वारा चलाये गये इन जादू टोना के घातक प्रयोगों से जन साधारण बहुत भयभीत रहता है।

तान्त्रिकों द्वारा परिभाषित कृत्या प्रयोगों से उपेन्द्र राव भी खूब भयभीत व आर्द्रचित्त हुये। **उस आर्द्रचित्तता में वे सत्यासत्य का विवेक भी भूल गये और तान्त्रिकों के कृत्या**=जादू टोना का मूल वेदों को ठहरा दिया।

उपर्युक्त शीर्षक के माध्यम से श्री राव ने वाममार्गियों को सुरक्षित करते हुये ईश्वरीय ज्ञान वेदों पर निशाना ताना है। अथर्ववेद में चूँकि कृत्या शब्द का प्रयोग बाहुल्य है, अतः अथर्ववेद को कटघरे में स्थापित करते हुए राव ने लिखा-

'जादू टोना का मूल वा प्रेरक अथर्ववेदीय कृत्या प्रयोग एंव कृत्या परिहरण हैं। .... इस दुष्टता के विस्तार का प्रेरक एवं प्रपञ्चकर्ता धर्ता अथर्ववेद ही है।' पृ. ३७

अथर्ववेद पर तान्त्रिक कृत्या कर्म का सम्पूर्ण दोष मढकर भी राव को सन्तोष नहीं हुआ। ऋग्वेद, यजुर्वेद को भी धर दबोचा और लिखा-

'कृत्या का उपद्रव ऋग्वेद काल से भी पहले विद्यमान था। यजुर्वेद काल में यज्ञ को बाधा पहुँचाने वाले अथवा यज्ञ का विध्वंस करने वाले राक्षस लोग रहते ही थे। कृत्या उपाधि वाली राक्षसी स्त्री भी यह काम करती थी। आदि... पृ. ३८।

उपेन्द्र राव द्वारा वेदों पर किया गया **कृत्या** विषयक आरोप बिना सिर पैर का है, निरर्थक है। क्योंकि तान्त्रिक जादू टोना का प्रलाप तो कौशिक, वैतान आदि सूत्रकारों व सायणाचार्य, मैक्समूलर, मैकडालन आदि भाष्यकारों ने किया है, ईश्वरीय ज्ञान वेदों ने नहीं। यद्यपि यह सत्य है कि वेदों में **कृत्या** शब्द बहुत बार प्रयुक्त हुआ है, तथापि वेदों का **कृत्या** शब्द तान्त्रिक जादू टोना की क्रियाओं को अभिव्यक्त करता है, ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है।

कृत्या का अर्थ

कृत्या[1] शब्द का अर्थ केवल मारना, काटना ही नहीं है, अपितु **कृत्या** शब्द के अनेकों अर्थ हैं। **कृत्या** शब्द की अनेकार्थता के प्रतिपादक कृत्या शब्द के निर्वचन हैं-

कुर्वन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो करते हैं, जिसके द्वारा करते हैं, जिस कर्म, क्रिया को करते हैं, वे सब **कृत्या** कहे जाते हैं।

कृण्वन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो हिंसा करते हैं, काटने वाले हैं, जिनके द्वारा काटते हैं एवं जिसको काटते हैं, वे सब **कृत्या** हैं।

कृत्या शब्द के इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि जिस किसी भी कर्म को करने वाले, जिस किसी भी कर्म को करने के साधन तथा जो कोई भी किये जाते हुए कर्म हैं, वे सब **कृत्या** संज्ञक होते हैं। हिंसा करने वाले, हिंसा के

---

१. (i) ***कृत्या शब्द की निष्पत्ति अर्थ विशेष प्रतिसरो मणिः प्रकरण के पृ. ६७ पर द्रष्टव्य है।***

(ii) ***कृत्या शब्द के शब्द, निर्वचल लेखिका की विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ पर द्रष्टव्य है।***

साधन, हिंसा कर्म करने के प्रयत्न आदि की **कृत्या** संज्ञा होती है। एवं काटने वाले, काटने क्रिया के साधन, काटने कर्म का प्रयत्न आदि **कृत्या** शब्द से कहे जाते हैं।

तात्पर्य हुआ **कृत्या** शब्द कर्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि अर्थों का वाचक है। **कृत्या** शब्द के इन शब्दार्थों का प्रकरण के अनुसार सम्बन्ध होता है। जब रोग, दुष्ट शत्रु, कृमि आदि पीड़ादायक पदार्थों का प्रसंग होता है, वहाँ **कृत्या** शब्द का हिंसन, कर्तन अर्थ संगत होता है। हिंसन, कर्तन कर्ता ईश्वर, वीर्य, औषधि, शस्त्र आदि होते हैं। जब रोग, शत्रु आदि पीड़ादायक प्रकरण नहीं होता, वहाँ **कृत्या** शब्द का अर्थ परोपकार, शिक्षा आदि कर्मों व तत्तत् कर्मों के साधनों का संबन्ध होता है। कर्म करनेवाले ईश्वर, राजा, परोपकारी आदि जन होते हैं।

इस प्रकार वेदों में आया **कृत्या** शब्द तान्त्रिक जादू टोना, डाकिनी शाकिनी आदि का अभिद्योतक नहीं है, न उनका वेदों में प्रतिपादन है।

वेदों में प्रवेश ! क्या बढिया वदतोव्याघात पूर्ण राव का शीर्षक है ! इससे पूर्व भी तो ३७ पृष्ठों में वेदमन्त्रों पर ही गाली गलौच वा कीचड़ उछाला है ! यदि अब इन पृष्ठों से वेदों में प्रवेश है, तब तो श्री राव के इस शीर्षक से पूर्व के निरर्थक आरोप अनायास ही निरर्थक हो गये। शीर्षक लेखक को साधुवाद !

सद्यो-विवाहितवधू पर प्रयोग, की समीक्षा

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते॥

ऋ. १०/८५/२८, अथर्व. १४/१/२६

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम्॥

ऋ. १०/८५/२९, अथर्व. १४/१/२५

नील लोहितम्. ऋ. १०/८५/२८, **परा देहि.** ऋ. १०/८५/२९ ऋग्वेद के इन मन्त्रों में श्री राव तान्त्रिकों द्वारा स्त्री पर किया जानेवाला **कृत्या**=जादू टोना देख रहे हैं, क्योंकि राव के चाचू सायणाचार्य ने '**कृत्या**

अभिचाराभिमानिनी देवता' ऐसा जो लिखा है।

ऋग्वेद के इन मन्त्रों में आये **कृत्या** शब्दों का अर्थ तान्त्रिकों की मारक, घातक प्रयोग नहीं है, अपितु क्रिया अर्थ के वाचक शब्द हैं। कृत्या शब्द जैसे **कृञ् हिंसायाम्+क्यप्=कृत्या**[1], **कृती छेदने+क्यप्=कृत्या**[2] धातुओं से निष्पन्न होता है वैसे ही **डुकृञ् करणे+क्यप=कृत्या**[3], शब्द निष्पन्न होता है, जिसकी प्रकरणानुसार संगति की जाती है।

ऋग्वेद के आक्षिप्त ये मन्त्र विवाह, गृहस्थ धर्म आदि कर्तव्यों के संज्ञापक दशम मण्डल के ८५ वें सूक्त हैं। विवाह बन्धन में बँधने वाले वर वधू किस अवस्था में बँधें एवं सद्यः विवाहित पति, सद्यः विवाहित पत्नी किस अवस्था में परस्पर अनुरक्त होवे?आदि इन मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय है।

नीललोहितम् ऋ. १०/८५/२८ मन्त्र का अर्थ है जब कन्या में नीले रंग मिश्रित **रक्त**=रजः आर्तव उत्पन्न होता है, तदनन्तर **आसक्तिः**= परस्पर वर वधू की अनुरक्ति, **कृत्या**=क्रिया, **व्याज्यते**= प्रकट होती है व प्रकट होना उचित है। ऐसा करने से इस वधू के, **ज्ञाति**=पुत्रादि सन्ततियों की वृद्धि होती है और पति, **बन्धेषु**=सन्तान पालन आदि कर्तव्यों में धनार्जन के बन्धनों में बँध जाता है।

इस मन्त्र में **कृत्या** शब्द (**डुकृञ् करणे**) क्रिया का अर्थ वाला है। अन्यच्च यह मन्त्र कन्या के रजस्वला होने के अनन्तर ही विवाह होवे, उन्हीं तिथियों में होवे, इन सब निर्देशों का अभिद्योतक है, कृत्या अभिचार का नहीं।

परा देहि. ऋ.१०/८५/२९ मन्त्र का अर्थ है जब कन्या **शामुल्यम्**[4]= शरीरस्थ मल को दूर कर विद्वानों को धन देकर पवित्र हो जाती है, तब **एषा**=यह कन्या, **कृत्या**=इस पूर्वोक्त कर्म से, **पद्वती**=फलवती, गर्भवती

---

१. *विभाषा कृवृषोः, पा. ३/१/१२०, कृञः श च,पा. ३/३/१०० इति क्प् प्रत्ययः।*
२. *ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः, पा. ३/१/११० इति क्यप् प्रत्ययः।*
३. *कृञः रा च, पा. ३/३/१०० इति क्यय प्रत्ययः।*
४. *शाम्यतीति शमत्वः, अशुद्धं वा, शकिशम्योर्नित्, उणा. १/११२ इति कल प्रत्ययः, शामलमेव शामुल्यम्।*

(लोक में पैर भारी होना) होने योग्य, **भूत्वी भूत्वा वा**=होकर, **जाया**=सन्तान उत्पन्न करने वाले रूप में, **पतिम्**=पति को, **आविशते**=प्राप्त होती है।

मन्त्र में आया **कृत्या** शब्द क्रिया अर्थ का वाचक है, तान्त्रिक अभिचार कर्म का नहीं। मन्त्र की शिक्षा है सद्यो विवाहिता वधू रजस्वला क्रिया से परिशुद्ध होने पर ही सन्तानोत्पत्ति के योग्य होती है। इस क्रिया के अनन्तर ही पति सन्तानोत्पत्ति कर्म करे।

इस प्रकार स्पष्ट है ऋग्वेद में तान्त्रिक क्रिया अभिचार का वर्णन नहीं है।

यज्ञध्वंसिनी, की समीक्षा

रक्षोहणं वलगहनं.......यं में सजातो
यमसजातो निचखानोत्कृत्यांकिरामि॥ यजु. ५/२३
अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यं सुव॥ यजु. ३५/११
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे॥
यजुःउत्तरार्ध साम्य. अथर्व. ४/१७/६, ४/१८/८, ७/६५/३॥

रक्षोहणम., यजु. ५/२३, **अपाघमप.**, यजु. ३५/११ ये दोनों मन्त्र यजुर्वेद के हैं। इन मन्त्रों में **वलगहनम्, निचखान, कृत्याम्** शब्दों को देखकर आक्षेपक राव तान्त्रिक जादू टोना के अभिचार कर्म में मन्त्रों की संगति लगा बैठे और भयाकुल होकर मन्त्रों को **'यज्ञध्वंसिनी'** कह डाला।

यद्यपि मन्त्रों में आये हुए **वलगहनम्, कृत्याम्**, शब्दों के अर्थ बल, शक्ति का नाश करना,काटना (**गाहू विलोडने, कृञ् हिंसायाम्, कृती छेदने**) हैं, तथापि इन हनन क्रियाओं का सम्बन्ध तान्त्रिक स्वार्थ सिद्धि के मारने[1],

---

१. तांत्रिक ग्रन्थों में मारण, विद्वेषण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन, वशीकरण ये ६ अभिचार कर्म बताये हैं। यथा = अभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते। सक्रूरे क्रूरवर्गस्थे चन्द्रे वलिमि शोधने॥ विष्टियोगे च कर्तव्योऽभिचारोऽप्य दिनैधने। विषाग्निक्रूरशस्त्राद्यैर्हिंसकप्राणिनां मुदा। योजयेन्मारणे कर्मण्येतान्न पातकी भवेत्। षट्कर्म, प्रदीपिका तन्त्र मारणम् १-२।

ताड़ने, मोहने[1], क्रियाओं से नहीं है। अपितु बल प्राप्ति, वेदी निर्माण सम्बन्धी कर्मों के **खनन**=खोदने आदि अर्थों से सम्बन्ध रखनेवाले **वलगहनम्** आदि शब्द हैं तथा राष्ट्र घातक, शरीर घातक शत्रु, कृमियों के नाश के लिए रासायनिक औषधियों के प्रवेश करने की क्रियाओं के वाचक हैं।

इस प्रकार मन्त्र में आया **वलगहनम्** शब्द राष्ट्रघाती, शरीरघाती शत्रुओं, रोगों आदि को हटाने के, दूरीकरण के कर्म, क्रियाओं का वाचक है। वलगहन क्रिया सामने से मारने या खाना खिलाने की क्रिया नहीं है, अपितु छुपाकर अप्रत्यक्ष रूप से किये जाने वाले कर्म विशेष हैं। राष्ट्रघातक शत्रुओं को मारने के लिये भूमि,वस्त्र मार्गों के अन्दर तथा सुरंग आदि में जो बम, बारुद आदि रख दिये जाते हैं, वह क्रिया **वलगहनम्** कहलाती है। शारीरिक रोग कृमियों के नाश के लिए शल्य, सूचिका आदि द्वारा औषधियों का प्रवेश वलगहनम् क्रिया कहलाती है। एतादृशी क्रियायें आश्चर्यकारी, स्तम्भनकारी होती हैं। **वलगहनम्** क्रियाये छुपाकर की जाने वाली क्रियायें हैं। यथा-

असुरां वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान्यरव नन्तान्बाहुमात्रेऽन्व विन्दन् तस्माद् बाहुमाजाः खायन्त इदमहं तं वलगमुद्वपामि॥ तै. सं. ६/२/११/१।

अर्थात् छोड़कर जाते हुए असुरों ने देवों के प्राणों के निमित्त, प्राणों के नाशार्थ वलगों को नीचे गाड़ा, उन्हें बहुमात्र परिमाण में गड़े हुए ही पाया, अतः बहु मात्र परिमाण में ही गाड़े जाते हैं।

तात्पर्य हुआ **वलगहन**=शत्रु, रोग नाश आदि की आन्तरिक क्रिया है, बाह्य क्रिया नहीं।

रक्षोहणम्., यजु. ५/२३ मन्त्र में वेदी खनन तथा यज्ञ घातक पापादि कर्मों के हनन का वाचक **वलगहनम्** शब्द है। मन्त्र का अर्थ है-पाप रूपी दुष्ट कर्मों के नाशक, बलनाशक शत्रु के नाशक जो यज्ञ वेदी के खनन का कर्म है, जो कर्म मेरा साथी है, मेरा **सजातः** भाई करता है, उसको तू भी कर

१. *ऊर्णनाभश्च षड्बिन्दुं समांशं कृष्णवृश्चिकम्। मस्याङ्गे विक्षिपेच्चूर्णं ससाहात् स्फोटके मूंतिः॥ मोहनम्।*
महिष्याः कृष्ण सर्पस्य रक्ते चूर्णन्तु भावयेत्। कृष्णधुस्तूरफचाङ्गं तद्धूर्या मोहकृन्नृणाम्॥ ऐन्द्रजा. सिद्धनणा. कक्षपुप्तन्ज॥

और जिस कर्म को, **असजातः**=साथ में अनुत्पन्न भाई से अतिरिक्त व्यक्ति भी वेदी खोदता है, घातक शत्रुओं का वध करता है, वैसे मैं भी, **उद् कृत्यान्**=उत्तम क्रियाओं को अथवा उत्तम मर्यादित घातक क्रियाओं को उखाड़ता हूँ।

मन्त्र में **वलगहनम्** अथवा **कृत्याम्** शब्द तान्त्रिकों के अभिचार कर्म के प्रतिपादक नहीं हैं, अपितु राष्ट्र, शरीर आदि के घातकों से रक्षा विशेष के उपायों का प्रतिपादन है।

अपाघमप., यजु. ३५/११ यह मन्त्र यजुर्वेद के ३५ वें अध्याय का है। मन्त्र का देवता **आपः व ओषधिः** है। **आपो वै प्राणाः भेषजम्,** तै.आ. १/२६/५ जल प्राण हैं, भेषज हैं। **अपामार्गैरप मृज्यते।** शत.ब्रा. १३/८/४/४ अर्थात् **अपामार्ग**=राजा व औषधि आदि के द्वारा शत्रु, रोग, कृमि आदि का परिशोधन किया जाता है। एतादृक् वचनों द्वारा, **आपः**=जल, **अपामार्ग**=राजा व जलजीरा, चिरचिटा आदि को शत्रु रोग नाश की उत्तम औषधि बताया है। मन्त्र का अर्थ है-

हे अपामार्ग[1]=राजा व औषधि ! तू हमारे पाप, घात, प्रतिघात एवं रोग आदि को व हम से संदेह युक्त विचारों को दूर कर, **कृत्याम्**=हिंसा प्रवृत्ति को (**कृञ् हिंसायाम्**) दूर कर और **दुःष्वप्न्यम्**=भययुक्त, दुःखयुक्त निद्रा को, कुत्सित विचारयुक्त स्वप्न को दूर कर।

मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि मन्त्र में आया **कृत्याम्** शब्द तान्त्रिक जादू टोना का वाचक नहीं है, अपितु हिंसा वृत्ति तथा हिंसा कर्म का वाचक है।

वेदरचना के पहले ही प्रचलित, की समीक्षा

इस शीर्षक में तथाकथित वेदज्ञ श्री राव ने जो विशिष्ट अनुसन्धान किया है, उस अनुसन्धान का स्पष्टीकरण उनके वाक्य से ही संभव है। वह वाक्य है-'**अथर्ववेद को वेदत्व प्राप्त करने के पहले से ही लोगों में कृत्याप्रयोग जारी था।**' पृ. ३९ आक्षेपक के इस शोध वाक्य से यही स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि प्रलय में ही तान्त्रिकों की हिंसा क्रिया हो रही थी। राव ने अपने शोध की पुष्टि में अथर्ववेद का मन्त्र भी उद्धृत किया है। मन्त्र है-

---

१. अपामार्ग शब्द की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ १३-१५ में द्रष्टव्य है।

कृत्यादूषिरियं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्रण आयूंषि तारिषत् ॥

अथर्व. २/४/६,१९/३४/४

वाह ! क्या उत्तम शोध है ! अथर्व मन्त्र में **कृत्यादूषिः** शब्द देखकर यह अनुमान लगाना कि अथर्ववेद के वेदत्व से पूर्व कृत्याप्रयोग होते थे, यह अनुमान मात्र दुराग्रह जनित अनुसन्धान है।

अथर्ववेद सहित **चारों वेदों का ज्ञान आदि सृष्टि में मिला है** और **एक साथ मिला है**[1] । इसकी अन्तःसाक्षियाँ स्वतः प्रमाणभूत चारों वेदों में ही विद्यमान हैं[2] । उन अन्तःसाक्षियों को 'आतङ्कवादीय-युद्धशिक्षा, की समीक्षा' में व्याख्यात किया जा चुका है[3] । अतः अथर्ववेद के वेदत्व प्राप्त करने से पूर्व कथन एवं पहले से लोगों में कृत्या प्रयोग जारी था, अनुसन्धान निःसार हैं।

कृत्यादूषिरियम्., अथर्व. २/४/६ मन्त्र अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के चुतर्थ सूक्त का है। इस सूक्त का देवता **जङ्गिड़मणिः** है। मणि[4] शब्द का अर्थ है शब्द योग्य, प्रशंसा योग्य पदार्थ व शब्द तथा प्रशंसा योग्य बनाने वाले रस, गोली, वाटिका आदि पदार्थ, कर्ता, क्रिया आदि। जङ्गिड़[5] शब्द ईश्वर, वीर्य, औषधि, वनस्पति, रस, वटिका, अर्जुन, सोमलता आदि का वाचक है।

---

१. एक साथ चतुर्वेदोपलब्धि विषय का विस्तार लेखिका की विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या पुस्तक के १,६,१४,१७,२८,३६,५२,५८,९२ आदि प्रश्नोत्तरों में द्रष्टव्य है।

२. (i) सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमोभूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ऋ. १/१००/४
(ii) अथर्वभ्योऽवनोकाम्। यजु. ३०/१५
(iii) तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ऋ.१०/९०/९, यजु. ३१/७, अथर्व. १९/६/१३

३. वेदों की अन्तःसाक्षियों का व्याख्यान 'आतंकवादीय युद्धशिक्षा की समीक्षा' प्रकरण में पृष्ठ ३९,४० में द्रष्टव्य है।

४. मणि शब्द की विस्तृत व्याख्या व वाचकता पृष्ठ ६२ में द्रष्टव्य है।

५. जङ्गिड शब्द के निर्वचन, अर्थ की विशेष व्याख्या पृष्ठ ८७-८९ में द्रष्टव्य है।

कृत्यादूषिरियम्., अथर्व. २/४/६ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् यह ईश्वर, वीर्य, औषध आदि रूपा जङ्गिड़मणि, **कृत्यादूषिः**=राष्ट्र, शरीर आदि को हिंसित करने वाले (**कृञ् हिंसायाम्**) रोग, शत्रु, अपौष्टिक अवयवों आदि की शक्ति को विकृत करने वाली है, हटाने वाली है (**दुष वैकृत्य**), **अथ उ**=और यह जङ्गिडमणि अदानवृत्ति को दूर करने वाली है। सब रोग आदि घातकों को पराभूत करने वाली है। रोग, कृमि, शत्रु को दूर कर हमारी आयुओं को जङ्गिडमणि प्रवृद्ध करती है।

इस प्रकार इस मन्त्र में किसी भी तान्त्रिक विधि मारण, मोहन का अपलाप नहीं है, यह मन्त्रार्थ से स्पष्ट है।

कृत्या प्रयोगकर्ता को मार डालो !, की समीक्षा

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभि शोचनम्। अथर्व. ४/९/५

आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥ अथर्व. ४/१७/४

इस शीर्षक में आक्षेपक ने अथर्ववेद के जिन मन्त्रों को उद्धृत किया है, अथर्ववेद के उन मन्त्रों में **नैनं प्राप्नोति.**, अथर्व. ४/९/५ मन्त्र को **त्रैककुदाञ्जनम्** की ठगी विद्या के निरर्थक आरोप में व **आमे मांसे.**, अथर्व. ४/१७/४ मन्त्र को हत्या के लिए औषधि वनस्पतियों को उकसाना इस निरर्थक आरोप में उद्धृत कर चुके हैं। अब पुनः उपर्युक्त शीर्षक में कृत्या करने वाले को मार डालने के आरोप में घेर लिया। कितनी बढिया वञ्चना है।

नैनं प्राप्नोति., अथर्व. ४/९/५ मन्त्र का देवता **त्रैककुदाञ्जनम्** है। **त्रैककुत आञ्जन** शब्द जिन ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि पदार्थों का वाचक है, उनका **'त्रैककुदाञ्जनम्[1] की समीक्षा'** में निर्देश हो चुका है। इस मन्त्र चरण का अर्थ है-

अर्थात् हे **आञ्जन्**=ज्ञानी प्रभो ! तुम्हें जो धारण कर लेता है, ध्यान में प्राप्त कर लेता है, **एनम्**=ऐसे व्यक्ति को, **शपथः**=अपशब्द, गाली, क्रोध, आक्रोश (**शप आक्रोशे**) प्राप्त नहीं होता।

---

१. *त्रैककुदाञ्जनम् की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ ५७-६० में द्रष्टव्य है।*

आमे मांसे. अथर्व ४/१७/४ अथर्व मन्त्र का देवता **अपामार्गो वनस्पतिः** है। **अपामार्ग**[1]=ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि पदार्थों का वाचक है, यह 'हत्या के लिए औषधि वनस्पतियों को उकसाना, की समीक्षा' में निर्दिष्ट किया जा चुका है। **आमे मांसे.**,अथर्व.४/१७/४ मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् जिस **कृत्याम्**[2]=हिंसा करने की क्रिया को (**कृञ् हिंसायाम्**) तेरे कच्चे अपक्व शरीर रूपी पात्र में रोग, कृमि आदि करते हैं। **याम्**=जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को रोग कृमि कच्चे मांस में करते हैं, उन **कृत्याकृतः**= हिंसा करने वाले रोग कृमियों को, **तया**=उस (**अपामार्ग त्वया.**, अथर्व. ४/१७/६) षष्ठ मन्त्रोक्त अपामार्ग के द्वारा ईश्वर व वैद्य,**जहि**=दूर ले जाये।

इन मन्त्रों में तान्त्रिक कृत्या करने वालों का वर्णन नहीं है, घातक, नाशक कर्म करने वालों का स्वरूप प्रतिपादन है व ईश्वर औषधि के सामर्थ्य से उन्हे दूर भगाने तथा नष्ट करने का आदेश है। रोग और शत्रुओं को भगाना आरोप की बात नहीं है। यदि आक्षेपक को रोग व शरीरघाती हमला करने वाले प्रिय लगते हैं, तो वे शत्रुओं को पालते रहें। कोई बात नहीं है! व्यर्थ का अपलाप न करें!

कृत्या को लौटाये, अर्थात् टोना!, की समीक्षा

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम्।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम्॥ अथर्व. ४/१८/२
सहस्त्रधामन् विशिरवान् विग्रीवाञ्छाययया त्वम्।
प्रति स्म चकृषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर॥ अथर्व. ४/१८/४
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्। अथर्व. ४/१८/५, १०/१/४
उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम्॥ अथर्व. ४/१९/१
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ अथर्व. ४/२८/६

---

१. अपामार्ग शब्द की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ ९३-९५ में द्रष्टव्य है।
२. (i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११,११२ में द्रष्टव्य है।
(ii) कृत्या शब्द के शब्द, निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

इन मन्त्रों को उद्धृत कर यहाँ इस शीर्षक के मध्य उपेन्द्र राव ने खूब ऊल जलूल बातें लिखी हैं।

उपेन्द्र का मानना है कि यो **देवाः**., अथर्व. ४/१८/२, **सहस्त्रधामन्**. अथर्व. ४/१८/४, **अनयाहम्**., अथर्व. ४/१८/५, १०/१/४ अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के १८,१९,२० सूक्तों के इन मन्त्रों में कृत्या को कृत्या करने वाले पर ही लौटाने का विधान है, **जो कि टोना है !** अर्थात् वह तान्त्रिक क्रिया है। ऊल जलूल कथन में उपेन्द्र राव का यह भी मानना है कि **वेदोक्त देव शब्द का वाच्यार्थ आकाशचारी, मानुष विशेष है, सामान्य मानुष नही।** विद्वांसो हि देवाः इस ब्राह्मण वाक्य में आया देव शब्द सामान्य मनुष्यों में स्थित विद्वान् का वाचक है, मानुष विशेष का नहीं।

इस शीर्षकान्तर्गत उपेन्द्र राव का जो कुछ भी कथन है, वह अपभाषण मात्र है। अथर्ववेद के इन मन्त्रों में टोना, टोटका की कोई चर्चा नहीं है। इन मन्त्रों में टोना, टोटका बताना, राव की स्वयं की कल्पना है। वेदों में आया **देव** शब्द **रूढि**=आकाशचारी मानुष विशेष का वाचक नहीं है, अपितु अनेक अर्थों का वाचक है। जिन जिन पदार्थों में **दान**=देने (**डुदाञ् दाने**), **दीपन**=प्रकाशित होने (दीपी दीप्तौ), **द्योतन**=प्रकाश करने (**द्युत दीप्त**) का सामर्थ्य है, द्युः **स्थान**=सूर्यादि लोक उच्च स्थान वाले पदार्थ, हैं, उन-उन की देव संज्ञा होती हैं[1]।

इस प्रकार इन गुणों वाले ईश्वर व अग्नि, वायु आदि जड़ पदार्थों एवं विद्वान् आदि सब की देव संज्ञा होती है।

मन्त्रों में आया **कृत्या**[2] शब्द तान्त्रिक हिंसा **क्रिया**=टोना का वाचक नहीं है, अपितु कर्म, कर्म साधन, हिंसक घातकों को हटाने के कर्म, प्रयत्न, हिंसा कर्म आदि का वाचक है। अपने को **कृत्या**=हिंसा, मरवाना किसी को अच्छा नहीं लगता। अतः यदि कोई किसी को मारता हो, हिंसित करता हो,

---

१. देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युःस्थानो भवतीति वा। निरु. ७/४/१५।

२. (i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११,११२ में द्रष्टव्य है।

(ii) कृत्या शब्द के शब्द, निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

तब अपनी सुरक्षा के लिए प्रतिक्रिया स्वरूप यदि मारने वाले को मारा जाये, और मारने के साधनों को हत्या करने वाले की ओर फेर दिया जाये, उलट दिया जाये अथवा ईश्वर, राजा, औषधि से हत्यारे के घात को उलटने की प्रार्थना कर ली जाये, तो इस कार्य में जादू टोना नाम किस क्रिया का होगा ? किसी का नहीं। अपनी सुरक्षा करना यदि टोना कहाता है, तब तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि राव तो पिटते ही रहेंगे, जिससे कि वे सुरक्षा रूपी टोने की क्रिया से बचे रहें।

रोग, कृमि, शत्रु आदि की **कृत्या**=हिंसा, घात, मारना, काटना, दुःख, पीड़ा देना आदि क्रियाओं से बचाव, प्रतिकार के दो उपाय हैं-

१. ईश्वर, औषधि, वीर्य, राजा आदि के सामर्थ्य, व्यवस्था आदि द्वारा कृत्या=हिंसा आदि को हटाना।

२. अस्त्र, शस्त्र आदि द्वारा घातकों को नष्ट करना एवं हिंसा के साधनों को पीछे करना, उलट देना।

इन दोनों प्रकारों का यथा प्रकरण विनियोजन होता है।

यो देवाः, अथर्व.४/१८/२ मन्त्र का देवता **अपामार्ग** है। इस मन्त्र में **कृत्या**=हिंसा को दूर व नष्ट करने के लिए, **अपामार्ग**[1]=ईश्वर, राजा, औषधि, वीर्य आदि से प्रार्थना की गई है। मन्त्रार्थ है-

हे ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि देवो ! जो कोई भी, **कृत्यां कृत्वा**=हिंसा के कर्म करके, **अविदुषः**=दूसरे के द्वारा किये जाते हुये हिंसा कर्म को न जानने वाले के गृह को हानि पहुँचाता है, उसका अपहरण करना चाहता है, उस हिंसक का **हिंसक**=मारने वाला कर्म, तं **प्रत्यक्**=उसकी ओर ही, **उपपद्यताम्**=जावे। जैसे दुग्धपायी बछड़ा अपने माँ के प्रति जाता है।

मन्त्र का तात्पर्य है कि घातकों द्वारा मारे जाते हुये असहायक के ईश्वर, औषधि व वीर्य आदि दैविक शक्तियाँ सहायक बन जाती हैं और हिंसा करने वाला स्वतः ही अपने जाल में फँस जाता है। इन ईश्वर आदि देवों का सहायक हो जाना जादू टोना नहीं है। ईश्वर, वीर्य आदि देवों की यह

१. *अपामार्ग शब्द की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ १३-१५ में द्रष्टव्य है।*

सहायता, सुरक्षा वैसे ही होती है, जैसे आँख में कोई तिनका, धूल, कृमि आदि गिरने वाले ही होते हैं, उनके प्रविष्ट होने की जैसे ही संभावना होती है तो पलकें तत्काल अपने आप बन्द हो जाती हैं। यदि ईश्वर, वीर्य आदि देवों द्वारा की गई हिंसित, ताड़ित की सहायता, सुरक्षा जादू टोना है, तब तो आँख की सुरक्षा के लिए पलकों का झपकना भी जादू टोना ही होगा, अतः पलकों के झपकने को सप्रयास रोकना चाहिए, जिससे कि वह जादू टोना न बन जाये। धन्य है ! राव की जादू टोना की कल्पना !

सहस्रधामन्., अथर्व. ४/१८/४ मन्त्र का अर्थ है-'हे **अपामार्ग**= परिशुद्ध करने वाले, **सहस्रधामन्**=अनन्त तेजों वाले ईश्वर, राजा आदि आप हमारे, **कृत्याम्**=हिंसा करने वाले शत्रुओं को, क्षुद्र कृमियों व रोगों, रोगजनकों को विच्छिन्न, **शिखा**=केश, सामर्थ्यवाले विदीर्ण ग्रीवा वाले करके, **शामय**=सुला दो, नष्ट कर दो। इस हिंसा क्रिया को हिंसा करने वाले की ओर ही पुनः प्राप्त कराओ, जैसे प्रिय पत्नी को चाहने वाले पति को पत्नी प्राप्त करायी जाती है।

इस मन्त्र का भी यही तात्पर्य है कि ईश्वर आदि देव ऐसी व्यवस्था व स्थिति उत्पन्न करें, जिससे कि हिंसा करने वाला स्वतः हिंसित हो जाये।

अनयाहम्., अथर्व. ४/१८/५ मन्त्र का अर्थ है-मैं इस, **ओषध्या**= अपामार्ग औषधि से (सूक्त का अपामार्ग देवता है), **कृत्याः**=सभी रोगों, रोगकृमियों, रोगजनित घावों व हिंसा को, **अदूदुषम्**=विकृत करता हूँ (दुष वैकृत्ये), दूर करता हूँ।

इस प्रकृत मन्त्र में 'टोना है' राव ऐसा मान रहे हैं, जबकि मन्त्र में जादू टोना का कोई संकेत नहीं है। यदि रोगों को हटाना टोना है, तब तो राव को दवा नहीं लेनी चाहिये, ये दवा क्यों लेते हैं ? रोग को प्रसन्नता से पालें !

उतो अस्य. अथर्व. ४/१९/१ यह मन्त्र अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के १९ वें सूक्त का है। इस सूक्त का देवता **अपामार्ग है**। अपामार्ग[1] संज्ञा चिरचिटा औषधि, ईश्वर, राजा आदि जो परिशोधन करने वाले जड़ चेतन

---

१. *अपामार्ग शब्द की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ १३-१५ में द्रष्टव्य है।*

पदार्थ हैं, उनकी है। मन्त्र का अर्थ है-

हे अपामार्ग संज्ञक पदार्थों ! तुम सब शत्रुओं के छेदन करने वाले हो, निश्चय से, **जामिकृत्**=जन्मजात रोगों के छेदन करने वाले हो और निश्चय से, **अबन्धुकृत्**=हिंसा, भक्षण करने वालों की, बन्धुत्व रहित शत्रुओं की, **प्रजाम्**=सन्तान, विस्तार को छेदते हो व छेदो, जैसे वर्षा में उत्पन्न तृण, घास आदि को समाप्त किया जाता है।

मन्त्र का तात्पर्य है **अपामार्ग**=औषधि आदि पदार्थ कृत्रिम अकृत्रिम सभी दोषों को दूर करते हैं एवं रोगकृमियों के **प्रजा**=वंशभूत विस्तार को भी समाप्त कर देते हैं। यदि मन्त्रोक्त रोग आदि की, प्रजा=विस्तारं को नष्ट करना अत्यन्त हिंसक व क्रूर आदेश राव को लगता है, तो टी.बी. आदि घातक रोगों को आनन्द से राव धारण करते रहें ! शत्रु पक्ष में शत्रुओं को पालते रहें ! अपना सिर पिटवाते रहे ! कुछ परेशानी नहीं !

यः कृत्याकृत्. अथर्व. ४/२८/६ मन्त्र अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के २८ वें सूक्त का है। जिसका देवता **भवाशर्वौ** है। भवाशर्वौ का अर्थ है- **भव**[१]=उत्पादक (भू सत्तायाम्), **शर्व**[२]=हिंसा, प्रलय, नाश (शृञ् हिंसायाम्) आदि करने वाले पदार्थ। ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि पदार्थ भवाशर्वौ कहे जाते हैं। मन्त्र का अर्थ है-

जो **कृत्याकृत्**=छेदन, भेदन (कृती छेदने) करने वाला शत्रु समुदाय, काम क्रोधादि का समुदाय, रोगकृमियों का समुदाय है, जो **यातुधानाः**=धारण, पोषण की गति को रोकने वाला घातक समुदाय, **मूलकृत्**=वंश वृद्धि को काटने वाला है, उस घातक समुदाय पर, **उग्रौ**=उग्र, **भवाशर्व**=उत्पादक, नाशक शक्ति वाले ईश्वर, वीर्य, राजा आदि, **वज्रं निधत्ताम्**=वज्र फेंके (वज्र गतौ) उस बाधक गति को दूर करें। भवशर्व रूप सामर्थ्यवाले जो आप इस द्विपात् जगत् के शासक हैं, जो चतुष्पात् जगत् के शासक हैं, वे आप हमें

---

१. ***भवति अस्मादिति भवः=जिससे यह जगत् विद्या, ज्ञान, सामर्थ्य आदि उत्पन्न होते हैं, वे ईश्वर, वीर्य, राजा आदि पदार्थ भव कहाते हैं।***

२. ***शृणाति हिनस्ति सर्वम्=जो सब दुःखों, दुर्वृत्तियों, हिंसाओं आदि को नष्ट करते हैं, वे ईश्वर, वीर्य, औषधि आदि पदार्थ कहे जाते हैं।***

पाप से मुक्त करें।

मन्त्र का तात्पर्य है भवाशर्वौ अर्थात् उत्पादक, विनाशक इन दो सामर्थ्यवाले ईश्वर, वीर्य, औषधि, राजा आदि जड़ चेतन पदार्थ, **कृत्याकृत्**= छेदने, भेदने करने वाले, **यातुधानाः**=गति अवरोधकों के विनाशक होते हैं तथा उत्तम सामर्थ्यों, सुखों को देने वाले होते हैं पाप से बचाकर रखते हैं। दुःख तथा पापादि से बचना वाममार्गियों का पैशाचिक वज्र प्रहार नहीं है, अपितु उचित, उपयुक्त निदान है।

इस प्रकार प्रकृत मन्त्रों का कृत्या=हिंसा, घात प्रतिघात आदि का निदान दोषावह व टोना न हैं, न कहा जा सकता है।

कृत्या को ऊपर करो ! की समीक्षा

उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा।
आत्मसदौ मे स्तं मा हिंसिष्टम्॥ अथर्व. ५/९/८

उदायुरुत्., अथर्व. ५/९/८ मन्त्र अथर्व के पञ्चम काण्ड के ९ वें सूक्त का है। जिसका देवता **वास्तोष्पति** है। जिसका अर्थ है गृह की रक्षा करने वाला[1]। गृह की रक्षा करने वाले ईश्वर, गृह दम्पती, राजा, अग्नि आदि अनेकों पदार्थ हैं वे सभी रक्षक पदार्थ वास्तोष्पति कहे जाते हैं, उन रक्षकों का वेदार्थ में यथायोग्य विनियोजन होता है।

मन्त्र में **कृत्याम्** उत् शब्द आये हैं। जिनको देखकर राव वाममार्गियों के बीभत्स, हिंसक कर्मक को खोज बैठे और खोजकर यह सूक्त भानुमती का कुनबा वाला है, इस शैली में मूर्ख मन्त्रों से अथर्ववेद भरा पड़ा है। जादू टोना वाले ही ऐसे जटिल मन्त्रों की रचना करते हैं। कृत्या को ऊपर करो ! आदि आदि प्रलाप इस सूक्त में कर डाला।

कृत्या शब्द मात्र काटने, छेदने अर्थ वाला ही नहीं है, अपितु कृत्या शब्द के विविध अर्थ हैं[2]। प्रसङ्गगत कृत्या शब्द डुकृञ् करणे धातु का रूप

---

१. *वास्तुर्वसते निवासकर्मणः, तस्य पाता पालमिता वा। निरु. १०/२/१७॥*
२. *(i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११,११२ में द्रष्टव्य है।*
(ii) कृत्या शब्द के शब्द, निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

है। जिसका अर्थ है-कर्तव्य, कर्तव्य कर्म, कर्म के साधन, कर्मों का कर्ता, क्रिया आदि। सम्पूर्ण मन्त्र का अर्थ है-

हे **वास्तोष्पतिः**=गृह तथा गृह स्थित जड़ चेतन पदार्थों के रक्षक ईश्वर, औषधि आदि दिव्य शक्तियों ! **आयुः उत्**=मेरी आयु को उत्कृष्ट करो, बल को उन्नत करो, **कृतम्**=पुरुषार्थ को उन्नत करो, **कृत्याम्**=कर्तव्य कर्मों को उन्नत करो, **मनीषा**=बुद्धि एवं **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों को उन्नत व शक्ति सम्पन्न करो। यह द्युलोक आयु देने वाला है, पृथिवी **आयुष्पली**=आयु की रक्षा करने वाली है, **स्वधावन्तौ**=अन्न को देने वाले द्यावापृथिवी मेरे रक्षक होवें, मेरी रक्षा करें, मुझमें स्थित होवें, **मा मा हिंसिष्टम्**=मुझे कभी न हिंसित करें, पीड़ा देवें।

मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि अथर्ववेद के ५ वें काण्ड का ९ वाँ सूक्त जादू टोना का प्रतिपादक नहीं है, कृत्या शब्द कर्म व क्रिया का वाचक है। मन्त्रार्थ से यह भी स्पष्ट है कि सूक्त के मन्त्रों की आनुपूर्वी भानुमती का कुनबा नहीं है, अपितु अभीष्ट निर्देशक है। अतः राव का कुनबा कथन प्रलाप मिथ्या है।

टोना-प्रयोग, की समीक्षा

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि। अथर्व. ५/१४/१
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि। अथर्व. ५/१४/२
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत। अथर्व. ५/१४/३
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य पराणय।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्। अथर्व. ५/१४/४
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः। अथर्व. ५/१४/५

उपेन्द्र राव ने सुपर्णस्त्वा. अथर्व. ५/१४/१, अव जहि. अथर्व. ५/१४/२, कृत्यां कृत्याकृते. अथर्व. ५/१४/३, पुनः कृत्याम्. अथर्व. ५/१४/४, कृत्याः सान्तु. अथर्व. ५/१४/५ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में तान्त्रिक जादू टोना की निरर्थक संगति लगा ली, और अपनी इस अर्थ संगति का पोषक वाक्य लिखा-

इस औषधि को गरुड़पक्षी ने प्राप्त किया था। और सूअर ने अपनी नाक से खोदा था। यही तो जादू-टोने वाले ओझाओं का आविष्कार है। पृ.४१

राव द्वारा इन मन्त्रों में जादू टोना की लगाई गई संगति बिना सिर पैस की है। इस १४ वें सूक्त का देवता वनस्पति है। वन संज्ञा रश्मि[१], जल[२] आदि पदार्थों की है, अतः ये पदार्थ वनस्पति कहे जाते हैं। औषधियाँ[३], प्राण[४], अग्नि[५], पृथिवी[६], सोम[७] आदि पदार्थ भी वनस्पति संज्ञक हैं। जल आदि के रक्षक से ईश्वर[८] एवं वीर्य आदि भी वनस्पति कहे जाते हैं। इस सूक्त में जल, अग्नि, औषधि, ईश्वर आदि पालक किस गुण वाले हैं ? किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होते हैं, आदि का वर्णन है, जादू टोना के कारनामों का वर्णन नहीं है। **टोना प्रयोग** कथन मात्र से कोई भी पदार्थ, कोई भी क्रिया तान्त्रिक टोना नहीं बन जाती।

सुपर्णस्त्वा. अथर्व. ५/१४/१ मन्त्र का अर्थ है-हे **ओषधे**=काम, क्रोधादि, हिंसा आदि दोषों को दहन करनेवाली औषध। तुझे, **सुपर्णः**=पुरुष व गरुड़ पक्षी ने (**पुरुषः सुपर्णः**, शत. ब्रा. ७/४/२/५, **सुपर्ण वयो वै सुपर्णः**, कोषि. ब्रा. १८/४) खोद कर प्राप्त किया है, **सूकरः**=सूअर तुझे नासिका से खोदने वाला होता है। हे औषध ! **तू दीप्सन्तम्**=हमें नष्ट करने (**दम्भ दम्भते**) वालों को नष्ट कर, **कृत्याकृतम्**=छेदन, भेदन करने वाली व्याधियों को **जहि** = दूर ले जा।

मन्त्र का तात्पर्य है भूमिस्थ औषधियों को मनुष्य, पक्षी व सूअर आदि पशु ढूँढ़ लेते हैं। वे औषधियाँ रोग, व्याधि नाशक व शक्ति वर्धक होती हैं।

---

१. *वनमिति रश्मिनाम। निघ. १/५॥*
२. *वनमिति उदकनाम। निघ. १/१२॥*
३. *ओषधयो वै वनस्पतयः। काठ. सं. २६/३॥*
४. *प्राणो वनस्पतिः। कौषी. ब्रा. १२/७॥*
५. *अग्निर्वै वनस्पतिः। कौषी. ब्रा. १०/६॥*
६. *इयं (पृथिवी) हि वनस्पतीनां योनिः। मै. सं. ३/९/२॥*
७. *सोमो वै वनस्पतिः। मै.सं. १/१०/९॥*
८. *वनानां पाता वा पालयिता वा वनस्पतिः। निरु. ८/१/३॥*

पशु आदि को औषधि का ढूँढ़ना जादू टोना या ओझाओं का अविष्कार नहीं है।

लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः । सांख्य. ५।४०॥

अर्थात्, लोक में होने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी के व्यवहारों को जानने वाले को ही वेदार्थ की संगति लग सकती है।

आक्षेपक राव तो कुर्सी पर ही बैठे रहे। औषधि वनस्पति वाले भूमि भाग को देखने का अवसर ही नहीं मिला। सूअर नासिका से जमीन खोदकर औषधियाँ निकालते हैं, सूअर की इस क्रिया को मैंने बचपन में ५, ६ वर्ष की अवस्था में बहुधा देखां। मेरा गांव स्थित गङ्गा के किनारे जिसे हम बूढ़ी गङ्गा कहते थे, वहाँ गङ्गा के तट पर मेरे पूज्य पिताजी **श्रीयुत लाखनसिंहजी प्रधान** मजदूरों से खेती का कार्य कराते थे। सूअर आते, दलदल भूमि को अपनी थूथन से खूब दबोचते और गोलाकार पीले वर्ण के पदार्थ को निकाल कर खा जाते थे। मैंने भी उनकी नकर कर पीला गोलाकार पदार्थ निकालकर खूब खाया[१]। राव इस औषधि अन्वेषण कार्य को टोना कह रहे हैं, धत्त तेरे की। मैंने तो बड़ी आयु में भी दूर्वा आदि खोदते हुए सुअरों को बहुधा देखा।

अव जहि. अथर्व ५/१४/२ मन्त्र का अर्थ है-हे औषधि ! **यातुधानान्**=गति रोधक, पीड़ा दायक पदार्थों को नष्ट कर, **कृत्याकृतम्** = हमारी शक्तियों को छेदन, भेदन करने वाले रोगों को दूर कर।

कृत्याम्. अथर्व ५/१४/३ मन्त्र का अर्थ है - हे देवाः ईश्वर, औषधि आदि दिव्यता प्रदान करने वाले पदार्थ ! **कृत्याम्**=मारने की क्रिया को, **कृत्याकृते** = छेदन करने वाले के लिए ही **निष्कम = निष्क** = सुवर्ण मुद्रा के समान पहनने योग्य गोल खण्ड पहनाओ।

मन्त्र का संदेश है जो **रिंश्यस्य** = हिंसक (**रिश हिंसायम्**) पशु होते हैं उनसे बंचने के लिए उनके गले में खाट का पावा आदि डाल देते हैं, वैसे ही उनके सदृश शत्रु, पुरूष आदि जो दूसरे की हिंसा करते हैं, उसके लिए भी

---

१. *उस पीले गोलाकार पदार्थ का नाम मेरे पूज्य पिताजी ने उस समय बताया था, पर अब मुझे हूबहू स्मृत नहीं है। धूँधली स्मृति के आधार पर संभवतः कमल गट्टे के स्वाद के सदृश कोई औषधि थी।*

देव=विद्वज्जन बाधा रूप निष्क उत्पन्न करें, जिससे दूसरों की हिंसा न हो। यह रक्षक उपाय युद्ध में ढाल आदि धारण का भी संकेतक है।

पुनः कृत्याम्. अथर्व. ५/१४/४ मन्त्र का अर्थ है - **कृत्याम्** = छेदन, भेदन के उपयों, शस्त्रों को **हस्तगृह्य** = हाथ में पकड़कर, **कृत्याकृतः**= हिंसा करने वाले की ओर मोड़ दें। और वे लौटाये हुए हिंसा के कर्म, शस्त्र घातक के समक्ष हिंसा को ज्ञापित करने वाले बने तथा जिससे कि ये लौटाये, **कृत्याकृतम्** = हिंसक को नष्ट कर दें।

मन्त्र का तात्पर्य है कि कृत्या = छेदन, भेदन करने वाले अपराधी को रंगे हाथ पकड़ कर, उन हिंसा कार्यों को उस पर किया जाये, जिससे कि वह अपने विनाश रूपी दुष्परिणाम को देखकर अपने हिंसा कर्म को नष्ट कर दे।

कृत्याःसन्तु., अथर्व.५/१४/५ मन्त्र का अर्थ है-**कृत्याः**=हिंसा के साधन, **कृत्याकृते**=घातक के लिए ही होवे, हिंसक की गालियाँ गाली देने वाले के लिए ही होवे, जिससे जीवन, **सुखः**=उत्तम इन्द्रियों वाला होव। हिंसा की क्रियायें बार बार हिंसा करने वाला को ही प्राप्त हो।

मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है कि यदि, **कृत्याः**=मारने वाले के मारक साधन मारने के लिए आगे बढ़े, तो उन्हें पूरे सामर्थ्य से हिंसक की ओर ही मोड़ कर घातकों को नष्ट कर देना चाहिए। गाली, अपशब्द आदि न देकर अपने को संतुलित रखना चाहिए, जिससे कि जीवन सुखमय बना रहे।

इस प्रकार इन मन्त्र में जादू टोना अथवा वाममार्गियों के **कृत्या परिहरण** का कोई वर्णन नहीं है।

वेदकाल में भी डायन, की समीक्षा

यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने।
.... तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥अथर्व. ५/१४/६ ॥

यदि स्त्री,. अथर्व. ५/१४/६ अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड के उपर्युक्त १४ वें सूक्त के इस मन्त्र में श्री उपेन्द्र राव को **'वेदकाल में डायनें भी होती थीं,'** ऐसा विशिष्ट रहस्य प्रकट हो गया, जो उनकी तमोवृत्ति का ही घोतक कहा जा सकता है।

मन्त्र में न तो वेदकाल की चर्चा है, न अवेदकाल की और न डायनों की। मन्त्र में **कृताम्** शब्द आया है। यह कृत्या[1] शब्द कर्ता, कर्म, क्रिया हिंसा, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि अर्थों का अभियान करता है। यहाँ कृत्या शब्द हिंसा क्रिया का अभिधायक है। मन्त्र का देवता **वनस्पति** है। **वनस्पति**[2] शब्द औषधि, प्राण, अग्नि आदि पदार्थों का प्रतिपादक है। इस प्रकार मन्त्र का अर्थ है-

यदि स्त्री=यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष अपने, **पाप्मने**=पापु अशुभ कर्म आदि कुत्सित सिद्धि के लिए, **कृत्यां चकार**=हिंसा करता है, हिंसा के साधन जोड़ता है, तो उस हिंसक, मारक शक्ति को, निश्चय से, **तस्मै**=हिंसा करने वाले के लिये, **नयामसि**=हम सब ले जायें, और वह हिंसक के प्रति ले जाई गई हिंसा क्रिया वैसी ही होवे जैसे अश्व को बाँधने वाली रस्सी से छुट्टा घूम रहे अश्व को बाँधकर उसके स्थान अस्तबल में पहुँचाया जाता है।

मन्त्र का तात्पर्य है जैसे बन्धन से खुला हुआ घोड़ा दुलत्ती मारता घूमता है। जब उसे खूँटे से बाँध दिया जाता है, तब उसकी मार, पीट से छुटकारा हो जाता है। वैसे ही यदि कोई स्त्री या पुरुष चोरी, छीना झपटी, वञ्चना आदि पाप द्वारा द्रव्यादि ग्रहण के लिए किसी को मारता है, काटता है, तब ऐसे स्त्री पुरुष को उसके द्वारा की जा रही हत्या का प्रहार स्थान उसे ही बना देना चाहिए, उसका वार उसको ही लगे ऐसी स्थिति बना देनी चाहिये, जिससे वह हिंसा करना भूल जाये। घातक की हिंसा क्रिया का घातक को ही साधन बना देना, **डायनपना नहीं है,** अपितु **सुरक्षा मात्र है।** लोक प्रसिद्ध **डायनपना तो वह है, जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये दूसरों की हत्या** कर रहा है।

---

१. *(i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ८७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४ में द्रष्टव्य है।*
(ii) कृत्या शब्द का शब्द निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

२. *वनस्पति शब्द के विविध अर्थ एवं निर्वचन विशेष पृष्ठ १२१ में द्रष्टव्य हैं।*

देवों-द्वारा भी कृत्याप्रयोग, की समीक्षा

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।

तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥ अथर्व. ५/१४/७

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।

पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥ अथर्व. ५/१७/८

यदि वासि. अथर्व. ५/१४/७,**अग्ने पृतनाषाट्.**अथर्व. ५/१४/८ यहाँ उपेन्द्र राव यह सिद्ध करते हैं कि अथर्ववेद के इन मन्त्रों में तान्त्रिको व ओझाओं द्वारा किये जाने वाले जादू टोना का प्रतिपादन है। और उन **कृत्याप्रयोग**=जादू टोने को करने वाले मनुष्यों से भिन्न शरीर वाले देव थे, जिनके सहायक इन्द्र और अग्नि भी मनुष्यों से भिन्न विग्रह वाले हैं।

उपेन्द्र राव की देव, इन्द्र, अग्नि विषयक यह सोच मिट्टी में घर बनाने, बिगाड़ने वाले बालकों की भाँति है। मनुष्य वे होते हैं, जो पशु, पक्षी आदि जीवों से भिन्न आकृति और विशिष्ट ज्ञान वाले होते हैं, जिनके दो हाथ, दो पैर होते हैं तथा जिनके दो पैर चार पैर या छोटे-छोटे अनेक पैर नहीं होते। साथ ही जो झूठ[1] और संग्रह[2] की वृत्तिवाले होते हैं, वे मनुष्य होते हैं। उन्हीं मनुष्यों में से देव वे होते हैं, जो आकृत्या तो मनुष्य होते हैं, किन्तु **विद्वांसो हि देवाः**, शत. ब्रा. ३/७/३/१० ज्ञान, दान, त्याग, सत्य[3], शील, धर्म, विवेक, बुद्धि आदि की उदात्तताओं से भरपूर होते हैं। अपनी उदात्तता के कारण मनुष्य आकृति के जीव देव संज्ञा से अभिहित होते हैं। मनुष्याकृति के जीव जब ऐश्वर्य[4], बल[5] आदि के अधिपति होते हैं, तब उनकी इन्द्र संज्ञा होती है। मनुष्याकृति के जीवों के उस सामर्थ्य की अग्नि[6] संज्ञा है, जिस सामर्थ्य के द्वारा वे समस्त भूतों के अधिपति प्रधान, मुख्य, अग्रगण्य बनते हैं।

---

१. *अनृतं मनुष्याः ।* शत. ब्रा.१/१/१/४

२. *अपरिमितं हि मनुष्या उपाश्नन्ति ।* मै. सं.३/८/७

३. *सत्यमेव देवाः ।* शत. ब्रा.१/१/१/४

४. *इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति इन्द्रः ।* उणा. २/२९

५. *इन्द्रो बलं बलपतिः ।* शत. ब्रा.११/४/३/१२

६. *(i) अग्नि भूतानामधिपतिः ।* तै. सं.३/४/५/१
(ii) अग्निर्मुखम् । काठ. सं.४/१६
(iii) अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः । काठ. सं.१६/२०

मनुष्य रूपी देव, इन्द्र, अग्नि से अतिरिक्त जगन्नियन्ता ईश्वर, वीर्य, प्राण, औषधि, विद्युत्, जल आदि पदार्थ भी देव[1], इन्द्र[2], अग्नि[3] शब्दों से कहे जाते हैं। यह इन शब्दों के अर्थ व निर्वचनों से स्पष्ट है।

अथर्ववेद के प्रकृत मन्त्रों में विद्युत्, अग्नि आदि पदार्थ, राजा, शासक आदि एवं ईश्वर को देव, इन्द्र, अग्नि आदि शब्दों से अभिहित किया गया है, काल्पनिक इन्द्र, अग्नि देवों का कथन नहीं है।

यदि वासि., अथर्व.५/१४/७ मन्त्र का अर्थ है-**यदि वा देवकृता असि**=यदि कोई क्रिया वृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि रूप विद्युत् आदि के द्वारा हुई है अथवा यदि कोई क्रिया, आपत्ति, **पुरुषैः**=साधारण मनुष्यों के द्वारा हुई है तो उस क्रिया, आपत्ति को, **इन्द्रेन सयुजा**=ईश्वर, राजा, वीर्य आदि की शक्ति से, **वयम्**=हम, **पुनः**=फिर से, **नयामसि**=दूर ले जाते हैं, दूर करते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य है आधिभौतिक, आधिदैविक किसी भी प्रकार के कष्ट को, आपत्ति को ईश्वर, राजा, वीर्य आदि के सामर्थ्य से दूर करना चाहिये और राष्ट्र, शरीर आदि को बाधा रहित कर सुरक्षित कर लेना चाहिये।

अग्ने पृतनाषाट्., अथर्व.५/१४/८ मन्त्र का अर्थ है-हे **अग्ने** = अग्रणी ईश्वर, राजन्! आप शरीर, राष्ट्र आदि के शत्रुओं को पराभव करने वाले हैं, अतः शत्रुओं को दूर करें, बार-बार होने वाली, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया[4] को, **प्रतिहरेण**=प्रतिकूल क्रिया के द्वारा, **कृत्याकृते**=हिंसा करने वाले के लिए ही, **हरामसि**=हरण कर ले, ले जाये।

प्रकृत मन्त्र का भी यही तात्पर्य है कि राष्ट्र और शरीर की रक्षा करना

---

१. *देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युःस्थानो भवतीति वा। निरु.७/४/१५*

२. *इन्द्र इरां हणातीति वा, इरां ददातीति वा, इरां दधातीति वा, इरां दारयत इति वा, इरां धारयत इति वा, इन्दवे द्रवतीति वा, इन्धे भूतानीति वा, तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस् तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम् इति विज्ञायते, इदं करणा दित्याग्र यणः, इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः, इन्दतेवैश्वर्यकर्मणः इन्द्रञ्छत्रूनां दारयिता वा द्रावयिता वा, आदरयिता च यज्वनाम्। निरु.१०/१/९*

३. *अग्निः कस्मात् अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। अङ्गं नयति सन्नममानः। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः, न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्यः आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः, इतादू, अक्तादू, दग्धाद्वा नीतात्। निरु.७/४/१४*

४. *कृत्या=हिंसा क्रिया इस अर्थ विशेष का निर्वचन पृष्ठ १११ में द्रष्टव्य है।*

बहुत बड़ा दायित्व है। उस दायित्व को निभाते हुये, नया कुछ न जोड़ते हुए जो घातक है, उसे उस की **घात**=हिंसा का अनुभव कराना अनिवार्य है। दूसरे के ऊपर ताने हुए उसके अस्त्र जब हमारे प्रयत्नों से उसे ही प्रताड़ित करने लगेंगे, तभी उसे हानि और दुःख का अनुभव हो सकता है ! इसलिए घातक के प्रति प्रतिघात करने का वेद में यह निर्देश है। युद्ध में वेद के इन निर्देशों से ही विजय प्राप्त होती है और राष्ट्र की रक्षा होती है, शरीर की रोगों से रक्षा होती है। हिंसक शस्त्रों को **शत्रु की ओर ही लौटाना जादू टोना[1] नहीं होता**, रक्षा का साधन होता है।

कृत्याप्रयोग-कृत्यापरिहरण वाले जंगली, की समीक्षा

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार ततिज्जहि।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि॥ अथर्व.५/१४/९॥
पुत्र इव तिरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः॥ अथर्व.५/१४/१॥

कृतव्यधनि., अथर्व.५/१४/९, **पुत्र इव पितरम्.**, अथर्व.५/१४/१० अथर्ववेद के इन मन्त्रों में जंगलवासी तान्त्रिकों के द्वारा **कृत्या प्रयोग**=क्रूरता से किये जो असंगत और निरर्थक है।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में शरीर, राष्ट्र, सेना, प्रजा आदि की रोगों, शत्रुओं, घातकों से बचने बचाने का रक्षणात्मक उपाय का प्रतिपादन है, आक्रमण का नहीं। क्रूरता तो तब होती जब अनाक्रामकों पर आक्रमण किया जाता। **कृत्यापरिहरण[2]** शब्द का तो बहुत सीधा, सरल अर्थ है। **कृत्यापरिहरण** अर्थात् हिंसा के कर्म, साधन, कर्ता, कर्म आदि को दूर कर देना। कृत्यापरिहरण शब्द का तान्त्रिक जादू टोना अर्थ न होता है, न उसके साथ संबन्ध जोड़ा जा सकता है।

कृतव्यधनि., अथर्व.५/१४/९ मन्त्र का अर्थ है-हे शत्रुओं, रोगों आदि के वेधन, छेदन में अभ्यस्त सेना, औषधि ! जो शरीर, राष्ट्र आदि पर

***

१. जादू टोना शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ विशेष पृष्ठ १४५, १४६ में द्रष्टव्य है।

२. कृत्यापरिहरण की विस्तृत व्याख्या आगे आने वाली 'टोना के समस्त रूप की समीक्षा में पृष्ठ १४३, १४४ में द्रष्टव्य है।

आक्रमण करता है तुम उसे, **विध्य**=दूर करो और उसे ही नष्ट करो। **अचक्रुषे**= आक्रमण न करने वाले के लिये हम राष्ट्रवासी तुझे उसके वध के लिए, **न संशिशीमहि**=निशाना तानने के लिए (**शिम् निशाने**) नहीं कहते।

मन्त्र का तात्पर्य है शत्रुओं व रोगों से बचने के लिए उनके आक्रमणों को रोकने के लिए निश्चित रूप से प्रयत्न करना चाहिए, पर अहिंसकों, अघातकों को हिंसित, पीड़ित नहीं करना चाहिये।

पुत्र इव पितरम्., अथर्व.५/१४/१० मन्त्र का अर्थ है - **कृत्ये**[1]= शत्रुओं की हिंसा करने वाली सेना, **कृत्याकृतम्**=हिंसा करने वाले के प्रति बार-बार जैसे पुत्र पिता की ओर जाता है, वैसे धार्षित करे, जैसे, **स्वजः**=लिपट जाने वाला सर्प, **अभिष्ठितः**=कुचलता हुआ डसता है, वैसे शत्रुओं को डसे, कुचले। जैसे बन्धन तोड़कर जाने वाला अपने इष्ट स्थान पर जाता वैसे शत्रु को प्राप्त होवे।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि कोई शत्रु या रोग हिंसित, पीड़ित करता है उसके प्रति, **कृत्ये**=हिंसन क्रिया में समर्थ सेना या औषधि ! शत्रु को पिता की सामीप्यता जैसी सामीप्यता बनाकर, पदाक्रान्त सर्प की तरह सतर्क होकर एवं बन्धन मुक्त की भाँति पूरे जोश से शत्रु को ध्वस्त करे, दूर करे। **शत्रुओं को दूर करना न जादू टोना है, न जंगलीपन।** उपेन्द्र राव रक्षण उपाय को टोना समझते हैं, तो इन उपायों से दूर रहें। शत्रु या रोगों की मार को सहते रहें।

जादू-टोना वालों के शाप, की समीक्षा

श्री उपेन्द्र राव ने इस शीर्षक में अपनी विशिष्ट बुद्धि का परिचय देते हुए लिखा है कि 'इस सूक्त में सूअर, गरुड़, सांप, हरिण, हस्तिनी, हरणी, मृगी शब्द आये हैं, इससे पता चलता है कि जादू टोना वाले **ये लोग नितान्त जंगली मनुष्य थे।** ..... । कृत्या परिहरण कार्य चलाये जाते थे

---

१. *(i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४, १५७ में द्रष्टव्य है।*
(ii) कृत्या शब्द का शब्द निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ मे द्रष्टव्य है।

और साथ में वाणी द्वारा तरह-तरह के शाप भी दिये जाते थे।' पृ.४२॥

उपेन्द्र राव ने जादू टोना वालों के शाप संदर्शन के निम्न मन्त्र उपस्थित किये हैं-

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव।

कृत्या कर्तारमृच्छतु॥ अथर्व.५/१४/११॥

इष्वा ऋजीयःपततु द्यावा पृथिवी तं प्रति।

सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥ अथर्व.५/१४/१२॥

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्।

सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥ अथर्व.५/१४/१३॥

उदेणीव., अथर्व.५/१४/११, **इष्वा.**, अथर्व.५/१४/१२, **अग्निरिवैतु.**, अथर्व.५/१४/१३ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में रोगों, शत्रुओं आदि के निवारण के उपाय बताये गये हैं, तान्त्रिकों के **शाप**=अपशब्दों का वर्णन नहीं है।

उदेणीव., अथर्व.५/१४/११ मन्त्र का अर्थ है-**कृत्या**=छेदन भेदन करने वाली सेना, औषधि आदि रक्षक सामर्थ्य, **एणी इव**=चितकबरी मृगी के समान, **वारणी इव**=हथिनी के समान, **मृगी इव**=शेरनी के समान, **अभि स्कन्दम्**=आक्रमण करके (**स्कन्दिर् गति शोषणयोः**), **कर्तारम्**=घात करने वाले शत्रु, रोग के प्रति, **ऋच्छतु**=प्राप्त होवे।

इस मन्त्र में रोग या शत्रु निवारण के तीन उपाय बताये हैं। **पहला है एणी इव**=हिरणी के समान। जैसे हरिणी शान्त स्वभाववाली अपने बच्चों की रक्षा भागकर करती है या पुनः दूर रहकर प्रतिकार करती है, वैसे शान्त उपायों से कष्ट या विपदा को हटाया जाये। **दूसरा है वारणी इव**=हथिनी के समान। हथिनी जैसे बार-बार पीछे हटकर आक्रान्ता को बदले की भावना से घेर कर मारती है, दूर करती है, वैसे शत्रु या रोगों को हटाया जाये। **तीसरा है मृगी इव**=शेरनी के समान। जैसे शेरनी शिकारी आदि को बिना अवसर दिये आक्रमण पर आक्रमण करती है, वैसे शत्रुओं, रोगों को अत्याक्रमण द्वारा दूर करना चाहिये। तात्पर्य हुआ रोगों व शत्रुओं के दूरीकरण में शान्त,

रौद्र एवं शीघ्रतर उपायों को अपनाना चाहिये।

मन्त्र में आये पशु वाचक **एणी**,**वारणी**, **मृगी** आदि शब्द तान्त्रिक जादू टोना के शाप व जंगली मनुष्यों के अभिद्योतक नहीं है, अपितु उनके द्वारा की जाने वाली कर्म शक्ति के अभिद्योतक है।

इष्वा ऋजीयः., अथर्व.५/१४/१२ मन्त्र का अर्थ है - हे **द्यावापृथिवी**[1]= द्युलोक और पृथिवी लोक को बनाने वाले प्रजापति प्रभु! उस हिंसा करने वाले घातक व्यक्ति के प्रति. **कृत्या**=हिंसा करने वाली क्रिया, **इष्वाः**=गति से (**इषु गतौ**), **ऋजीयः**=सीधी, **पततु**=पहुँची और **कृत्या**=उस हिंसक कर्म, **कृत्याकृतम्**=हिंसा करने वाले को, **पुनः**=बार-बार, **मृगम् इव**=जैसे शेर शिकारी को पकड़ता है, वैसे **गृह्णातु**=पकड़ती है।

मन्त्र का तात्पर्य है ईश्वर की सहायता से हिंसा करने वाले को उसका हिंसा कर्म उसी को डस लेता है और वह हिंसा कर्म उसको बार-बार नष्ट करता है, जैसे शेर शिकारी को नष्ट करता है।

अग्निरिवैतु., अथर्व.५/१४/१३ मन्त्र का अर्थ है-**कृत्या**=रोग राष्ट्र रक्षक छेदन भेदन के साधन, **प्रतिकूलम्**=विरोधी तत्त्वों, रोगों एवं शत्रुओं को अग्नि के समान विनष्ट करे और **अनुकूलम्**=अभीष्ट शरीर, राष्ट्रादि रक्षकों को, **कृत्या**=कर्म और साधन, **उदकम् इव**=जल के समान शान्ति प्रदान करें, नष्ट न करे, जिससे कि रक्षित हुआ-हुआ यह शरीर या राष्ट्र रथ के समान परिभ्रमण करता हुआ सुख प्राप्त करे। **कृत्या**=दोष निवारक कर्म, क्रिया, साधन आदि, **कृत्याकृतम्**= विनाशक को ही, **पुनः**=बार-बार प्राप्त हों।

मन्त्र का तात्पर्य है **कृत्या**[2]=हिंसक कर्म, साधन, क्रियायें प्रतिकूल व्यक्ति को अग्नि के समान विनष्ट करने वाली हों और अनुकूलों को जल के समान शान्ति दायक हों। हिंसा क्रियाओं द्वारा अग्नि अर्थात् अग्रगण्य बनकर

---

१. *द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः।* *शत. ब्रा.५/१/५/२६*

२. (i) *कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४, १५७ में द्रष्टव्य है।*

(ii) *कृत्या शब्द का शब्द निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ में द्रष्टव्य है।*

छेदन, भेदन का कार्य न करने वाले जन सुख को प्राप्त करते हैं, और हिंसा करने वाले जन हिंसा को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार मन्त्रार्थों से स्पष्ट है कि इन मन्त्रों में जादू टोना वाले शाप का न कहीं कथन है, न कोई गन्ध है।

कच्चा मांस, कच्चा पात्र, मिश्रधान्य, की समीक्षा

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव ने अपने आरोपों की शूली पर अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड के ३१ वें सूक्त को चढ़ाया है। इस सूक्त पर राव के तीन आरोप हैं। उनका **पहला** आरोप है कि इस सूक्त के कुछ मन्त्रों के अन्तिम वाक्य=टेक **पुरश्चरणात्मक**[१]=प्राथमिक गिड़गिड़ाहट रूप इष्ट देवता व मन्त्र सिद्धि के साधक हैं।

दूसरा आरोप है अथर्ववेद के ४/१७/४ मन्त्र में कही गई **यां ते चक्रुरामे पात्रें यां चक्रुर**.....। **आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्**......, यह आनुपूर्वी अथर्ववेद के ५ वें काण्ड के ३१ वें सूक्त के **यां ते चक्रुरामे**, इस प्रथम मन्त्र में पुनरुक्त की गई है तथा इस ३१ वें सूक्त के प्रथम मन्त्र की पुनः **प्रतिहरामि तम्** अथर्व.५/३१/१ इस आनुपूर्वी को ९ वें मन्त्र तक पुनरुक्त किया गया है। प्रथम मन्त्र के **यां ते चक्रुः** अंश को भी ९ वें मन्त्र तक पढ़ा गया।

तीसरा आरोप है कि इस ३१ वें सूक्त में तथाकथित प्रवञ्चक तान्त्रिक ओझाओं के द्वारा किये जाने वाले वाममार्ग के दुष्कर्मों का वर्णन है। अपने इस सोच के समर्थन में एक वाक्य लिखा है- 'कच्चे मांस को कच्चे पात्र में रखकर कृत्याप्रयोग करना ! शाबाश !!' पृ.४२ ॥

आक्षेपक के तीनों ही आरोप निःसार व काल्पनिक हैं। प्रकृत सूक्त के जिन मन्त्रों में '**पुनः प्रति हरामि ताम्**' ऐसी अन्तिम टेक है, वह टेक **पुरश्चरण** =तान्त्रिक की इष्ट देवतासिद्धि एवं मन्त्रसिद्धि की प्रतिपादक नहीं है, अपितु शरीर रक्षा, राष्ट्ररक्षा आदि रक्षाओं में सन्नद्ध वैद्य, राजा, गुरु, माता, पिता, आदि की रक्षा नीतियों की प्रतिज्ञा व लक्ष्यसिद्धि का वह वाक्य है।

---

1. *पुरश्चरण शब्द का अर्थ, निर्वचन एवं अभिधेय पृष्ठ १२९ में द्रष्टव्य है।*

पुरश्चरण

आक्षेपक यत्र तत्र पुरश्चरण शब्द लेकर खूब कूदते हैं, परं पुरश्चरण शब्द के अर्थ से नितान्त अनभिज्ञ हैं।

पुरश्चरण शब्द का अपने आप में कोई अनर्थकारी अर्थ नहीं है। पुरस् शब्द के आगे, सामने, मुख्य ये ही अर्थ हैं। **चरण** शब्द के भी ज्ञान, बोध, प्राप्ति, गति अर्थ हैं। इस प्रकार **पुरःचरणम् पुरश्चरणम्, पुरश्चरण** शब्द का तो इतना ही अर्थ है-पहले होने वाले, किये जाने वाले कर्म, क्रिया व पदार्थ गुण। इस जगत् में जो कुछ भी पहले पहले, प्रथमतया, आगे आगे निष्पन्न होगा, वे सब पुरश्चरण कहलाने योग्य हैं। पर ब्राह्मण ग्रन्थों में जीवन के आधार यज्ञ व सूर्य को ही पुरश्चरण नाम दिया गया। यथा-

१. अथैतं विष्णुं यज्ञम्, एतैर्यजुर्भिः पुर इवैव बिभ्रति तस्मात्पुरश्चरणं नाम ॥
शत.ब्रा.४/६/७/४ ॥

अर्थात् इन यजुःमन्त्रों से इस **विष्णुम्**=व्यापक यज्ञ को आगे लाते हैं, इसलिए इसका नाम पुरश्चरण है।

यज्ञ का शोधन व वर्द्धन, परिवर्द्धन करने का व्यापक कार्य है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ कर्म को उत्तम बताया है। यथा-**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**, शत.ब्रा.१/७/१/५ यज्ञ जीवन का आधार है, श्रेष्ठ कर्म है।

२. तद्वा एतदेव पुरश्चरणं य एष सूर्यः तपति। शत.ब्रा.४/६/७/२१ ॥

अर्थात् यह पुरश्चरण वही है, जो सूर्य तपता है।

ब्राह्मण के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि मन्त्रों से किया जा रहा यज्ञ कर्म एवं सूर्य पुरश्चरण[१] संज्ञक हैं। बाद में यज्ञ शब्द साम्य से जो कुछ भी स्वार्थसिद्धि के लिए जप, तप, मन्त्र, तन्त्र, जाल किया जाने लगा। उन सबका नाम पुरश्चरण पड़ गया और वैसा ही शब्दकोष आदि ग्रन्थों में पुरश्चरण शब्द को परिभाषित कर दिया गया।

पुनरुक्त नहीं अनुवाद

यां ते चक्रुरामे आदि आनुपूर्वी के पुनर्कथन का आरोप भी दोष या

१. पुरश्चरणं पुरस्क्रिया। सा. तु. स्वेष्टदेवतामन्त्रसिद्ध्यर्थं तद्देवतापूजापूर्वकं तन्मन्त्रजपहोमतर्पणाभिषेकब्राह्मणभोजन- रूपपञ्चाङ्गकसाधना।

आरोप स्थानीय नहीं है। वेदों में किसी भी मन्त्र, चरण एवं मन्त्रांश का आवर्तन विधि या कर्म आदि की आवश्यकता प्राथमिकता को दर्शाने के लिए किया गया है। वेद का यह पुनर्कथन अनुवाद[1] कहा जाता है। पुनरावर्तन वाले इन अनुवादों का प्रयोजन क्या होता है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए महर्षि गौतम कहते हैं-

शीघ्रतरगमनोपदेशवत् अभ्यासान्नाविशेषः। न्याय द.२/१/६८

अर्थात् अतिशीघ्रतर जाने की आज्ञा के समान आवृत्ति वाला कथन के होने से, वह आवृत्ति का कथन अनुवाद और पुनरुक्ति शब्दों का भेदक होता है यानी अनिवार्यता का ज्ञापन कराने वाले वेद का **आवृत्ति रूप कथन अनुवाद** कहा जाता है, पुनरुक्त या पुनरुक्ति नहीं कहाता[2]।

वेद का पुनःकथन क्रिया, कर्म की शीघ्रता, कर्म की नैरन्तर्यता एवं कर्म आदि की प्राथमिकता, अनिवार्यता का द्योतक है, दोष स्थानीय नहीं है।

लोक में भी क्रिया, कर्म, गुण आदि की शीघ्रता, नैरन्तर्यता, अनिवार्यता द्योतन के लिए आवर्तन रूप पुनरुक्त वाक्य ही प्रयुक्त किये जाते हैं। यथा- **शीघ्रं शीघ्रं गम्यताम्**, अर्थात् शीघ्र-शीघ्र जाओ। यहाँ वाक्य में चलने की गति क्रिया की शीघ्रता व तीव्रता को **शीघ्र** शब्द के आवर्तन द्वारा व्यक्त किया गया है।

पचति पचति अर्थात् पका रहा है, पका रहा है। इस वाक्य में पकाना क्रिया के कर्ता व पकाना कर्म की नैरन्तर्यता को **पचति** शब्द के पुनः उच्चारण द्योतित किया जा रहा है।.

स्थान व कर्म या क्रिया की व्यापकता व अनिवार्यता द्योतन के लिए भी लोक में आवर्तन किया हुआ वाक्य ही कहा जाता है। यथा-

ग्रामो ग्रामो रमणीयः, अर्थात् गाँव-गाँव रमणीय है। यहाँ प्रति स्थान

---

१. *अर्थवानभ्यासोऽनुवादः। न्याय. वात्स्या. २/१/६१*

२. *(i) पुनरुक्त तथा अनुवाद की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ ७१, ७२ में द्रष्टव्य है।*

(ii) पुनरुक्त तथा अनुवाद का विशिष्ट परिज्ञान के लिए लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के 'आमुख=वेदों पर आरोप वितण्डा' शीर्षान्तर्गत 'त्रुटि रहित वेद' प्रसङ्ग में एवं इसी पुस्तक के प्रश्नोत्तर १३, १५ में द्रष्टव्य है।

रमणीयत्व की व्यापकता के लिए ग्राम शब्द का पुनः कथन किया गया है। **इदं तिक्तं तिक्तं कटुः कटुः वा**, अर्थात् यह पदार्थ तीता-तीता व कड़वा-कड़वा है। इस वाक्य में कटुता, तिक्तता की अधिकता, व्यापकता के द्योतनार्थ **तिक्त** और **कटु** का पुनः उच्चारण किया गया है।

इस प्रकार लोक के इन उदाहरणों से सुस्पष्ट है कि अनुवाद रूप पुनःकथन तीन प्रयोजनों के कारण होता है-

१. **क्रिया या कर्म की शीघ्रता**

२. **कर्म व क्रिया की संलग्नता, नैरन्तर्यता**

३. **स्थान, कर्म, क्रिया, व गुण की अनिवार्यता, व्यापकता**

जिस प्रकार लोक के इन अनुवाद रूप पुनर्कथन के वाक्यों में तीन प्रयोजन स्पष्ट दीख रहे हैं, वैसे ही वेद में भी तीन प्रयोजन है। प्रसंगगत मन्त्रों में जिस-जिस माध्यम से **कृत्या**=हिंसा, हिंसा क्रिया के साधन, कर्म, क्रियायें किये जाते हैं, उपयोग में लाये जाते हैं, उन सबके निवारण की शीघ्रता, नैरन्तर्यता, अनिवार्यता के द्योतन हेतु मन्त्रांश की इन **प्रति हरामि ताम्** आदि आनुपूर्वियों का पुनः कथन किया गया है। मन्त्रों के इस पुनः कथन को कथमपि पुनरुक्त रूप आरोप नहीं कहा जा सकता। आक्षेप्ता का पुनरुक्त आरोप लगाना ही आरोप कहने योग्य है।

तृतीय आरोप में प्रसंग गत मन्त्रों को तान्त्रिक वाममार्गियों के **कृत्या**= परस्पर नाश के लिए किये जाने वाले बीभत्स हिंसा कर्मों से जोड़ना भी आक्षेपक की महती भ्रान्ति है। मन्त्रों में **कृत्या** शब्द देखकर आक्षेपक ऐसे बिदके, कि होश ही खो बैठे और यह 'कच्चे मांस को कच्चे पात्र में रखकर कृत्या, प्रयोग करना ! शाबाश !!' व्यंग्य वाक्य लिख बैठे। यहाँ ही नहीं, अन्य स्थलों पर भी **कृत्या** शब्द देखकर आक्षेपक इसी प्रकार बिदक उठे हैं। आक्षेपक की दोष दर्शन दृष्टि को प्रणाम ! कृत्या शब्द को देखकर बिदकने की कोई आवश्यकता नहीं है। वेदों में आये **कृत्या** आदि शब्द यौगिक हैं[१]। अतः शब्दाकृति व रूप दृष्ट्या एक समान होते हुये भी शब्द अनेकार्थक होते

---

१. *यौगिक शब्द की विशेष व्याख्या पृष्ठ ५७, ६७ में द्रष्टव्य है।*

हैं। समान आकृति वाले शब्द अनेकार्थक होते हैं, इस को सत्यापित करते हुए महाभाष्कार पतञ्जलि लिखते हैं-

एकश्च शब्दो बह्वर्थः। तद्यथा-अक्षाः, पादाः, माषा इति।

पात.महाभा.१/२/४५, पृ.४८

अर्थात् एक शब्द के बहुत अर्थ होते हैं। जैसे अक्ष, पाद, माषये शब्द समान आकृति के होने से एक शब्द हैं, पर इनके अर्थ बहुत हैं। अक्ष शब्द आँख, जुए के पासे, बहेड़ा आदि का वाचक है। पाद शब्द पैसे, चतुर्थ भाग, भाव मात्र आदि का वाचक है। माष शब्द उड़द, सुवर्ण, तांबे के सिक्के आदि का वाचक है।

एक समान आकृति वाले इन अनेकार्थक शब्दों की समायोजना प्रकरणानुसार होती है। वेदों में आया **कृत्या** शब्द भी शब्दाकृति से एक समान है, पर इसके अर्थ अनेक हैं। **कृत्या**[1] शब्द की अनेकार्थता का कारण विभिन्न धातुओं से बनी शब्द निष्पत्ति है। **कृत्या** शब्द **डुकृञ् करणे**, **कृञ् हिंसायाम्**, **कृती छेदने** धातुओं से निष्पन्न होता है, जिसके अर्थ कर्ता, कर्म, क्रिया, हिंसा क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि होते हैं।

कृत्या के दो प्रकार

कृत्या शब्द अथर्ववेद में अनेक प्रसङ्गों में आया है जो शत्रु, रोग, कष्टनिवारक ईश्वर, औषधि, राजा, विद्वान्, अग्नि आदि पदार्थों एवं अस्त्र, शस्त्र आदि पदार्थों का वाचक है। वाममार्गियों के मारण, उच्चाटन आदि हिंसक प्रयोगों का नहीं। रोग, शत्रु आदि **कृत्या**=हिंसक, नाशक निवारक कितने प्रकार के होते हैं ? यह भी अथर्ववेद में प्रतिपादित है। कृत्या के स्वरूपों व प्रकारों का ज्ञापक मन्त्र है-

याःकृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः
कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति॥ अथर्व. ८/५/९

१. *कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३ में द्रष्टव्य है। कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।*

अर्थात् **याः**=जो, **कृत्याः**=हिंसक, घातक क्रियायें, **आङ्गिरसीः**=शरीर के अङ्गों को प्रभावित करने वाली हैं, **याः कृत्याः**=जो घातक कृत्यायें, **आसुरीः**=प्राणों को उद्वेलित करने वाली हैं, जो कि, **याः**=ये दोनों कृत्यायें स्वयं अथवा दूसरों के द्वारा की जाती हैं, वे दोनों प्रकार की कृत्यायें, दूर से दूर हो जायें। ९० महानदियों को नौकाओं से पार करने योग्य दूर देश में चली जायें। यहाँ ९० नदियों की उपमा अदिदूर देश के निर्देश के लिए है।

मन्त्र से स्पष्ट है कि **कृत्याः**=हिंसक क्रियायें **आङ्गिरसी** तथा **आसुरी**[1] दो प्रकार की होती हैं। इन दोनों प्रकार की कृत्याओं को स्वयं भी किया जाता है और अन्यों की सहायता से भी किया जाता है।

आङ्गिरसी कृत्या

अग्नि तथा आग्नेय पदार्थों से सम्बन्धित **कृत्यायें**= क्रियायें **आङ्गिरसी**[2] कृत्यायें कही जाती हैं। इस **कृत्या**=हिंसा क्रिया को रोग निवारण एवं संग्राम के समय शत्रु नाश हेतु से अग्नि ज्वालाओं में खनिज तथा वानस्पत्य पदार्थों के **संखिया**=विष से बने चूर्णों को डालकर धुँआ उत्पन्न किया जाता है। उस उत्पन्न धुँए से रोगों को दूर किया जाता है, शत्रुओं के इन्द्रिय, अङ्गावयव आदि को शक्ति हीन बनाया जाता है।

आङ्गिरसी कृत्या का विषयुक्त अग्नि, धुँआ उत्पन्न करने वाला अग्नि चूर्ण किन पदार्थों से बनता है, इसका निर्देश शुक्रनीलि में किया गया है। यथा-

अङ्गारस्यैवगन्धस्य सुवर्चिलवर्णस्य च।
शिलाया हरितालस्य तथा सीसमलस्य च॥
हिङ्गुलस्य तथा कान्तरजसः कर्पूरस्य च।
जतोर्नील्याश्च सरलनिर्यास्य तथैव च॥
समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ॥ शुक्रः ४/७/१९४-१९६

अर्थात् आक और थूहर के कोयले, गन्धक, शोरा, मैनसिल, पोटाश,

---

१. *आङ्गिरसी तथा आसुरी कृत्याओं की विषय विस्तार पृष्ठ १६४, १६५ में द्रष्टव्य है।*
२. *अङ्गिराऽ ह्यग्निः/शत.ब्रा.१/४/१/२५, अङ्गिरा वा अग्निः/शत.ब्रा.६/४/४/४*

हड़ताल, सीसे का मल, सिंगरफ, फौलाद का चूर्ण, कान्ति सार लौह, **कपूर**=खफरिया लाख, नीली, राल, देवदारु का गोंद आदि द्रव्यों का अग्नि चूर्ण सम, न्यून और अधिक भाग में मिलाकर अनेक प्रकार का बनता है।

नीतिकार के इस वचन का तात्पर्य हुआ रोग, शत्रु आदि के आक्रमण करने पर अग्नि में पोटाश, गन्धक, फिटकरी आदि द्रव्यों को डालकर रोग, रोग कीटाणु, शत्रु आदि का निवारण करना चाहिये। यह **आङ्गिरसी कृत्या**=बाधक, घातक, बम स्वरूप रासायनिक क्रिया है, जो अग्नि ज्वालाओं में सम्पन्न होती है। गन्धक आदि के अग्नि चूर्ण में लोहे तथा पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े भी डाले जाते हैं, जिनसे रोग, शत्रु आदि बाधाओं का शीघ्र ही निवारण होता है।

इस **आङ्गिरसी कृत्या** के प्रयोगों का वेद[1], राजनीति व राज्य व्यवस्था के प्रतिपादक शुक्रनीति[2] आदि ग्रन्थों एवं कोषग्रन्थों[3] में वर्णन है।

आसुरी कृत्या

आसुरी कृत्या में प्राणों पर आघात किया जाता है, अतः यह आघात की क्रिया आसुरी कृत्या कही जाती है। असु संज्ञा प्राणों की है। इस कृत्या में प्राणों को उद्वेलित कर दिया जाता है। इस कृत्या में उपयोग में लाये गये अनेक प्राणघातक द्रव्यों के कण रूप धूम्र द्वारा रोग या शत्रु को परास्त किया जाता है। आसुरी कृत्या में तत्काल हिंसा नहीं होती है। यह क्रिया **माया**[4]=वञ्चना, दांव पेच वाली है। आसुरी कृत्या का प्रयोग अश्रु गैस के सदृश होता है। यह कृत्या आकाश में जाकर विस्तार को प्राप्त कर प्राणियों को सन्ताप देती है, मृत्यु नहीं करती है। इस आसुरी कृत्या का संकेतक अथर्व

---

१. अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति। अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुता फट् करिकृति ॥ अथर्व.४/१८/३

२. कल्पयन्ति च तद्विघार चन्द्रिका भादिमन्ति च ॥ क्षिप्यन्ति चाग्निसंयोगाद् गोलं लक्षे सुनालगम् ॥ शुक्र.४/७/१९६, १९७

३. कृत्यामुत्पाद या मा असुर्ज्वालामालोज्ज्वालाकृतिम्। शब्द कल्प द्रुम, भाग-२, पृ.१७७

४. (i) आसुरी माया स्वधया कृतासीति प्राणो वा असुस्तस्यैषा माया स्वधया कृता। शत.ब्रा.६/६/२/६
(ii) मायेत्यसुरा आसते। शत.ब्रा.१०/५/२/२०

मन्त्र है-

तद्वै ततो विधूपायत्। अथर्व. ४/१९/६

अर्थात् **वै**=निश्चय से, उस शत्रु, रोग आदि को ईश्वर, वैद्य, औषधि, राजा, **विधूपायत्**=विशेष रूप से धूम्र युक्त करें।

इस आसुरी कृत्या कार्य का कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णन है। इस कृत्या के साधक पदार्थों का भी कौटिल्य में परिसंख्यान किया गया है। यथा-

पूतिकरञ्जपत्रहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपलालान्यास्फोरकाचगोशकृद्रस-पिष्टमन्धीकरो धूमः।

अर्थात् काँटेदार, **पूतिकरञ्ज** = कंजा के पत्ते, हरताल, मैनसिल, लालघुँघची, कपास और पुआल इन सबको **आस्फोट**=मदार, कांच एवं गोबर के रस में पीसकर इनसे धुँआ करने पर वह धुँआ अंधा कर देता है।

यह आसुरी कृत्या कितने प्रकारों वाली है ? यह भी अथर्ववेद में बताया है। मन्त्र है-

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि॥ अथर्व. ४/१७/४

अर्थात् जिस, **कृत्याम्**=हिंसा को (कृञ् हिंसायाम्) तेरे, **आमे पात्रे**=कच्चे, अपरिपक्व शरीर रूपी पात्र में अथवा घटादि अपक्व पात्रों में रोग, शत्रु) या कृमि करते हैं। जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, **नीललोहिते**=दृढ, पक्के लाल रंग के रक्त में अथवा घट, पीतल आदि के कंस, पक्के दृढ़ पात्रों में रोग, कृमि, शत्रु करते हैं एवं जिस, **कृत्याम्**=हिंसा को, **आमे मांसे**=शरीर के कच्चे मांस में फलों के कच्चे गूदे में रोग, कृमि, शत्रु करते हैं, उन **कृत्याकृतः**=हिंसा करने वाले रोग, कृमि, शत्रुओं को आतुर, पीड़ित, **तया**=उस षष्ठ मन्त्रोक्त (अपामार्ग त्वया) **अपामार्ग**=औषधि, ईश्वर, वैद्य एवं राजा द्वारा की जानेवाली, **कृत्या**=हिंसा क्रिया द्वारा, **जहि**=नष्ट करे, दूर ले जाये।

मन्त्र का भाव है कि **कृत्या**=हिंसा क्रिया, **आमे पात्रे**=अपरिपक्व

शरीर में, कच्चे घटादि पात्र में, **नीललोहिते**=दृढ़ पक्के रंग वाले रक्त में या घटादि पक्व पात्रों में तथा **आमे मांसे**=कच्चे मांस में फल आदि के गूदे में की जाती है।

इस प्रकार मन्त्र से स्पष्ट है कि आसुरी कृत्या के तीन प्रकार होते हैं। वे प्रकार अधोलिखित हैं-

१. कच्चे, कमजोर पात्र में की जाने वाली कृत्या

आमे पात्रे वाली **कृत्या**=हिंसा समीप या शीघ्रता से की जाने वाली हिंसा क्रिया है। इस कृत्या में अपरिपक्व शरीर अर्थात् बच्चे सदृश शरीरों को विषप्रयोग के लिए उपयोग में लाया जाता है या घट आदि कच्चे पदार्थ में विषयुक्त पदार्थ को भरकर रखा जाता है अथवा विषैले पदार्थ भरकर पात्र को फोड़ा जाता है। उन विषयुक्त शरीर व पात्र के स्पर्श तथा उस फूटे पात्र की गैस से शत्रु को तत्काल पीड़ित, हिंसित किया जाता है।

२. पक्के दृढ पात्र में की जाने वाली कृत्या

नीललोहिते वाली **कृत्या**=हिंसा दूर, देर या ऊँचे स्थान से की जाती है। इस कृत्या में दृढ शरीरों के रक्त अथवा पके हुये घटादि पात्र उपयोग में लिये जाते हैं। विषैले पदार्थों को रक्त में मिला दिया जाता है या पक्के पात्र में विषैले पदार्थों को भरकर विमान आदि साधनों द्वारा ऊँचे स्थान से गिरा कर यह कृत्या की जाती है। इस विषयुक्त **कृत्या**=हिंसा क्रिया सभी तत्काल पीड़ा पहुँचती है, रोगादि की उत्पत्ति होती है।

३. कच्चे मांस में की जाने वाली कृत्या

आमे मांसे=मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के मांस में यह **कृत्या**=हिंसा की जाती है। यह हिंसा जीवित प्राणियों के शरीर में विष प्रवेश द्वारा होती है। इस तृतीय कृत्या में विषयुक्त प्राणी के स्पर्श, दूध, मूत्र, थूक, खखार आदि से होने वाली **कृत्या**=हिंसा का आक्रमण देर से होता है।

मनुष्य, पशु आदि प्राणियों के मांस में की जाने वाली इस कृत्या को उन प्राणियों के दो, चार व समूह में आठ पैर आदि वाला होने से द्विपदी,

चतुष्पदी[1] आदि नाम भी दिये गये हैं।

इस कच्चे मांस वाली कृत्या को **विषमयी कन्या** आदि के रूप में तैयार किया जाता है। विषकन्यायें राजा आदि के सम्पर्क में जाकर स्पर्श आदि द्वारा उनकी हिंसा, प्राणघात कर देती है, इसका वर्णन चिकित्सा ग्रन्थ सुश्रुत में किया गया है। तथाहि-

विषकन्योपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून्नरः।
तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः॥ सुश्रु. कल्प. १/६॥

अर्थात् शत्रु पुरुष विषकन्या के उपयोग से क्षणभर में अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा आदि के प्राणों को हरण कर लेता है, अतः वैद्य को राजा की विष से निरन्तर रक्षा करनी चाहिये।

विशाखादत्त ने अपने **मुद्राराक्षस** नाटक में नन्द के महामन्त्री राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिये विषकन्या तैयार की थी, पर उसी विषकन्या के द्वारा बुद्धिमान् चाणक्य ने दुष्ट राक्षस के स्वामी पर्वतेश्वर का ही वध कर दिया था। उस विषकन्या द्वारा की गई कृत्या का उल्लेख **कन्यां तीव्रविष-प्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया**, मुद्रा. ५/२१ इस वाक्य द्वारा किया है।

कृत्या=हिंसा के अन्य प्रकार

कच्चे पात्र, दृढ पात्र तथा कच्चे मांस के अतिरिक्त और भी अनेकों **कृत्या**=हिंसा विधियाँ मनुष्याकार में तैयार की जाती हैं, जो सिर, नाक, कान आकृति वाली व विश्वरूपा विविध रूपों वाली होती हैं[2]। ये कृत्यायें लौह, मृत्तिका, पुआल, वस्त्र आदि से बनती हैं, जिसमें विषयुक्त स्फोटक पदार्थ भरे जाते हैं एवं स्वचालित[3] होकर शत्रुओं पर वार करती हैं। ये कृत्यायें तोप

१. *यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।*
से तो इष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने॥ *अथर्व. १०/१/२४*

२. *शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।*
सारा देत्वप नुदाम एनाम्। *अथर्व. १०/१/२*

२. *शीर्षण्वती आदि कृत्यायेंव घातक प्रयोग जो देखने में मनुष्य, स्त्री आदि लगते हैं उन पर दूसरा शत्रु जैसे ही आक्रमण करता है, वैसे ही उन मनुष्य आकृतिरूपा तोप संज्ञक कृत्याओं का कृत्या=हिंसा का साधन बारुद आदि फटकर घात कर देता है, आक्रमणकारी को मार डालता है।*

आदि के रूप में लायी जाती है।

कृत्या का अर्थ

इन सभी विविध **कृत्याओं**=हिंसाओं को करने वाले रोग, रोगजन्य कृमि, शत्रु गण होते हैं और परस्पर शत्रु बने मनुष्य होते हैं। अथवा ये सभी **कृत्यायें**=हिंसायें रोग, रोगकृमियों के निवारण शरीर रक्षा तथा राष्ट्ररक्षा के लिए वैद्य, राजा आदि द्वारा उपयोग में लायी जाती हैं। इनसे रोगों, शत्रुओं का नाश किया जाता है। **ये सभी कृत्यायें तान्त्रिक जादू टोना नहीं है, दुःख, बाधा, रोग व राष्ट्ररक्षा के उपाय हैं।** अनेकार्थक कृत्या शब्द का कहाँ कौन सा अर्थ सम्बन्धित होगा ? यह प्रकरण से ही जाना जाता है। इस प्रकार कच्चे मांस को कच्चे पात्र में रखकर कृत्या प्रयोग करना ! शाबाश !! उपेन्द्र राव का यह कथन उनकी बाल बुद्धि का निरर्थक प्रकाश है।

प्रसंगगत **यां ते चक्रुरामे.**, अथर्व. ५/३१/१ मन्त्र का अर्थ है- **याम्**=जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को राग, कृमि एवं शत्रु ने, **आमे पात्रे**=कच्चे पात्र, अपरिपक्व शरीर, अपक्व घड़ा आदि में विष लेप से, **चक्रुः**=किया है, जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, विषैले अन्न में विषैले घुंघची आदि मिलाकर किया है।

जिस **कृत्याम्**=हिंसा क्रियाको, घात को, **आमे मांसे**=जीवित प्राणियों के मांस में, फलों के गूदों में विष प्रवेश करके किया है उस, **कृत्याम्**=हिंसा को, **पुनः**=लौटाकर, **प्रति हरामि**=उन्हीं की ओर भेजता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि कोई घातक शस्त्र, जल दुग्धादि पदार्थों व पात्रों में शरीर में, रक्त में या मांस में विष प्रयोग द्वारा हिंसा करता है अथवा कृमि आदि रोग उत्पन्न करके हिंसा करते हैं, तो उलट कर प्रतीकार रूप उन शत्रुओं को रोग कृमियों को नष्ट करना चाहिये, उन पर दया करना राष्ट्रघात होगा।

उपेन्द्र राव को राष्ट्र, शरीर आदि के सुरक्षा का प्रतीकार रूप कार्य जादू टोना लग रहा है, तो वे इस सुरक्षा का लाभ न लें, शत्रुओं व रोगों का लाभ लें ! कोई विपत्ति नहीं ?

जादू-टोना के योग्य प्राणी-पदार्थ-स्थान, की समीक्षा

इस शीर्षक से पूर्व वाले 'कच्चा मांस, कच्चा पात्र, मिश्रधान्य' शीर्षक में उपेन्द्र राव को अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड के ३१ वें सूक्त में **तान्त्रिक जादू टोना विषयक इलहाम हुआ।** उस इलहाम की प्रतिष्ठा में श्री राव ने एक मन्त्र भी वहाँ उद्धृत किया। पर वह मन्त्र उन्हें सन्तुष्ट न कर सका। अतः उन्होंने इस शीर्षक में पुनः उसी १२ मन्त्र वाले सूक्त के उन सभी १२ मन्त्रों को अपनी गवाही में विनियुक्त करते हुए, उसी जादू टोने के इलहाम विषय को इस शीर्षक में उगल दिया। **इलहाम की वे पंक्तियाँ हैं-**

'कच्चे माँस एवं मिश्र धान्य के बाद जादू टोना के लिए किन-किन प्राणियों का एवं पदार्थों का और स्थानों का उपयोग किया जाता था, उनकी झलकियाँ अगले मन्त्रों में देखिये। पृ. ४२

आक्षेपक के आक्षिप्त मन्त्र हैं-

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/२
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/३
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/५
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/६
यां ते चक्रुः सेनायां यां ते चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/७
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व. ५/३१/९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि।

अधीरो मर्याधीरेभ्यः संजभाराचित्त्या ॥ अथर्व. ५/३१/१०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥ अथर्व. ५/३१/११, ४/१८/६
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥ अथर्व. ५/३१/१२

यां ते चक्रुः. अथर्व. ५/३१/२-१२ आदि अथर्ववेद के मन्त्रों को तान्त्रिक जादू टोना का माध्यम बताना उपेन्द्र राव का गप्प कोटि का कथन है। अथर्ववेद के इस सूक्त में रोग, कृमि, शत्रु आदि के विनाश और उनसे रक्षा के उपाय निर्दिष्ट दायित्वपूर्ण कार्य है। राष्ट्र की रक्षा व उन्नति में जहाँ प्रजा, सेना, सेनाध्यक्ष, पुरोहित आदि निमित्त होते हैं, वहीं सहयोग, उपकार, प्रसन्नता प्रदान करने वाले औषधि, खेत आदि भोजन के पदार्थों के साथ, पशु पक्षी आदि जीव, अग्नि वायु आदि पदार्थ, ढोल, बांसुरी आदि वाद्य सदृश अनेक पदार्थ उन्नति के निमित्त होते हैं, राष्ट्र की शोभा होते हैं। घातक प्रायः अपने प्रतिद्वन्द्वी को नष्ट करने के लिए पशु, पक्षी, अग्नि, वायु आदि पदार्थों को ही माध्यम बनाता है। राष्ट्ररक्षक राजा, वैद्य आदि इन पदार्थों की सुरक्षा में भी तत्पर रहें, यह इन मन्त्रों में ईश्वर ने वैद्य, राजा आदि के मुख से राष्ट्र रक्षा के दायित्व को प्रकट कराया है तथा स्वयं ईश्वर पशु, पक्षी आदि सब में विद्यमान रहता है। जो इन पदार्थों को कष्ट देता है, उसे ही नष्ट कर देता है।

यां ते चक्रुः., अथर्व. ५/३१/२ मन्त्र का अर्थ है-जिस, **कृत्याम्**=कृत्या को, हिंसा क्रिया को, शत्रुओं ने, **कृकवाकौ**[1]=मुर्गे में, **अजे**=बकरा बकरियों में अथवा जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, **कुरीरिणि**=सींग वाले गौ आदि पशुओं में, **चक्रुः**=किया है। **याम्**=जिस, **कृत्याम्**=घातक प्रयोग को, काटने मारने की क्रिया को, **अव्याम्**=भेड़ में किया है, उस घातक, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को मैं ईश्वर, राजा आदि उसकी ओर ही ले जाता हूँ, दण्डित करता हूँ।

---

१. *कृक कृक वक्तीति कृकवाकुः । कृकवाकोः पूर्वं शब्दानुकरणं वचेरुत्तरम् ।* *निरु. १२/२/१३*

मन्त्र का तात्पर्य है जो कोई पृथिवी लोक की व राष्ट्र की सम्पत्ति को नष्ट करने के लिए मुर्गा, भेड़ आदि पशुओं को यदि माध्यम बनाता है, तो उन माध्यमों से ईश्वर, राजा आदि उस घातक को ही नष्ट कर देते हैं।

यां ते चक्रुरेकशफे., अथर्व. ५/३१/३ मन्त्र का अर्थ है-जिस, **कृत्याम्**=हिंसा को, शत्रु, **एकशफे**=एक अनफटे खुरवाले घोड़े, खच्चर आदि पशुओं में तथा **उभयादति**=दोनों ओर जबड़े वाला कुत्ता, बिल्ली आदि में, जिस **कृत्याम्**=मारने की क्रिया को गधे में करते हैं, उस क्रिया को मैं ईश्वर, राष्ट्ररक्षक राजा शत्रु के लिये करता हूँ।

यां ते चक्रुरमूलायाम्., अथर्व. ५/३१/४ का अर्थ है-जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, उन शत्रुओं ने, **अमूलायाम्**=अग्निशिखा[1], कलिहारी[2] नामक औषधि में, जिस **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, **वलगम्**[3]= सुरंग, भूमिगर्भ आदि गुह्य स्थानों में (**वल वल्ल संवरणे संचलने च**, वलते वल्लते वा इति वलवा) स्थानों में और, **नराच्याम्**=मनुष्यों के द्वारा प्राप्तव्य (**नरैः अश्चितव्या तस्याम्**) मनुष्यों के द्वारा बनायी गई औषधि में अथवा मनुष्यों से व्याप्त (**अश्चू गतिपूजनयोः**) नगरी में एवं जिस, **कृत्याम्**=हिंसन कार्य को शत्रुओं ने खेत में खलिहान में किया है, उस हिंसा कार्य को मैं

---

१. *अमूला अग्निशिखावृक्षः। शब्दकल्पद्रुम, भाग-१, पृ.८६*

२. *(i) कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्प्यपिविशल्याऽग्नि शिखाऽनन्ता वह्निवक्ता च गर्भनुत्। कलिहारी सरा कुष्ठ शोफार्शो व्रनशूलजित्॥*
भावप्रः नि. गुडु.व.८०/३०, पृ.३१२
(ii) लोक में वेदोक्त अमूला औषधि को अग्निशिखा, कलिहारी, लाङ्गली, बंगाली में विषलाङ्गला, उर्दू में कुलहर आदि कहा जाता है। यह कुष्ठ, शोध, घाव, पीड़ा आदि को दूर कर देती है।

३. *(i) वलग घात करने का वह प्रयोग है, जिससे न तो वायु आदि विषदूषित किये जाते हैं, न ग्राम नगर, मकान आदि तोड़े जाते हैं और न भोजन, जल आदि में विष दिया जाता है, अपितु इस प्रयोग में भूमि आदि में गाड़, दबा, छिपाकर किया जाता है। यह प्रयोग उपद्रवकारी, स्तम्भकारी तथा कालान्तर में हानि पहुँचाने वाला होता है और वह हानि स्थान विशेष व व्यक्ति विशेष की ही होती है।*
(ii) वलग शब्द की विशेष व्याख्या पृष्ठ ११४, १५१ में द्रष्टव्य है।
(iii) वल्+गक्=वलगः, मुदिग्रोर्गग्गौ, उणा.१/१२८ इति गम् प्रत्ययः, अमारागमश्च।

ईश्वर, कृषक, वैद्य दूर करता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है शरीर, राष्ट्र आदि की रक्षा हेतु औषधि विशेषों, अन्नोत्पत्ति स्थानों की रक्षा नितान्त आवश्यक है। तत्तत सम्बन्धित शक्तियों के पोषक, समर्थक पदार्थों की रक्षा करनी चाहिए।

यां ते चक्रुः., अथर्व. ५/३१/५ मन्त्र का अर्थ है-जिस **कृत्याम्**=हिंसन कार्य को, उन घातकों ने, **गार्हपत्ये**=गार्हपत्य अग्नि यानी रसोई की अग्नि में, **पूर्वाग्नौ**=पूर्व दिशा में स्थापित आहवनीय अग्नि में करते हैं, जिस, **कृत्याम्**=हिंसा कार्य को घर में आग लगाने के द्वारा करते हैं उस हिंसा क्रिया को, **पुनः**=वापस हिंसक को ही मैं गृहस्थ, राजा आदि प्राप्त कराता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है गृहपति, राजा आदि गृहों व गार्हपत्य आदि अग्नियों की सावधानी से रक्षा करें, जिससे घात करने वाले शत्रु गृहों को तथा अग्नियों को घात का निशाना न बना सके।

यां ते चक्रुः सभायाम्., अथर्व. ५/३१/६ मन्त्र का अर्थ है-जिस **कृत्याम्**=हिंसा कर्म को, शत्रु सभा में करते हैं व सभा संसद को बम, बारुद आदि से उड़ा देना चाहते हैं, जिस, **कृत्याम्**=हिंसा कर्म को, **अधिदेवने**=क्रीडा स्थल, उपवन आदि में (दिवु क्रीडा विजिगीषाहारद्युतिस्तुतिमोदम-दस्वप्नकान्ति-गतिषु) **याम्**=जिस, **कृत्याम्**=हिंसा को, **अक्षेषु**=गृह, समाज आदि के व्यवहारों में (**अशेर्देवने**, उणा. ३/६५) करते हैं, उन सभी हिंसा की क्रियाओं को पुनः मैं राजा करने वालों की ओर ही करता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य हुआ राजा को चोकन्नी दृष्टि से क्रीडा, वन, उपवन के स्थलों एवं गृह आदि के समस्त व्यवहारों की रक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे शत्रु क्रीडा आदि माध्यम से राष्ट्र की किसी भी प्रकार की हानि न कर सके।

प्रकृत मन्त्र के **अधिदेवने** शब्द का तथा **अक्षेषु** शब्द का उपेन्द्र राव तथा तत्सदृश भाष्यकार जन **अधिदेवन**=जुआ का खेल, **अक्ष**=पासे यह अर्थ करते हैं, उनका यह अर्थ प्रकरण से असंगत तथा प्रकरण के विरुद्ध है। मन्त्र में जब राजा के मुख पर से हिंसा कर्म के, **प्रति हरामि**=हटाने की बात

कही जा रही है। तब इस हिंसा के हटाने के प्रसंग में जुआ और उसके पासे इस अर्थ की संगति निरर्थक है। जुए और पासे राज्य की हानि करते हैं, यह दुर्योधन और पाण्डवों के जुए खेलने के इतिहास से सुस्पष्ट ही है।

यां ते चक्रुः सेनायाम्., अथर्व. ५/३१/७ मन्त्र का अर्थ है जिस, **कृत्याम्**=मारने के कर्म को, सेना को भड़का कर, लालच देकर सेना के द्वारा करते हैं, जिस हिंसा क्रिया को, **इषु आयुधे**=बाण आदि शस्त्रों में विष का प्रयोग करके करते हैं, जिस हिंसा क्रिया को, **दुन्दुभौ**=दुन्दुभि=नगाड़ा आदि वाद्यों को माध्यम बनाकर करते हैं, उन सब हिंसा प्रकारों को हिंसा करनेवाले शत्रु के प्रति ही करता हूँ।

मन्त्र का भाव है विजय के साधन सेना, धनुषबाण, शस्त्र तथा दुन्दुभि आदि होते हैं। उन साधनों पर विष प्रयोग कर अथवा अपने अधिकार में लेकर बगावत करके, फूट डालकर, दुन्दुभि बजाकर, विजय की घोषणा कर, यदि शत्रु घात कर देता है, तब शत्रु के ऐसा करने पर राजा, सेनापति आदि उस हिंसा क्रिया को उस शत्रु के प्रति करें।

यां ते कृत्यां कूपे., अथर्व. ५/३१/८ मन्त्र का अर्थ है-जिस, **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, **कूपे**=विष डालकर कुँए में वे शत्रु करते हैं और, **श्मशाने**=श्मशान, दाहकर्म के स्थानों में भूमि खोदकर बारुद गाड़ते हैं, जिस **कृत्याम्**=हिंसा क्रिया को, **सद्मनि**=रहने के स्थानों में विष व अग्नि लगाकर करते हैं, उस क्रिया को मैं राजा, गृहपति आदि उस शत्रु के प्रति ही ले जाते हैं, करते हैं।

मन्त्र का भाव है यदि शत्रु हिंसा करने के लिए पेये स्थान कूप, जलाशय आदि श्मशान व गृह आदि को हिंसा के केन्द्र बनाता है तो प्रतीकार रूप में राजा, गृहपति आदि को भी शत्रु पर घात करना चाहिये एवं कूप आदि की रक्षा का सुप्रबन्ध करना चाहिये।

यां ते चक्रुः, पुरुषास्थे., अथर्व. ५/३१/९ मन्त्र का अर्थ है-जिस हिंसन कर्म को, **पुरुषास्थे**=मृत पुरुष की अस्थियों में विषादि लेप कर शत्रु करते हैं और, **संकसुके अग्नौ**=शव को विनष्ट करने वाली अग्नि में (**सम+कस**

गतिशासनयोः) पोटाश आदि को फेंक कर हिंसा क्रिया करते हैं, जिस हिंसा क्रिया को, **म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादम्**=जाज्वल्यमान (**म्रुचु गत्यर्थाः**), निःशेष दाह करने वाली, मृत के मांस को खाने वाली अग्नि में करते हैं, उन सब प्रकार की हिंसा क्रिया को मैं राजा, सेनाध्यक्ष, गृहपति पुनः शत्रुओं के प्रति पहुँचाता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है कि गृह, राष्ट्र आदि रक्षक जनों का ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि **शत्रु हिंसा के कार्य को मृत शरीर और चिता की अग्नि को साधन न बना पाये।** शत्रु श्मशान में जलती अग्नि में विस्फोटक पदार्थ डालकर अस्थि चयन करने वाले जनों को तथा मृत शरीर पर विष लगाने पर अर्थी उठाने वालों को नष्ट कर सकते हैं। यदि धोखे से शत्रु मृत शरीर को माध्यम बना ले, तो उनसे ही अस्थि आदि चयन कराने चाहिए, जिससे शत्रु ही मरे।

अपथेना., अथर्व. ५/३१/१० मन्त्र का अर्थ है-यदि **एनाम्**=इस हिंसा के साधनों, कार्यों व सेना को शत्रु, **अपथेन**=कुपथ अथवा निश्चित मार्ग रहित तरीके से लाया है, तो उस हिंसा क्रिया को, **पथा**=निश्चित मार्ग में ले जा कर हम राजा सेनाध्यक्ष उन सैनिकों को राज्य से बाहर करते हैं, वापस कर देते हैं अथवा **अधीरः**=निर्बुद्धि पुरुष, **अचित्त्या**=ना समझी से, **मर्या धीरेभ्यः**=अबुद्धिमान्, मानसिक चिन्ताओं से ग्रस्त, अधीर व्यक्ति प्रजा वर्ग के लिए हिंसा क्रिया का संग्रह करता है, लाता है, उस हिंसा क्रिया को हम राज्य से दूर करते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य है कि शत्रु यदि अनीति से, कुत्सित मार्ग से हिंसा की स्थिति उत्पन्न करता है अथवा अधीर अज्ञानी की नासमझी से हिंसा का कारण बनता है, तो उसे **पथा**=राज्यनीति की व्यवस्था से दूर करे।

यश्चकार., अथर्व. ५/३१/११, ४/१८/६ मन्त्र का अर्थ है-जो शत्रु किसी पर हिंसा क्रिया को करता है, वह हिंसा करने में समर्थ नहीं होता, अपितु वह अपने पैर की अंगुली को ही काट लेता है, वह **अभगः**=अभागा हम भाग्यशालियों के लिए भद्र ही कर देता है।

मन्त्र का तात्पर्य है जो छल, कपट आदि द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता

है, वह दूसरों को कष्ट देने में समर्थ नहीं होता, अपितु वह अपना ही पैर काट लेता है। जैसा की लोक में प्रसिद्ध है **'अपने पैर पर कुलाड़ी मारना।'** हिंसा करने वाला ऐसा करके हमारे लिए कल्याण ही करता है। कल्याण करने का भाव है, राज्य व्यवस्थापक राजा आदि उसे दण्ड देते हैं और वह घातक आजीवन दुःखी ही रहता है।

कृत्याकृतम्., अथर्व. ५/३१/१२ मन्त्र का अर्थ है-**इन्द्रः**= ऐश्वर्यशाली परमात्मा, राजा आदि बलशाली पुरुष, औषधि आदि पदार्थ, **कृत्याकृतम्**=हिंसा करने वाले को, **वलगिनम्**[1]=छुपकर बम आदि से घातक करने वाले को, **मूलिनम्**=प्रतिष्ठा सम्पन्न शत्रु को (**मूल प्रतिष्ठायाम्**), **शपथेय्यम्**=क्रोध करने वाले को (**शपथेयेषु आक्रोशेषु साधुः, तत्र साधुः**, पा. ४/४/९=इति यत् प्रत्ययः) **महता वधेन**= महान् दण्ड से, महावधकारी शस्त्र से, **हन्तु**=नष्ट करे तथा, **अस्तयाः इष्वा**=फेंकी जाने वाली गतिशील गोली या बाण से, **अग्निः**=अग्रणी राजा, **विध्यतु**=ताड़ित करे।

मन्त्र का तात्पर्य है कि राष्ट्र रक्षक योद्धा राजा सम्राट् आदि खोज-खोज कर प्रजापीड़क शत्रुओं को दण्ड दे और पीड़ित करे। इस मन्त्र में **तान्त्रिकों के शाप देना कोई संकेत नहीं है**, जिससे उपेन्द्र राव का कथन सत्यापित हो सके।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण सूक्त में राष्ट्र रक्षा के विभिन्न उपाय निर्दिष्ट हैं तथा शत्रु किन-किन माध्यमों से घात कर सकता है, इसका परिज्ञान प्रतिपादित किया गया है। एक दूसरे को नष्ट करने के लिए परस्पर शत्रुओं द्वारा गृह, राज्य के पशु पक्षी, गृह, राज्य, सभा आदि ही विष **कृत्याओं**=घातों के माध्यम बनाये जाते हैं। इनकी **सुरक्षा** का सूक्त में **वर्णन** है, यह मन्त्रार्थों से स्पष्ट है। चिकित्सा शास्त्र सुश्रुत के कल्पस्थान[2] में भी अन्न पान आदि पदार्थों को ही

---

१. वलग शब्द का अर्थ व व्युत्पत्ति पृष्ठ ११४, १३७ में द्रष्टव्य है।

२. असतामपि सन्तोऽपि चेष्टां कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मात् परीक्षणं कार्यं भृत्यानामाहतैर्नृपैः॥
अन्ने पाने दन्तकाष्ठे तथाऽभ्यङ्गेऽवलेखने। उत्सादने कषाये च परिषेकेऽनुलेपने॥
स्रुक्षु वस्त्रेषु शय्यासु कवचाभरणेषु च। पादुकापादपीठेषु पृष्ठेषु गजवाजिनाम्॥
विषजुष्टेषु चान्येषु नस्यधूमाञ्जनादिषु। लक्षणानि प्रवक्ष्यामि
चिकित्सामप्यनन्तरम्॥ सुश्रु. कल्प. अन्नपान. १/२४-२७

विष प्रयोग का स्थान बताया गया है। इन गृह, परिवार, राज्य की रक्षा के सूक्त में बताये गये उपाय एवं शत्रु को मारना, जादू टोना नहीं है, यथार्थ को न समझना ही तान्त्रिक जादू टोना है, क्योंकि तान्त्रिकों की चर्चा में डूबे उनके पचड़े में पड़े जन नशे में चूर रहते हैं। यथार्थ समझना उनके वश की बात नहीं होती ?

टोना के समस्त रूप, की समीक्षा

इस शीर्षक में तान्त्रिक **कृत्या**=जादू टोना की सिद्धि के लिए अथर्ववेद के १० वें मण्डल के ३२ मन्त्रों वाले प्रथम सूक्त की उपेन्द्र राव ने टांग खींच डाली और सूक्त की महिमा में लिखा-'कृत्या परिहरण का तीसरा एवं अन्तिम सूक्त दशमकाण्ड का पहला ही है। उपसंहार के रूप में इस सूक्त में कृत्या सम्बन्धी, अर्थात् जादू टोना सम्बन्धी, सभी बातें आ गयी हैं। पृ. ४४।

तान्त्रिक जादू टोना सम्बन्धी इतनी मात्र अभिव्यक्ति से उपेन्द्र राव को रास नहीं आया, मन्त्रों के विषयों को भी बताना उचित समझते हुए राव आक्षेपक ने यह भी लिखा-'इन मन्त्रों में हिंसा है, स्त्री शूद्रों के लिए तिरस्कार है, अभिचार है, दुर्भगा, मृतवत्सा स्त्री है, वधू है, पितर हैं, यज्ञ है, पाप है और शाप भी हैं। अधिकांश मन्त्र कृत्या को सम्बोधित करके कहते हैं- 'तू प्रयोगकर्ता के पास लौटकर उसे ही मार डाल !'' पृ. ४४

प्रकृत सूक्त की इस महिमा के अनन्तर अहंकारमयी वाणी में श्री राव ने लिखा-'ऊपर इतने मन्त्रों का आशय लिख दिया गया है। मन्त्रार्थ चाहने वाले लोग किसी भी निष्पक्ष,संस्कृतज्ञ विद्वान् से सम्पर्क कर सकते हैं। पृ.४४

आक्षेपक की **कृत्या**=जादू टोना की जंजीर में संगृहीत हुये मन्त्र हैं-

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ अथर्व.१०/१/१ ॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ अथर्व.१०/१/२ ॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ अथर्व.१०/१/३ ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदुदूषम्।

यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते् पुरुषेषु ॥ अथर्व.१०/१/४, ४/१८/५ ॥
अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ अथर्व.१०/१/५ ॥
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो न पुरोहितः ॥
प्रतीचीःकृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ अथर्व.१०/१/६ ॥
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽ भिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥ अथर्व.१०/१/७ ॥
यस्ते परुंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽ यनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ अथर्व.१०/१/८ ॥
ये त्वा कृत्वा लेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३द कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसर तेन त्वा स्नपयामसि ॥
अथर्व.१०/१/९ ॥
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ अथर्व.१०/१/१० ॥
यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्याइत् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ अथर्व.१०/१/११ ॥
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥
अथर्व.१०/१/१२ ॥
यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ अथर्व.१०/१/१३ ॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ अथर्व.१०/१/१४ ॥
अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽ भिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
ते नाभि याहि भञ्जत्यनस्तीव गहिनी विश्वरुपा कुरुटिनी ॥ अथर्व.१०/१/१५
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवितं नाव्या ३ अति दुर्गाः स्त्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥
अथर्व.१०/१/१६
वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽ प्रजास्त्वाय बोधय ॥ अथर्व.१०/१/१७
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।

अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥

अथर्व.१०/१/१८

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥

अथर्व.१०/१/१९

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूँषि।
उत्तिष्ठैव परे हीतोऽ ज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ अथर्व.१०/१/२०

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥ अथर्व.१०/१/२१

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ अथर्व.१०/१/२२

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ अथर्व.१०/१/२३

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ अथर्व.१०/१/२४

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ अथर्व.१०/१/२५

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ अथर्व.१०/१/२६

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ अथर्व.१०/१/२७

एतद्धि शृणु मे वचोऽ थेहि यत एयथ। यस्त्वा चकार तं प्रति ॥अथर्व.१०/१/२८

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लधीयसी भव ॥

अथर्व.१०/१/२९

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ अथर्व.१०/१/३०

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणऽ प्रजाम्।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥ अथर्व.१०/१/३१

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥

अथर्व.१०/१/३२ ॥

वाह ! **ब्लूम फील्ड, ह्विटनी, कीथ, मैक्समूलर** आदि पाश्चात्यों **की झूठन** में वेदार्थ का आनन्द लेने वाले मन्त्र विनियोक्ता कौशिक, वैतान आदि सूत्रकारों एवं पितामह **सायणाचार्य की अंगुली** पकड़कर खड़े होने का सामर्थ्य प्राप्त करने वाले उपेन्द्र राव जी का इस सूक्त विषयक क्या बढ़िया अनुसन्धान है ? साधुवाद !

चूँकि **दूष्या दूषिरसि.**, अथर्व.२/११/१-५, **ये पुरस्तात्.**, अथर्व.४/४०/१-८, **ईशानां त्वा.**, अथर्व.४/१७/१-८. **समं ज्योतिः.**, अथर्व.४/१८/१-८, **उतो अस्य बन्धुकृत्.**, अथर्व.४/१९/१-८, **सुपर्णस्त्वा.**, अथर्व.४/१५/१-१३, **यां ते चक्रुः.**, अथर्व.५/३१/१-१२, **अयं प्रतिसरः.**, अथर्व.८/५/१-२२, **यां कल्पयन्ति.**, अथर्व.१०/१/१-३२, **इति महाशान्तिम् आवपते** (कौ.सू.५/३) ऐसा लिखकर इस पाठ में कौशिक सूत्रकार ने अन्य सूक्तों के साथ **यां कल्पयन्ति** दशम मण्डल के इस प्रथम सूक्त वो भी कृत्या दूर करने के शान्ति जल में विनियुक्त किया है, अतः सायणाचार्य व अन्य पाश्चात्त्य वैदेशिकों ने भी कृत्या दूरीकरण के शान्ति जल में इन मन्त्रों को विनियुक्त कर लिया। सायणाचार्य ने कृत्या परिहरण के इन सूक्तों का संग्रह अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के ११ वें सूक्त में किया है। **अयमेव कृत्या परिहरणगणः** वहाँ ऐसा वाक्य लिखकर कृत्या परिहरण गण निर्दिष्ट किया है।

महाजनो येन गतः स पन्थाः, महा.वन २४/८२, इन महाजनों का मार्ग उपेन्द्र राव न पकड़ते, तो जादू टोना वाले तान्त्रिकों में उनकी प्रसिद्धि कैसे हो पाती ?

उपेन्द्र राव ने प्रकृत सूक्त के साथ जो कुछ भी तान्त्रिक जादू टोना का अभिसम्बन्ध जोड़ा है, वह केवल गप्पबाजों की गप्प ही गप्प है। प्रकृत सूक्त में तथा अन्य मन्त्रों में **जादू टोना शब्द** तो कहीं आया ही **नहीं है**, हाँ ! **कृत्या** शब्द अवश्य स्वतन्त्र रूप में तथा **कृता, कृतम्, दूषणम्** आदि शब्दों के साथ आया है। इस वेदोक्त **कृत्या** शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है ? **कृत्या** शब्द की क्या व्युत्पत्ति है ? **कृत्या** के कितने प्रकार हैं ? आदि

कृत्या शब्द संबन्धी विषयों का विवेचन विस्तार पूर्वक **प्रतिसरो मणिः**[1], **वेदों में प्रवेश समग्र कृत्या प्रपञ्च की समीक्षा**[2], **वेदकाल में भी डायन, की समीक्षा**[3], **कच्चा मांस, कच्चा पात्र, मिश्रधान्य, की समीक्षा**[4] में किया गया है।

कृत्या[5] प्रसङ्ग के वेदोक्त **कृत्या परिहरण**[6] शब्द का भी तान्त्रिकों में जो दहसत, भयभीतक, डरावना आदि अर्थ समझा जाता है, वह अर्थ नहीं है। हिंसा प्रयोगों में **कृञ् हिंसायाम्, कृती छेदने** धातुओं से निष्पन्न **कृत्या** शब्द का हिंसा, हिंसा के साधन, कर्ता आदि ही अर्थ हैं एवं **परि** पूर्वक **हृञ् हरणे** धातु से निष्पन्न **परिहरण** का अर्थ है-की ओर ले जाना। इस प्रकार **कृत्यायाःपरिहरणम् इति कृत्यापरिहणम्** इस समस्त **कृत्यापरिहरण** शब्द का अर्थ है-**कृत्या**=हिंसा करने वाने जन, हिंसा करने वाले कार्य, हिंसा के साधन आदि को, **परिहरणम्**=उस हिंसा की ओर ही ले जाना, करना तथा हिंसा करने कराने वाले मनुष्यों, शस्त्रों व रोगों को दूर कर उनसे सुरक्षित होना। इस आत्म रक्षा, राष्ट्र रक्षा के कार्य को यह जादू टोना नाम देना अबुद्धिमत्ता का ही द्योतक है। हिंसकों, घातकों को उलटकर खदेड़ा जाये, राष्ट्र स्वात्म की रक्षा की जाये, इसकी विस्तृत व्याख्या '**जादू टोना के योग्य प्राणी-पदार्थ-स्थान, की समीक्षा**' में कर दी गई है। वेदों में अन्यत्र भी शत्रुओं को खदेड़ने की आज्ञा राष्ट्ररक्षा हेतु दी गई है। उदाहरणहक् मन्त्र है-

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु।

अथर्व.८/५/५॥

अर्थात् **ते मे**=वे मेरे, **देवाः पुरोहिताः**[7]=दिव्य गुण वाले पुरोगामी,

---

१. पृष्ठ ६७॥ २. पृष्ठ १११, ११२॥

३. पृष्ठ १२३॥ ४. पृष्ठ १३०-१३४॥

५. कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

६. (i) पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि। अथर्व. ५/१४/८
(ii) कृत्यापरिहरण का अर्थ विशेष पृष्ठ १२६ में द्रष्टव्य है।

७. पुर एनं दधति। निरु. २/३/१२

हितकारी जन, **प्रतीचीः**=अपनी ओर आने वाली शत्रुसेना की, **कृत्याः**=हिंसक सेना व क्रियाओं को, **प्रतिसरैः**=उनके प्रति जाने वाली **मण्डल**=घेरे में आबद्ध, संगठित सेना के द्वारा, **अजन्तु**=लौटा दें, दूर कर दें।

मन्त्र का तात्पर्य है कि शत्रु द्वारा की जा रही हिंसा को **प्रतिसरैः**=शत्रु पर प्रतीकार रूप वार करने वाली सेना के द्वारा लौटाया जाना चाहिये। इस प्रतीकार से ही राष्ट्र जनों की सुरक्षा होती है। शत्रुनाशन का वेदोक्त प्रतिसर का कार्य वर्तमान में युद्ध के लिए बने टैंक, टैंकर तथा गगन भेदी तोपों, विमानों द्वारा किया जाता है।

राष्ट्ररक्षा में शत्रु **प्रतीकार**=आक्रमणकारी शत्रु को खदेड़ने का कार्य बहुत बड़ा साधन है, अतः राज्यनीति के प्रतिपादक ग्रन्थों में अन्य राज्य सम्बन्धी उपायों के साथ शत्रु पर प्रतिहिंसक प्रयोग को भी उपाय माना है। यथा-

एतैः कृत्वा प्रतीकार स्वसैन्यानामऽथात्मनः।

अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान्॥ कौटि. प्र. १७९ अधि.१४अ.४-१३

अर्थात् अपनी सेना तथा अपनी सेना की रक्षा के लिए शत्रुओं पर पूर्वोक्त पदार्थों से प्रतीकार करके, विषैले धुँए तथा विषैले दूषित पानी का शत्रुओं पर प्रयोग करे।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविशगराणां प्रतीकारे......गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च प्रतीकारः[१]। कौटि.प्र.१७९, अधि.१४, अ.४/१॥

अर्थात् अपने ऊपर दूसरे शत्रुओं द्वारा किये गये दूषक तथा विष के घातक, प्रयोगों के प्रतीकार की क्रिया में स्त्रियों के अङ्ग प्रक्षालन और सेना में फैले विष का प्रतीकार करना चाहिये।

शत्रुओं का **प्रतीकार**=खदेड़ना रूप कार्य स्वार्थ साधक तान्त्रिकों का जादू टोना नहीं है, रक्षा का स्तम्भ है, यह सुस्पष्ट है।

---

१. *स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्तशठ गोजी शिरीषपाटलीबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेतावरणक्वाथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः।*

जादू टोना का अर्थ

अब रही बात जादू **टोना** शब्दों की। जादू टोना शब्द उपेन्द्र राव की वह डुगडुगी है, जिस डुगडुगी को राव ने अथर्ववेद के प्रति प्रसङ्ग में डटकर पीटा है एवं स्वयं भी जादू टोना शब्दों के साथ खूब कूद फाँद की है।

तान्त्रिकों एवं तान्त्रिकों के चेलों द्वारा लोक में प्रचलित जादू टोना शब्द फारसी, अरबी, तुर्की भाषा के माने जाते हैं। पर उनका सम्बन्ध वेद के रक्षा, चिकित्सा आदि प्रसङ्गो से जोड़ा जाता है। वेद से जोड़े गये फारसी, अरबी आदि भाषा के **जादू** शब्द का अर्थ फारसी कोषों में **बाजीगरी के खेल**, तमाशे, अमानुषिक करिश्मे, हिंसा, वशीकरण, परघात, हाथ की सफाई किया गया है।

ये **जादू टोना** शब्द **वेदों में कहीं नहीं** आये हैं, पर यदि इनका सम्बन्ध वेद से जोड़ा जाएगा, तब इन शब्दों को फारसी आदि भाषा का न मानकर दोनों ही शब्दों को वेद एवं वैदिक शब्दों का अपभ्रंश निश्चय से मानना पड़ेगा। **यातु, यादु** एवं **तोण** शब्दों के **जादू टोना** अपभ्रंश शब्द हैं, यह स्वीकार करना होगा। **यातयति वधकर्मा**, निघ. २/१९, **यादुरिति उदकनाम**, निघ. १/१२ इन नैघण्टुक धातु व प्रतिपदिकों से तथा **या प्रापणे** धातु से अभिनिष्ठित **जादू टोना** शब्द हैं यह समझना होगा।

वेद एवं वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध **यातु** एवं **यादु** शब्दों की निष्पत्ति इस प्रकार होती है। जिनमें **यातु** शब्द की दो निष्पत्तियाँ हैं-

१. याति+उ=**यातुः**, नैघण्टुक वधकर्मा णिजन्त **याति** धातु से बाहुलक औणादिक उण् प्रत्यय द्वारा **यातु** शब्द सिद्ध होता है।

२. या **प्रापणे** धातु से **कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च**, उणा. १/७३ इस औणादिक सूत्र द्वारा तु प्रत्यय करके **यातु शब्द** निष्पन्न होता है। **यातु शब्द की निष्पत्ति है**-वैदिक कोष निघण्टु में **जलवाचक यादु शब्द पठित है** जो **या प्रापणे, डुदाञ दाने** धातुओं से उण् प्रत्यय द्वारा **या+दा=उण्=यादु** शब्द बनता है।

यातु एवं यादु शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ हैं-

यातयति वधं करोति इति यातुः, येन यातयते सः यातुः, यातयनं वा यातुः ।

अर्थात् जो हिंसा करता है, जिसके द्वारा हिंसा की जाती है अथवा जो हिंसा व हिंसा का भाव है, वह यातु संज्ञक होता है।

याति उपलब्धिं करोति प्राप्नोति सः यातुः, येन यात्यते सः यातुः, यानं वा यातुः ।

अर्थात् जो प्राप्त करता है, जिसके द्वारा प्राप्त किया जाता है अथवा जो प्राप्ति व प्राप्ति का भाव है, वह यातु कहा जाता है।

या+दा+उ=यादुः । यानं गतिं ददाति इति यादुः, येन यातिः गतिः दीयते सः यादुः, यानं गतिं दानं वा इति यादुः ।

अर्थात् जो गति देता है, जिसके द्वारा गति दी जाती है अथवा जो गति की प्राप्ति, गति का भाव है उसकी **यादू** संज्ञा होती है।

इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि जिस किसी भी रोग, शत्रु, विपत्ति की हिंसा करने वाले, हिंसा के साधन, हिंसा कर्म करने के प्रयत्न आदि **यातु** कहे जाते हैं।

जिस किसी भी क्षेत्र की उपलब्धि करने वाले, उपलब्धि के साधन, उपलब्धि के कर्म आदि **यातु** संज्ञक होते हैं।

जिस किसी को भी गति देने वाले, गति करने के साधन, की जाती हुई गतियाँ यादु कही जाती है।

तात्पर्य हुआ **यातु** शब्द कर्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि अर्थों का वाचक है। **यादु** शब्द भी कर्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहयोगी आदि ही अर्थों का वाचक है।

इन **यातु यादु** दोनों शब्दों के अर्थों का प्रकरणानुसार नियोजन होता है, मनमाना नहीं। जब रोग, शत्रु, दुष्ट, कृमि आदि घातक, मारक पदार्थों का प्रसङ्ग होता है, तब हिंसा, वध अर्थ वाले **यातु** शब्द का सम्बन्ध होता है। जब धन, विद्या, औषधि, राज्य आदि प्राप्ति का प्रसङ्ग होता है, तब प्रापण, प्राप्ति, गति अर्थ वाले **यातु** शब्द सम्बन्धित होता है।

जब स्वास्थ्य, चेतना, स्फूर्ति, ताजगी आदि गुणों, क्रियाओं का प्रसङ्ग

होता है, तब **उदकवाची यादु** शब्द का सम्बन्ध लगता है।

इन विशिष्ट अर्थ वाले निष्पत्ति द्वयक **यातु** शब्द एवं **यादु** शब्दों का ही **अपभ्रंश जादू** शब्द है। जिसके वही अर्थ समझने होंगे, जो **यातु और यादु** शब्दों के हैं।

उपेन्द्र राव एवं अन्य आक्षेपक जादू का सम्बन्ध वेद से जोड़ते हैं, तो उन्हें **जादू** शब्द को वैदिक जल वाचक **यादु** शब्द का अपभ्रंश तो **मानना** ही पड़ेगा, यह चाहे **सत्यता** से मानें, चाहे **वक्रता** से। लोक में **जादूगरी की महत्त्वपूर्ण क्रिया है**-मरे को जिला देना और यह कार्य जल पदार्थ करता है। वात, चोट, प्रहार, सर्पदंश, मृर्गी, शोक आदि में व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है, उस मूर्च्छा को हटाने के लिए जल के छींटे दिये जाते हैं। जल के छींटे पड़ते ही आतुर व्यक्ति शनैः-शनैः चैतन्य प्राप्त कर लेता है। **चैतन्य की प्राप्ति यादु=जादू का कार्य है** यानी **जल का कार्य है।** यह **यादु=जल कार्य ही लोक में जादू नाम** से **प्रतिष्ठित हुआ**, फिर पहुँच गया फारसी में, अपभ्रंश जादू शब्द के मूल **यादु** शब्द का अर्थ है जल तथा जल चिकित्सा।

टोना शब्द **तोणः**, शब्द का अपभ्रंश है। तोण शब्द तुण कौटिल्ये धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है। **तोण** शब्द की निष्पत्ति व अर्थ हैं-

यः तुणति कुटिलं गच्छति इति तोणः, येन तुण्यते सः तोणः, तोणनं वा तोणः।

अर्थात् जो कुटिल गति करता है, जिसके द्वारा कुटिल गति की जाती है अथवा जो कुटिलता, कुटिल चलना व कुटिलता का भाव है, वह **तोण**=टोना **कहा जाता है।**

तात्पर्य हुआ रोग, कृमि, शत्रु के निवारण में कुटिलता, वक्रता करने वाले पदार्थ, व्यक्ति, क्रिया, कर्म, अस्त्र, शस्त्र आदि पदार्थ, साधन हैं, उनकी **तोण**=टोना संज्ञा होती है।

इस प्रकार जादू टोना शब्दों के मूल शब्द **यातु, यादु** एवं **तोण** शब्द की व्युत्पत्तियों एवं अर्थों से सुज्ञात है कि **यातु, यादु** शब्दों का अपभ्रंश **जादू** शब्द रोग, रोगकृमि, शत्रु, हिंसा, हिंसा का साधन तथा जल, जल चिकित्सा का वाचक है। तथा **तोण का** अपभ्रंश **टोना** शब्द का भी रोग, कृमि, शत्रु,

हिंसा, हिंसा के साधन, जल, व जल प्रोक्षण व चिकित्सा का वाचक है। लोक प्रसिद्ध तान्त्रिकों की बीभत्स जादू टोना नाम से की जाने वाली क्रियाओं के वाचक जादू टोना शब्द नहीं हैं। और न इन शब्दों से तान्त्रिकों की मारण, उच्चाटन की क्रियायें ज्ञापित होती हैं।

कृत्यापरिहरण आदि शब्द शरीर, राष्ट्र आदि की सुरक्षा व आरोग्य के साधन भूत प्रयोगों के अभिद्योतक व वाचक हैं। उपेन्द्र राव का अथर्ववेद में जादू टोना का आक्षेप अज्ञता, मूलक है।

प्रसङ्गगत सूक्त (अथर्व. १०-१) में **कृत्या**=हिंसा के कितने प्रकार हैं ? तथा शरीर, राष्ट्र, सभा, विवाह आयोजन आदि की सुरक्षा कैसे की जाये ? व्यक्ति अपना दायित्व किस प्रकार निर्वहन करे ? आदि विषयों का सुन्दर वर्णन है। सूक्त में **कृत्या**=औषधि आदि पदार्थों के विभिन्न निर्देश हैं। सूक्त के प्रथम अथर्व.१०/१/१, मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे कृत्या ! जो तू, **चिकित्सवः**=खनिज और वनस्पति आदि के ज्ञाता द्वारा, **याम्**=जिस, **विश्वरुपां हस्तकृताम्**=समस्त आकारों वाली और हाथों द्वारा बनायी गई है, तथा **वहतौ वधूम् इव**=विवाह करने वाले वर की सजी धजी वधू के समान तुझे, **कल्पयन्ति**=बनाते हैं। वह, **कृत्या**=हिंसा क्रिया हमसे दूर रहे, **एनाम् अप नुदाम**=सजी धजी बनी हुई इस कृत्या को दूर करते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य हुआ रोग व शत्रु द्वारा शरीर, राष्ट्र आदि के नाश एवं धोखा के लिए वधू के समान, **कृत्यायें**=हिंसा करने वाले बम आदि की आकृतियाँ बनायी हैं, जो बहुत सुन्दर लगती हैं, जिन्हें राजा, सेनापति आदि को दूर करना चाहिए, उनके शिकार कोई न बने। राजा उस **विश्वरुपा**=सजी धजी विषकन्या के सम्र्पक में न आये, मन्त्र में यह संदेश है, **तान्त्रिक हिंसा का कथन नहीं है।**

शीर्षण्वती., अथर्व.१०/१/३ मन्त्र का अर्थ है-**कृत्याकृता**=हिंसा, विनाशकारक साधनों का निर्माण करने वाले घातकों द्वारा, **सम्भृता**=बनायी गई, **विश्वरूपा**=विविध रूपा, **शीर्षण्वती**=सिर वाली, **नस्वती**

कर्णिनी=नाक, कान आदि अङ्गों वाली, **सा**=वह कृत्या, **आरात् एतु**=दूर जाये अथवा हमारे समीप आये तो **एनाम् अपनुदाम**=हम इस कृत्या को दूर फेंकते हैं।

मन्त्र की शिक्षा है कि जो शत्रु द्वारा अथवा शत्रु के घातकों द्वारा बनाये जाने वाले घातक बम आदि साधन हैं, वे सिर, नाक, कान वाली यानी मेंढक, मच्छली आदि आकृतियों में बनाये जाते हैं। राष्ट्ररक्षकों को उन सिर, नाक रूपों वाली **कृत्या**=बम आदि को नष्ट करना चाहिये। मन्त्र में तान्त्रिक जादू टोना की हिंसा का कथन नहीं है।

शूद्रकृता., अथर्व.१०/१/४ मन्त्र का अर्थ है-परस्पर योद्धाओं की विजय प्राप्ति के लिए, **शूद्रकृता**=शूद्रों द्वारा बनायी गई, **राजकृता**=राजाओं द्वारा रची गई, **स्त्रीकृता**=स्त्रियों के माध्यम से विषयुक्त भोजन, लेपन आदि द्वारा बनायी गई, **ब्रह्मभिःकृता**=ब्राह्मण, ज्ञानी द्वारा सुनियोजित की गई, **कृत्या**=हिंसा प्रयोग, **इव पत्या नुत्ता**=जैसे पति के द्वारा दूर की गई (**नुद प्रेरणे**), **जाया**=पत्नी, **बन्धुम्**=मातृकुल की शरण लेती है, वैसे वह घातक कृत्या, **कर्तारम्**=राजा आदि करने वालों को ही प्राप्त हो, उनकी ओर ही जाये।

मन्त्र का भाव है पापी को पाप का फल मिलता है यह कहावंत लोक में प्रसिद्ध है। वैसे ही परस्पर झगड़ा करने वाले जो एक दूसरे के लिये प्रयोग बनाते हैं, सिद्ध करते हैं, वे उन्हीं के लिए घातक होते हैं जैसे माता पिता के घर से आई कन्या तिरस्कृत होने पर मातृ पितृकुल को ही पहुँच जाती है।

उपेन्द्र राव ने **जाया पत्या नुत्तेव** मन्त्र चरण के संदर्भ में जो यह लिखा-'वेदकाल में भी पति लोग अपनी पत्नी को घर से निकाल देते थे, तब वह बेचारी वापस मायके में आ जाती थी।' पृ.४४॥ उपेन्द्र राव का यह कथन निरर्थक है। क्योंकि इस वाक्य से दो बातें निकल रही हैं-

१. पहले वेदकाल था, अब नहीं।

२. पहले पतिलोग पत्नी को घर से निकालते थे, अब नहीं।

दोनों ही बातें गलत हैं। वेद समय से प्रतिबद्ध ज्ञान नहीं है, वेदज्ञान तो

नित्य सार्वकालिक[1] ज्ञान है। पति अपने अहं के कारण किसी भी समय पत्नी को बाहर कर देते हैं, वर्तमान में तो यह कार्य अधिक हो रहा है। समाचार पत्रों में इसी के समाचार अधिक हैं, न्यायालयों में भी पति पत्नी के झगड़े बहुत हैं। पति का पत्नी के प्रति ऐसा वर्ताव करने का प्रायः पुरुषों का स्वाभाविक गुण है।

जाया पत्या नुत्ता कथन द्वारा तो केवल उपमा मात्र का निर्देश करना मन्त्र का उद्देश्य है।

अनयाऽहमोषध्या., अथर्व.१०/१/४, ४/१८/५ अथर्ववेद के इस मन्त्र में वैद्य मुख से अपामार्ग औषधि के द्वारा रोगनिवारण का निर्देश है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **अहम्**=मैं वैद्य, **अनया ओषध्या**=इस अपामार्ग[2] औषधि से (**अनयाऽहमोषध्या.**, अथर्व.४/१८/५), **सर्वाः कृत्या**=सब प्रकार के हिंसा करने वाले रोगों, रोगकृमियों को (**कृञ् हिंसायाम्**), **अदुदूषम**=नष्ट करता हूँ। **याम्**=जिस हिंसा क्रिया को, **क्षेत्रे**[2]=शरीर में करते हैं, जिस हिंसा व हिंसा प्रयोग को इन्द्रियों पर करते हैं, गौ आदि पशुओं पर करते हैं अथवा तुम्हारे, **पुरुषेषु**=बन्धुओं पर करते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य है वैद्य अपामार्ग औषधि से सभी प्रकार की **कृत्या**=हिंसा, घातों को शरीर व इन्द्रियों से दूर कर देता है। अपामार्ग औषधि **कृत्या**=सब रोगों को दूर कर सकती है।

अघमस्त्वकृते., अथर्व.१०/१/५ मन्त्र का अर्थ है-**अघम्**=हिंसा रूप पाप, **अघकृते अस्तु**=पाप करने के लिए ही होता है, **शपथः**=क्रोध, आक्रोश, अपशब्द (**शप आक्रोशे**), **शपथीयते**=क्रोध, आक्रोश करने वाले के ही हो जाता है हम अघ और शपथ को, **प्रति प्रत्यक् प्र हिण्मः**=हिंसा, आक्रोश करने वाले के प्रति ही भेजते हैं। **यथा कृत्याकृतं हनत्**=जिससे

---

१. *तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरुपनित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्। ऋ. ८/७५/६*
२. *परक्षेत्रं जन्मान्तरशरीरम्। काशिका ५/२/९२*
योगिनो विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तखर्तिनम्। कुमा. सं. ६/७७
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रामित्यभिधीयते। गीता. १३/२

वह अघ (पाप) व शपथ उन्हें ही नष्ट करते रहें।

मन्त्र का भाव है जो पाप, अपशब्द करते हैं, वे ही उन पाप और अपशब्दों के भागी बनते हैं। यानी उन्हें अपनी करनी का फल प्रतीकार रूप में मिलता है।

प्रतीचीनः,अथर्व.१०/१/६ मन्त्र का अर्थ है-**नः**=हमारा, **प्रतीचीनः** =शत्रुओं पर प्रत्याक्रमण करने वाला, उलटे में होने वाला (**प्रतीच्यां भवं, करणम्**), **आङ्गिरसः**=अग्रणी (**अङ्गिरा वा अग्निः**। शत.ब्रा.६/४/४/४), **अध्यक्षः**=जितेन्द्रिय, **पुरोहितः**=पुरोगामी है, वह, **कृत्याः**=शत्रु की हिंसा को, **प्रतीचीः आकृत्य**=लौटाकर, **अमून् कृत्याकृतः**=उन हिंसा करने वालों को, **जहि**=नष्ट करे।

मन्त्र का तात्पर्य है कि नगर, राष्ट्र की रक्षा करने वाले जो अग्रणी जितेन्द्रिय होते हैं, वे शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ होते हैं।

मन्त्र में आये **आङ्गिरसः** शब्द का उपेन्द्र राव ने तान्त्रिक जादू टोना के करने वालों का अध्यक्ष अर्थ किया है, वह उनकी भूल है। अङ्गिरा शब्द गतिशील[1], प्राणवान्[2] सामर्थ्यवालों का नाम है।

यस्त्वोवाच., अथर्व.१०/१/७ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=हिंसा! **यः त्वा उवाच**=जिसने तुझे यह कहा है, **परा इह एति**=दूरजा, **तम् अभि**=उसकी ओर, **प्रतिकूलम्**=विरोध में **उदाय्यम् अभि निवर्तयस्व**=उठे हुए शत्रु के समीप ही पहुँच, **अनागसः**=निरपराध, **अस्मान् मा इच्छः**=हम लोगों को न सता।

मन्त्र का तात्पर्य है परस्पर के युद्ध में निरपराधियों पर आक्रमण नहीं करना चाहिए। जो आक्रमणकारी हैं, वे ही हिंसा को प्राप्त हों। ईश्वर भी इसी व्यवस्था में दण्ड देता है।

यस्ते परुंषि., अथर्व.१०/१/८ मन्त्र का अर्थ है-हे हिंसक शत्रुसेना, **यः ते**=जो तुम्हारे, **परुंषि**=पर्व सेना संघों को, **संदधौ**=जोड़ता है, बनाता

---

१. *अगि गतौ।*
२. *प्राणो वा अङ्गानां रस। शत. ब्रा. १४/४/१/२१॥*

है, **इव**=जैसे, **ऋभुः**=बुद्धिमान् (**ऋभुरिति मेधावीनाम**, निघ.३/१५), **रथस्य**=रथ के अवयवों को, **धिया**=बुद्धि से जोड़ता है, बनाता है, इस रथ जोड़ने वाले के समान, **तम्**=उस हिंसा जोड़ने वाले को, **गच्छ**=प्राप्त हो, **तत्र ते अयनम्**=वहीं तेरा आश्रय हो, **अयं जनः**=यह निरपराधी जन, **ते अज्ञातः**=तुझ, **कृत्या**=हिंसा को ज्ञात न हो।

मन्त्र का तात्पर्य है जो हिंसा का प्रयोग बुद्धि द्वारा किया जाता है, वह हिंसा का प्रयोग भी हिंसा करने वालों को ही पीड़ित करता है।

ये त्वा., अथर्व.१०/१/९ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=हिंसा, **विद्वलाः**=जो ज्ञानवान्, सम्पत्ति वाले, **अभिचारिणः**=आक्रमण करने वाले, **त्वा कृत्वा**=तुझे बनाकर, **आलेभिरे**=स्वार्थसिद्धि करते हैं, उनके प्रति तुझ, **प्रतिवर्त्म**=हिंसा को उलटे मार्ग से, **पुनःसरम्**=लौटा देने का कार्य, **इदं शम्भुः**=यह शान्तिदायक है, **कृत्या दूषणम्**=हिंसा को नष्ट करने वाला है। **तेन त्वा**=उस हिंसा कर्म को लौटा देने वाले कार्य से तुझे हम, **स्नपयामसि**= नष्ट करते हैं, लपेट (ष्णै वेष्टने) देते हैं।

मन्त्र का भाव है कि शान्ति के लिये **कृत्या**=हिंसा साधनों को, क्रियाओं को लौटा देना उत्तम उपाय है। अर्थात् उन हिंसाओं का ईंट का जवाब पत्थर से न देकर दूसरे तरीके से भी दिया जाना चाहिये, जिससे शान्ति उत्पन्न होवे।

यद् दुर्भगाम्., अथर्व.१०/१/१० अथर्ववेद के इस मन्त्र में रोग पीड़ित अथवा पति की मृत्यु आदि के दुःखों से पीड़ित नारी के प्रति सहानुभूति का भाव हो। उसे मन, वचन, कर्म से पीड़ित करने वाले और दूसरे कारण माध्यम न बनें, इस विषय का प्रतिपादन है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **यत्**=जब, **दुर्भगाम्**=नष्ट सौभाग्यवाली, युद्ध आदि में मृत पति को, **प्रस्नपिताम्**=आचार शुद्ध वाली को, **मृतवत्साम्**=मृत सन्तान वाली को, **उपेयिम**=सब प्राप्त होवे तब, **सर्वं पापम्**=सब पाप, दुष्ट वृत्तियाँ, **मत् अप एतु**=हमसे दूर रहें तथा जिससे **मा**=मुझे, **द्रविणम् उपतिष्ठतु**=धन, बल प्राप्त हो सके।

मन्त्र का तात्पर्य है युद्ध, संग्राम आदि में जब किसी भी स्त्री का पति,

पुत्र मर जाये, तो उस माँ, बहिन से कोई दुर्व्यवहार न करे, अपितु उसके सहायक बने और स्वयं जितेन्द्रिय रूप, **द्रविणम्**=धन, बल के अधिकारी बनें।

उपेन्द्र राव मानते है कि इस मन्त्र का मृतपति, मृतपुत्र वाली स्त्री को देखने से पाप होता है, ऐसा अर्थ है। प्रमाण विरुद्ध यह तात्पर्य निकालना **व्यर्थ** है, क्योंकि मन्त्र में देखने अर्थ को व्यक्त करने वाला कोई पद नहीं है।

यत्ते पितृभ्यो., अथर्व.१०/१/११ अथर्ववेद के इस मन्त्र में पाप रहित शुद्ध आचरण कैसे बनता है ? इसका संदेश है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **यत्**=जब, **पितृभ्यः ददतः**=पितृयज्ञ करते हुए, अपने से बड़े माता पिता आदि को धनादि देते हुए, **वा**=अथवा, **यज्ञे**=अग्निहोत्र आदि यज्ञ में आहुतियाँ देते हुए, राष्ट्ररक्षा यज्ञ में दान देते हुए, **ते नाम**=तेरा नाम, **जगृहुः**=लेते हैं, तब, **इमाः औषधीः**=जो अन्न आदि वनस्पति आदि औषधियाँ अथवा औषधि रूप विद्वान् जन, **त्वा**=उस तुझे, **सर्व स्मात् संदेश्यात्**=सब व्यवहारों (**सम्+दिश्+घञ+ण्यञ**) के, **पापात्**=पाप से, **मुञ्चन्तु**=छुड़ा देते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य हुआ पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ करने वाले के लिए अन्न, जल आदि औषधियाँ तथा आचार्य, माता पिता आदि सुखमय वातावरण बनाते हैं। पाप, अज्ञान से सुरक्षित करते हैं।

इस मन्त्र में पापमोचन की बात पढ़कर उपेन्द्र राव को शंका हो गई कि 'ओषधियाँ पापों से कैसे छुड़ाएँगी ?

उपेन्द्र राव पाप किसे समझते हैं ? यह न तो स्पष्ट किया और न ही उनके वाक्य से समझ आ रहा है। महर्षि यास्क ने पाप[1] शब्द का इस प्रकार निर्वचन किया है-

पापः पाताऽपेयानाम्, पापत्यमानोऽवाङेव पततीति वा,
पापत्यतेर्वा स्यात्। निरु.५/१/८॥

अर्थात् अरक्षणीय का रक्षक कर्म पाप कहाता है, जिस कर्म से बार-

---

१. *पाप शब्द का विशिष्ट विस्तृत अर्थ पृष्ठ ८०, ८१ में द्रष्टव्य है।*

बार पतित होता हुआ अधोगति को पहुँचता है, वह पाप कहाता है, जिससे बार-बार गिरता है, वह पाप कहाता है।

महर्षि पाणिनि ने पाप की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा-

पान्ति रक्षन्ति अत्मानमस्मादिति पापम्।पानीविषिभ्यः पः. उणा.३/२३॥

अर्थात् अपने को जिससे बचाया जाता है, दूर किया जाता है, वह पाप कहाता है।

दोनों महर्षियों के इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि मन, वचन, **शरीर**=क्रिया आदि से किये जाने वाले कर्म पाप संज्ञक होते हैं। पाप विषय को समझने में उदाहरण स्वरूप जैमिनि ब्राह्मण का निम्न वचन बहुत सहायक है-

षड् वै पुरुषे पाप्मानष्षड् विषुवन्त स्वप्नश्च तन्द्री च।
मन्युश्च अशनाया च अक्षकाम्या च स्त्रीकाम्या च॥ जी. ब्रा. २/३६३

अर्थात् **पुरुष**=मनुष्य में ६ पाप व्याप्त हैं, वे पाप हैं, **स्वप्न**=सोना, **तन्द्री**=आलस्य, क्रोध, भोजन, **अक्ष**=इन्द्रिय व द्यूत लिप्सा एवं स्त्री की कामना।

ब्राह्मण में बताये गये जो पाप हैं उन पापों की चिकित्सा, निवृत्ति **अन्न**=गेहूँ औषधियों, वनस्पतियों के सेवन तथा ज्ञान साधन औषधि रूप विद्वान् आदि के उपदेश द्वारा खूब बढ़िया से होती है और की जाती है। उपेन्द्र राव का व्यंग थोथा है! उपेन्द्र राव जब पाप ही नहीं समझते, तो औषधि को कैसे समझेंगे?

देवैनसात्., अथर्व. १०/१/१२ इस अथर्ववेद के १२ वें मन्त्र से पूर्व वाले मन्त्र में पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ के फल बताये थे। इस मन्त्र में उन यज्ञों के न करने से जो दोष होता है, उसका उपाय इस मन्त्र में बताया है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **देवैनसात्**=देवों के प्रति किये गये पाप यानी देवयज्ञ न करने से, **पित्र्यात् नामग्राहात्**=पितरों के प्रति किये गये अनादर रूप पाप से तथा अनादर युक्त नाम उच्चारण से, दोषारोपण करने से, **संदेश्यात्**=व्यवहार संबन्धी दोष से, **अभिनिष्कृतात्**=पितर आदि को बाहर निकाल देने से जो

पाप हुआ है, वे देव, **त्वा**=तुझे, **वीरुधः वीर्येण**=औषधियों की शक्ति से, **ब्रह्मणः ऋग्मिः**=ज्ञानियों के सम्पर्क से, सूर्य की किरणों से अथवा ऋषियों के ज्ञान रूपी दुग्ध से, **मुञ्चन्तु**=मुक्त करें, बचावें।

मन्त्र का भाव है कि विद्वान्, पितर श्रेष्ठ जनों के प्रति यदि व्यवहारिक, सत्कारिक आदि दोष हो जाता है, तो वह दोष औषधियों के सेवन, **ब्रह्म**=ज्ञानियों के तथा ऋषियों के सम्पर्क से वे सब पापवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, नष्ट करनी चाहिये।

इस मन्त्र में भी उपेन्द्र राव **अपनी अज्ञानता** के कारण आश्चर्य कर बैठे! कि वीरुध औषधियाँ सब तरह के पाप से कैसे छुड़ा पायेंगी? औषधियों द्वारा निद्रा, तन्द्रादि पाप विमोचन कैसे होता है? यह आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी भली भाँति प्रतिपादित किया है[१]।

यथा वातः, अथर्व. १०/१/१३ अथर्ववेद के इस मन्त्र में ब्रह्मोपासना, ब्रह्मयज्ञ का फल बताया है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **यथा**=जिस प्रकार, **वातः**=वायु, **भूम्याः**=भूमि से, **रेणुम्**=धूल को, **च**=और, **अन्तरिक्षात् अभ्रम्**=अन्तरिक्ष से मेघ को, **च्यावयाति**=स्थान भ्रष्ट कर देता है, **एवा ब्रह्मनुत्तम्**=इसी प्रकार ब्रह्मोपासना, वेद या परमात्मा के द्वारा प्रेरित हुए, **सर्वं दुर्भूतम्**=सब दुरित, दुर्वृत्तियाँ दूर हो जाती है अथवा इसी प्रकार, **ब्रह्मनुत्तम्**=ब्रह्मास्त्र से फेंके हुए, **सर्वम् दुर्भूतम्**=सब शस्त्र रूपी पाप **मत्**=मुझसे, **अपायति**=नष्ट हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं।

मन्त्र का भाव है **ब्रह्म**=ज्ञानमय परमेश्वर की उपासना एवं वेदाभ्यास से अन्तःकरण में विद्यमान दुर्वृत्तियाँ, शारीरिक रोग, बाहर के शत्रु नष्ट हो जाते हैं। वे इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार वायु पृथिवी के धूल कणों को इधर का उधर फेंक देता है एवं अन्तरिक्ष से मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है।

---

१. *(i)* **निद्रातियोगे वमनं हितं संशोधना नि चा लङ्घनं रक्तमोक्षरच मनोव्याकुलनानि च॥** सुश्रु. शारीर. ४/४७

(ii) **कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयम्। चिन्ता क्रोधस्तथा धुमो व्यायमो रक्तमोक्षणम्॥ उपवासोऽ सुखा शय्या सत्वौदार्यं तमो जयः। निद्रा प्रसङ्गमहितं वारयन्ति समुत्थितम्।** चरक. सूत्र. २१/५५;५६

अप क्राम. अथर्व. १०/१/१४ अथर्ववेद का यह मन्त्र ज्ञान व शक्ति के सामर्थ्य का प्रतिपादक है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **कृत्या**=हिंसा ! तू, **वीर्यावता ब्रह्मणाः**=शक्तिशाली ज्ञानी के द्वारा, **नुत्ता**=प्रेरित, धकेली हुई तू, इतः **कर्त्तृन**=यहाँ से हिंसा करने वालों के प्रति ही, **नक्षस्व**=चली जा (**नक्षति इति गतिकर्मा**, निघ.२/१४) तथा **विनद्धा**=बन्धन रहित, **गर्दभी**=गधी, **इव**=जैसे, **नानदति**=रेंकती हुई भाग खड़ी होती है, वैसे तू, **अप क्राम**=दूर जा।

मन्त्र का तात्पर्य है ज्ञानी, विद्वान्, राजा आदि ही शत्रुओं के हिंसा घात को भगाने में, दूर करने में समर्थ होते हैं। और वह हिंसा इस प्रकार दूर हो जाती है, जैसे बन्धन मुक्त गधी दूर चली जाती है।

मन्त्र में दी गई गधी की उपमा उपेन्द्र राव को जादू टोना लग रही है। हो सकता है ! उन्होंने **गर्दभी**=गधी पशु को देखा ही न हो ! देखा होता, तो इस मन्त्र को जादू टोना न बताते ! भागी हुई गधी रेंकती हुई दूर जाकर ही खड़ी होती हैं। तान्त्रिक जादू टोना कार्य तो वे हैं, जो निरर्थक व असंभव होते हैं।

अयं पन्थाः., अथर्व. १०/१/१५ अथर्ववेद के इस मन्त्र में शत्रु सेना के, **कृत्या**=हिंसा कार्य के निवारण का उपाय निर्दिष्ट हुआ है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **कृत्ये**=हिंसा की क्रिया, कर्म में लगी शत्रुसेना, **अयं पन्थाः**= यह मार्ग है, **इति**=इससे, **त्वा नयामः**=तुझे दूर ले जाते हैं। **अभिप्रहिताम्**= हमारी ओर भेजी हुई, **त्वा**=तुझ हिंसा को, **प्रति प्र हिण्मः**=शत्रु की ओर ही भेजते हैं, **तेन**=उस हमारे भेजे हुये मार्ग से, **अभि याहि**=तू शत्रु की ओर ही जा और जाती हुई तू **इव**=जैसे, **अनस्वती विश्वरूपा**=रथों वाली एवं विविध हाथी, घोड़े आदि रूपों वाली, **कुरूटिनी**=बुरी तरह से पीटी गई, लूटी गई (रूट उपघाते, रुटि स्तेये) **भञ्जती**=हमारी सेना द्वारा भग्न की हुई, **वाहिनी**=शत्रुसेना दूर जाती है, वैसे जा।

मन्त्र का भाव है शत्रु को खदेड़ा जाये और **वाहिनी**=जिस सेना में ८१

हाथी, ८१ रथ, २४३ अश्व तथा ४०५ पदाति हों ऐसी शत्रुसेना से भयभीत न हों।

राष्ट्र रक्षा उपाय के संकेतक इस मन्त्र को उपेन्द्र राव तान्त्रिक जादू टोना बताकर आश्चर्य में पड़े हैं ! जिसका कि मन्त्र में कोई संकेत ही नहीं है।

पराक् ते., अथर्व. १०/१/१६, अथर्ववेद के इस मन्त्र में भी हिंसा निवारण के निर्देश हैं। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **कृत्ये**=हिंसक सेना ! **ते ज्योतिः पराक्**=तेरा प्रकाश के परे स्थान है, **ते अर्वाक् पथम्**=तुम्हारे लिए हमारे समीप मार्ग नहीं है, **अस्मत् अन्यत्र**=हमसे भिन्न स्थान में तू, **अयना कृणुष्व**=गति कर, आश्रय बना, **परेण इहि**=तू दूर चली जा, **नाव्या**=नौकाओं से पार करने योग्य, **नवतिं दुर्गाः**=दुर्लङ्घ्य, **स्रोत्याः**= नदियों को, **अति=लांघकर** परा इहि=दूर गति कर, **मा क्षणिष्ठाः**=हमारी हिंसा (**क्षणु हिंसायाम्**) मत कर।

मन्त्र का भाव है राष्ट्र रक्षक शत्रुसेना को आश्रय देने की भूल न करे, उसे प्रत्याक्रमण कर ९० नदियों के पार, दूरातिदूर अपनी सुरक्षा बल की सहायता से रखे।

वात इव., अथर्व.१०/१/१७ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=राष्ट्ररक्षक शत्रुसेना ! तू शत्रुओं को, **इव**=जैसे, **वातः वृक्षान्**= वायु वृक्षों को नष्ट करती है, उखाड़ देती है, वैसे, **निमृणीहि**=निर्मूल कर दे, मसल दे, **पाद्य**=पैरों से रौंद दे, **एषाम्**=इनके, **गाम् अश्वं पुरुषम्**=गाय, घोड़े, मनुष्य को, **मा उच्छिषः**=शेष न रहने दे, सबको, **इतः**=यहाँ से, **निवृत्य**=लौट कर, **कर्तॄन्**=हिंसा करनेवालों को, **अप्रजास्त्वाय**=प्रजाहीन होने की चेतावनी दे।

मन्त्र का भाव है शासक निरपराध पर हमला न करे, दोषी कभी न छोड़े। जो घातक हिंसा करने वाले होते हैं, उनका **प्रजा**=वंशोच्छेद हो जाता है। शत्रु को **अप्रजाही** प्रजाहिनत्व का बोध कराने के कार्य को उपेन्द्र राव तान्त्रिक, कठोर शाप और तान्त्रिक ओझा का टोना बता रहे हैं। उनेन्द्र राव की बुद्धि को क्या कहें ? शत्रु को हिंसा प्रतिहिंसा के वंशोच्छेद रूपी परिणाम को बताना न कठोर शाप है, न जादू टोना। राष्ट्ररक्षा का यह साम उपाय है।

अभिचार

यां ते बर्हिर्षि यां श्मशाने क्षेत्रे कत्यां वलगं वा निचरव्नुः= ।
अग्नौ वा गार्हपत्येऽभिचेरुःपाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ अथर्व. १०/१/१८

अथर्व वेद के इस मन्त्र में **अभिचेरुः** शब्द आया है, जिसे देखकर उपेन्द्र राव चौंक पड़े और घोषणा कर दी कि यह मन्त्र तान्त्रिकों द्वारा श्मशान, चौराहे, खेत आदि में स्वार्थ सिद्धि के लिए किये जाने वाले जो मारण, उच्चाटण के कर्म हैं उनका प्रतिपादक है। यह तान्त्रिकों में मारण, उच्चाटन, मोहन आदि हिंसक कर्म अभिचार[1] शब्द से जाने जाते हैं।

वेद का **अभिचेरुः**=अभिचार शब्द यद्यपि हिंसा अर्थ वाला है, पर वह हिंसा अर्थ तान्त्रिकों द्वारा व्यक्ति विशेष पर किये जाने वाले मारण मोहन, स्तम्भन विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण रूपी स्वार्थ साधक हिंसाओं का वाचक नहीं है।

अभिचार शब्द **अभि** पूर्वक चर भक्षणे च चकरात् गत्यर्थे, चर संशये धातुओं द्वारा **घञ्** प्रत्यय करके सिद्ध होता है। जिसकी व्युत्पत्ति है-

यः अभि अभिमुख्येन चरति चारयति, संशय वा उत्पादयति सः अभिचारः।

अर्थात जो सामने होकर गति करता है, अन्दर प्रविष्ट होकर खा लेता है, संशय, उन्माद,उत्पन्न करता है, उसे **अभिचार** कहते हैं।

तात्पर्य हुआ शत्रु पर आक्रमण करने वाला, अन्दर प्रविष्ट होकर उसे खा लेने वाला, संशय उत्पन्न करने वाला जो कर्म, क्रिया, क्रिया के साधन, क्रिया को करने वाले जन, शस्त्र व रसायन आदि पदार्थ हैं, वे सब अभिचार संज्ञक होते हैं तथा रोग, रोगकृमियों के नाशक रासायनिक औषधियाँ अभिचार कही जाती हैं।

अभिचार क्रिया आन्तरिक क्रिया है। यह क्रिया विषयुक्त अन्न, औषधि आदि के खाने खिलाने तथा विषबुझे शस्त्रों से शरीर, अन्न आदि में प्रवेश

---

१. *अभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते। सक्रूरे क्रूरवर्गस्थे चन्द्रे वलिनि शोधने॥*
विष्टियोगे च कर्तव्योऽभिचारोऽप्यरिनैधने॥
विषाग्निक्रूरशस्त्राद्यैर्हिंसक प्राणिनां मुदा। योजयेन्मारणे कर्मण्येतान्न पातकी भवेत्॥
षट्कर्मप्रदीपिकातन्त्र मारणम् १, २

द्वारा की जाती है। इस क्रिया द्वारा परस्पर के शत्रु व घातक पर आक्रमण कर आक्रमित को अन्दर से विचलित कर दिया जाता है। ये रासायनिक विषैले प्रयोग उन्माद उत्पन्न कर शत्रु को खा लेते हैं, अभिशोषित कर लेते हैं। इस अभिचार क्रिया से रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं तथा रोगों को भी नष्ट किया जाता है।

इस रासायनिक अभिचार प्रयोग का राजा, सोनाध्यक्ष, कुशल वैद्य आदि राज्य शासक ही शत्रु नाश के लिए उपयोग में लेते हैं, अन्य नहीं।

राजा अभिचार का प्रयोग करे, एतदर्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र में कहा है-

पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः।

कौटि. अधि. १०,प्र. १५०-१५२, अ. ३/१९ ॥

अर्थात्, राजा के पुरोहितजन शत्रु नाश के लिए **कृत्या**=नाशक तथा **अभिचारम्** =उन्हें खा लेने वाली क्रियाओं का निर्देश देवें।

शब्दकल्पद्रुम कोषकार का कथन है कि अभिचार कर्म शत्रुवध के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यथा-

अभिचारःअभिमुख्येन शत्रुबधार्थं चारःकार्य्यकरणम्। शब्दक. भाग १, पृ.७१ ॥

अर्थात् जो अभिमुख्यता से शत्रुत्व के लिए **चार**=क्रिया का करना है, वह अभिचार कहाता है।

इस अभिचार शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थों से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों में आये **अभिचेरुः**[1] या **अभिचार**[2] शब्द तान्त्रिक ओझाओं के जादू टोने के प्रतिपादक नहीं हैं। अभिचार तो विषैला रासायनिक प्रयोग है, इसलिये परस्पर शत्रुओं द्वारा किये गये, **अभिचार**=विषैले प्रयोग को क्रिया शून्य बनाने कि लिए एवं सुरक्षित होने के लिए **उन्मोचन**=वमन, विरेचन, **प्रमोचन**=शामक औषधियाँ व घृत, मधु आदि वेद में निर्दिष्ट किये हैं। उदाहरणहक् मन्त्र है-

यत्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदोरणो जनः।
उन्मोचन प्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥ अथर्व. ५/३०/२१

---

१. अथर्व.१०/१/१८
२. परित्वा पातु सगानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः। अथर्व.८/२/२६

अर्थात् मै राजा या वैद्य, पितृजन यदि, **त्वा**=तुम्हारे प्रति, **यत स्वः पुरुषः** जो कोई अपना सम्बन्धी मनुष्य, **यत् अरणः जनः**=जो कोई अप्राप्तव्य (**रण गतौ**) अन्य दुष्टजन, **अभिचेरुः**=अभिचार करता है, खान पान के पदार्थों में घातक विष मिला देता है, तब, **वे**=तुम्हारे लिए **वाचा** अपनी वाणी से, **उन्मोचनप्रमोचने**=विषयुक्त पदार्थ को, **उन्मोचन**=उखाड़ने व बाहर निकालने वाले तथा **प्रमोचन**=विषशमन करने वाले, **उभे**=दो उपाय, **वदामि**=बताता हूँ।

मन्त्र से स्पष्ट है कि जब परस्पर के विरोध में शरीर में विषयुक्त पदार्थ खा लिया जाये या खिला दिया जाये, तब उस विष को निकालने के लिए दो उपाय करने चाहियें। वे उपाय हैं-उन्मोचन और प्रमोचन। **उन्मोचन शब्द का अर्थ वमन[1] और विरेचन[1] है।** इन वमन, विरेचन के द्वारा विष निकल जाता है। खाया हुआ विष यदि आमाशय तक ही पहुँचा हो, तब वमन करना चाहिए और यदि विष पाकाशय में चला गया हो तो विरेचन लाभकारी है अथवा दोनों ही करने चाहिये। **प्रमोचन का अर्थ हैं विष को विष नाशक औषधि द्वारा शमन करना।** विष भक्षित मनुष्य के विष को दूर करने के लिए संजीवनी, गिलोय, ग्वारपाठा आदि औषधियाँ एवं घृत, मधु आदि औषधियाँ देनी चाहिए, जिससे वे विष को अन्दर ही अन्दर शान्त कर दें।

चिकित्सा के ग्रन्थ सुश्रुत एवं चरक में भी वेदों में जो विषनाश के **उन्मोचन**=वमन, विरेचन, **प्रमोचन**=विषशामक औषधि सेवन रूप दो उपाय बताये गये हैं, वे ही दो उपाय निर्दिष्ट किये हैं।

यथा-

महासुगन्धिमगदं यं प्रवक्ष्यामि तं भिषक्। पानालेपनस्येषु विदधीता जनेषु च।
विरेचनानि तीक्ष्णाति कुर्यात् प्रच्छर्दनानि च॥
करोति निर्विषं सर्वमन्नं विषसमायुतम्। सुश्रु. कल्प. १/७६,७७,७९

---

१. *तत्र दोषहरणमूर्ध्वभागं वमनसंज्ञकम्, अधोभागं विरेचनसंज्ञकम्, उभयं वा शरीरमलविरेचनाद विरेचनसंज्ञां लभते। चरक. कल्प. १/४*

अर्थात् मै जिस महासुगन्धि औषधि का वर्णन करुँगा, वैद्य उसका पान, आलेपन, नस्य और अञ्जन के रूप में प्रयोग करें और उस औषधि से तीक्ष्ण विरेचन तथा वमन कराये। यह प्रयोग सभी विषाक्त अन्न को विषरहित करता है।

वमन, विरेचन किस अवस्था में तथा किन औषधियों से कराया जाये ? इसका भी **चरक**[1], **सुश्रुत** में विधिवत् निर्देश है।

मूर्च्छाँछर्दिमतीसारमाध्मानं दाहवेपथू। इन्द्रियाणां च वैकृत्यं कुर्यादामाशयं गतम्॥
तत्राशुमदनालाम्बुबिम्बीकोशातकी फलैः।
र्दर्दनं दध्युदश्विद्भ्यामथवा तण्डुलाम्बुना॥ सुश्रु. कल्प. १/४०, ४१ ॥

अर्थात् आमाशय में गया हुआ विष जब मूर्च्छा, **छर्दि**=वमन, अतिसार, **आध्मान**=पेट फूलना, फूँक मारना, दाह, कपकपी और इन्द्रियों में विकार उत्पन्न कर दे, तब शीघ्र ही **मदनफल**=धतूरे का फल, **अलाबु**=कड़वी लौकी, **बिम्बी**=कुन्दुरु, **कोशातकी**=कड़वी तरोई एवं दही और मठ्ठा चावल के धोवन से वमन करना चाहिये।

दाहं मूर्च्छामतीसारं तृष्णामिन्द्रियवैकृतम्।
आटोपं पण्डुतां कार्श्यं कुर्यात्पक्वाशयं गतम्॥
विवेचनं ससर्पिष्कं तत्रोक्तं नीलिनीफलम्।
दध्ना दुषीविषारिश्च पेयो वा मधुसंयुतः। सुश्रु. कल्प. १/४२/४३॥

अर्थात् पक्वाशय में गया हुआ विष जब दाह, मूर्च्छा, अतीसार, प्यास, इन्द्रियों में देखने आदि का विकार, **आरोप**-सूजन, मूढ़ता, गुड़गुड़, पीलापन एवं कृश कर देवे, तब घी के साथ, **नीलिनीफलम्**=नीलिनीवृक्ष के फल से विरेचन करना चाहिये अथवा दधि के साथ, **दूषीविषारिः**=आगे कहे जाने वाले मधुयुक्तपेय पदार्थों को देना चाहिये।

इस अभिचार=खानपान में दिये गये विषघातक प्रयोग का उपचार वेद में वरण[2] औषधि द्वारा बताया गया हैं। मन्त्र है-

---

१. कपित्थमामं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे। लिह्या दामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात्। विषे पक्वाशय गते प्पिली रजनी द्वयम्। मञ्जिष्ठां च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नरःपिवेत्॥ चरक. चिकि. २३/१८४, १८५

२. वरण वनस्पति का अर्थ विशेष 'वरणमणिः' प्रसङ्गगत प्रकरण के पृष्ठ ६८, ६९ में द्रष्टव्य है।

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादयो भयात्।

मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ अथर्व १०/३/७

अर्थात् वरण:=ईश्वर, वीर्य एवं **वरणः**=वरना औषधि तुझ आतुर को, **अरात्याः**=अदानवृत्ति से, **निर्ऋत्याः**=दुष्टाचरण से, **अभिचारात्**=घातक प्रयोगों के विष से, रोग से एवं विष के भय से, मृत्यु से तथा **ओजीमसः वधात्**=मृत्यु के अतिप्रबल पीड़ा से, **वारचिष्यते** = बचायेगी।

इस अथर्व मन्त्र से स्पष्ट है **वरण**=वरना वृक्ष औषधि अभिचार **कर्म**=खानपान आदि में दिये गये विष प्रयोग का नाश करती हैं, विष निकाल देती हैं। वरण औषधि के सेवन से विष खाये खिलाये जाने पर हृदय को जो आघात होता है, उस आघात से बचाती है। विष आदि का घातक प्रयोग होने पर चरक[1], सुश्रुत[2] में हृदय की रक्षा का उपचार प्रथम बताया गया है।

प्रकृत प्रसङ्ग के सूक्त का १८ वाँ मन्त्र जो **अभिचार**=खान पान के विष घात का प्रतिपादक है। जिसे उपेन्द्र राव ने तान्त्रिक जादू टोना के अभिचार कर्म का समर्थक मान लिया, उस **यां ते बर्हिषि.** अथर्व.१०/१/१८ मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे राष्ट्ररक्षक सेना ! **यां कृताम्**=जिस हिंसा के साधन को, वस्तु में, **वा**=अथवा **वलगम्**[3]=गुप्त घातक छिपे रूप में क्रिया करने वाले बम आदि को, **ते बर्हिषि**=तुम्हारे जलाशयों में (बर्हिरिति उदकनाम, निघ.१/१२) अथवा बर्हिः=कुशादि के ढेरों में, प्रजाओं में (बर्हिः प्रजा, जै. ब्रा.१/८६७), **याम्**=जिस हिंसा क्रिया को, **श्मशाने**=श्मशान भूमि में, **क्षेत्रे**=खेत खलिहान में, **निचख्नुः**=गाड़ा है, वा=अथवा, **गार्हपत्ये अग्नौ**=गार्हपत्य अग्नि के स्थान में हिंसा के पदार्थ गाड़े हैं अथवा **धीरतराः**=तुझसे अधिक शत्रु के बुद्धिमान् जनों ने, **त्वा**=तुझको, **पाकम्**=पवित्र,**अनागसम्**=पाप

---

१. *आयौ हृदयं रक्ष्यं तस्यावरणं पिबेद् यथा लाभम्।*
मधुसर्पिर्मज्जपयोगैरिकमथ गोमयरसंवा ॥

२. *हृदयावरणं नित्यं कुर्याच्च मित्रमध्यमः ॥ पिबेद् घृतमजेयाख्य ममृताख्यं च बुद्धिमान् ॥ आदि..... । सुश्रु.कल्प.१/७९,८० ॥*

३. *वलग शब्द की विस्तृत पृष्ठ ११४, १३७, १५२ में द्रष्टव्य है।*

रहित, **सन्तम्**=होते हुए के प्रति, **अभिचेरुः**=विषयुक्त खान पान छल से दिया है, उसे नष्ट कर।

मन्त्र का भाव है जब शत्रु अन्न के साधन खेत खलिहान, प्रजा अथवा बैठने आदि के साधन कुश, श्मशान भूमि एवं अन्नादि पकाने के स्थल में, **वलगम्**=गुप्त घातक प्रयोग करे अथवा रांज्य के व्यक्तियों पर, **अभिचार**=विष खाने खिलाने का घातक प्रयोग करे तब राष्ट्ररक्षक राजा अपनी सेना को युद्ध करने की प्रेरणा करे, शत्रु का नाश करें।

मन्त्र में आये **कृत्या, वलग** और **अभिचार** तीनों शब्द घातक प्रयोगों के वाचक हैं। अन्तर तीनों में यह है कि **वलग**[1] की घातक क्रिया स्थान विशेष भूमि, जल, सुरंग में की जाती है, जिससे तत्तत् स्थानीय व्यक्ति, वृक्ष, औषधि आदियों को हानि होती है। **कृत्या**[2]=हिंसा के घातक प्रयोग विस्तृत रूप से होते हैं, जिससे सम्पूर्ण सेना, ग्राम, नगर नष्ट हो जाते हैं। **अभिचार**[3]= विषयुक्त रासायनिक क्रिया खाने, पीने, लगाने आदि द्वारा शरीर सम्बन्धी पदार्थों में, शरीरावयवों में की जाती है। अभिचार का सम्बन्ध केवल व्यक्ति के साथ होता है।

इस प्रकार अथर्ववेद के इस मन्त्र में तान्त्रिक जादू टोना के अभिचार कर्म का किसी भी प्रकार कोई संदेश नहीं है। उपेन्द्र राव व्यर्थ ही तान्त्रिक जादू टोना की डुगडुगी बजाने में लगे हैं ?

उपाहृतमनुबुद्धम्., अथर्व. १०/१/१९ अथर्व मन्त्र का अर्थ है हे सेना। **उपाहृतम्**=उपहार रूप में दिये गये हिंसक उपहार को तथा **अनुबुद्धम्**= पटकने, जलने, खिलने आदि के कारण प्रकट, जाने हुए, **निखातम्**=सुरंग आदि में गाड़े हुए, **त्सारि**=कुटिल, वक्र (**त्सर छद्मगतौ**) गति करने वाले,

---

१. वलग शब्द की विस्तृत पृष्ठ ११४, १३७, १५२ में द्रष्टव्य है।

२. (i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४ पृष्ठ में द्रष्टव्य है।

(ii) कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।

३. अभिचार शब्द का निर्वचन व अर्थ विशेष की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ १५३-१५५ में द्रष्टव्य है।

कर्त्रं वैरम्=काटने वाले विक्रान्त घातों को (**वीर विक्रान्तौ**), **अन्ववविदाम**=जान लिया है, **तत्**=वह सब घातक समुदाय, **यतः आभृतम्**=जहाँ से आया है, वहीं चला जाये और वहाँ **अश्वः इव**=घोड़े के समान, **विवर्ततताम्**=लौट जाये। जैसे घोड़े की रास (लगाम) खींचने पर पीछे लौट जाता है, वैसे लौट जाये। लौटा हुआ घातक समुदाय, **कृत्याकृतः**= हिंसक, विस्फोटक, घातक प्रयोगों को बनाने वाले की, **प्रजां हन्तु** = प्रजा को नष्ट करे।

मन्त्र का भाव है बुद्धिबल वाली राष्ट्ररक्षक सेना ! शत्रुसेना को खदेड़े और शत्रु आदि के द्वारा उपहार देने की मनसा को समझे। शत्रु की लौटी हुई सेना अपने ही सेनापति की घातक बन जाती है।

स्वायसा., अथर्व. १०/१/२० अथर्व मन्त्र में शत्रुओं को खदेड़ने का निर्देश है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **कृत्ये**=शत्रुसेना ! **नः गृहे**=हमारे गृह में, **स्वायसाः सु+आयसाः**=उत्तम लौहे से बनी हुई, **असयः**=तलवारें, **सन्ति**=हैं तथा, **ते यतिधा**=तुम्हारे जितने प्रकार के, **परुंषि**=जोड़ हैं, सेनाये हैं, उन्हें हम, **विद्मः**=जानते हैं अतः, **अज्ञाते**=छुपी हुई शत्रुसेना तू, **उत्तिष्ठ एव**=उठ खड़ी हो, **इतः परा इहि**=यहाँ से बहुत दूर चली जा, हमारी शक्ति के आगे तू तृण समान है, **इह**=यहाँ, **किम् इच्छसि**=क्या चाहती है ?

मन्त्र का तात्पर्य है शक्तिशाली सेनापति, राजा अपने सैन्यबल का भरोसा रखे तथा अपनी सेना के बल से हाथी, घोड़े, रथ, पदाति चतुरङ्गिणी सैन्यबल वाले शत्रु को भी राज्य से बाहर फेंक दे।

ग्रीवास्ते., अथर्व. १०/१/२१ अथर्व मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=हिंसक शत्रुसेना ! **ते ग्रीवाः**=तुम्हारी गर्दनों को, **च**=और, **पादौअपि**=सेना के पैरों को भी, **कत्स्यामि**=मैं सेनापति काट लूँगा अतः, **निर्द्रव**=भाग जा, तुम्हें ज्ञान हो, **इन्द्राग्नी**=ऐश्वर्य एवं अग्रगणी राजा, मंत्री एवं राजा प्रजा, **अस्मान्**=हमारी, **रक्षताम्**=रक्षा करते हैं, **यौ**=जो, **प्रजानाम्**=विविध जनसमूह के, **प्रजावती**=प्रजापालक (प्रजावती अत्र पकारस्य वकारः) है।

मन्त्र का भाव स्पष्ट है। सेनापति जब चतुर और बहादुर होता है तभी राष्ट्र सशक्त, सुरक्षित रहता है।

सोमो राजा., अथर्व. १०/१/२२ अथर्व मन्त्र में सुखी, समृद्ध जीवन की प्रार्थना है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **सोमः राजा**=शान्तिदायक ईश्वर, सोम औषधि, राजा, चन्द्रमा जीवन को दीप्त करने वाले हैं, **नः**=हमारे, **अधिपाः**=रक्षक हैं, **मृडितो**=सुखोत्पादक हैं, **च**=और, **भूतस्य**=सम्पूर्ण राष्ट्र के, **पतयः**=रक्षक हैं, वे, **मृडयन्तु**=हमें सुखी करें।

मन्त्र का तात्पर्य है ईश्वराधन, शान्तिप्रिय राजा, सोम आदि औषधियाँ दीप्ति, कान्ति, शान्ति व सुख देने के साधन हैं।

भवाशर्वावस्यताम्., अथर्व. १०/१/२३ अथर्ववेद के इस मन्त्र का देवता **भवाशर्वौ**[1] है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **पापकृते**=मन, वचन, शरीर[2] से अनिष्ट कार्य करने वाले के लिए, **दुष्कृते**=बलात्कार, दुराचार, असत्य, स्तेय आदि पाप करनेवाले के लिए, **कृत्याकृते**=हिंसा, काटने (**कृञ् हिंसायाम्, कृती छेदने**) वाले के लिए, **भवाशर्वौ**=उत्पादक, नाशक ईश्वर, वीर्य, औषधि, ज्ञानी आदि पदार्थ, शक्तियाँ, **देवहेतिं विद्युतम्**=दिव्य शक्ति सम्पन्न वज्र रूप तप को (**तपो विद्युत्**, जै. ब्रा. ३/३७३), **अस्यताम्**=फेंकते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य है पाप, दुष्कर्म, हिंसा आदि करने वाले अपराधी समाज, राष्ट्र में होते हैं, तो उनका उपचार, दवा उन पदार्थों से होता है, जो पदार्थ उत्पादक, विनाशक इन इन शक्तियों से युक्त होते हैं। ईश्वर, वीर्य, औषधि, ज्ञानी, तत्सदृश व्यक्ति, पदार्थ इन दोनों शक्तियों वाले हैं। ईश्वर, वीर्य आन्तरिक रूप से, विद्वान् औषधि बाह्याभ्यन्तर दोनों ओर से अपराधी को, पापी को सही मार्ग दिशा निर्देश करते हैं, करने में समर्थ है।

मन्त्र में आया **विद्युतम्** शब्द **तपो विद्युत्**, जै.ब्रा. ३/३७३ तप का

---

१. भव शर्व पदों का अर्थ एवं व्युत्पत्ति, निष्पत्ति पृष्ठ ११९ में द्रष्टव्य है।
२. शुभाशुभफलं कर्ममनोवाग्देहसंभवम्। मनु. १२/३

वाचक है। विद्युत् शब्द का बिजली अर्थ भी होता है यहाँ प्रकरणानुसार तप अर्थ ही अनुसंगम्य है। उपेन्द्र राव विद्युत् शब्द का अर्थ केवल बिजली ही जानते हैं, अतः इस मन्त्र में तान्त्रिकों द्वारा फेंके जाने वाले आग्नेयास्त्र की संगति लगा बैठे, जो कि मात्र धोखे की क्रिया है।

यद्येयथ., अथर्व. १०/१/२४ अथर्ववेद के इस मन्त्र का देवता **सेनाध्यक्षः** है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **यदि**=यदि, **दुच्छुने**=दुष्ट गति करने वाली, **कृत्या**=हिंसक शत्रुसेना तू, **कृत्याकृता**=हिंसा करने वालों के द्वारा, **संभृता**=बनायी गई, **विश्वरूपा**=अनेक रूपों वाली, **द्विपदी**=दो पैरों वाली, **चतुष्पदी**=चार चार पैरों वाली **आ इयथ**=हमारे राज्य में आई है, **सा**=वह तू, **अष्टापदी**=आठ पैरों वाली यानी दुगुनी चौगुनी, **भूत्वा**=होकर, **इतः**=यहाँ से, **पुनः परा इहि**=बार बार पीछे लौट जा।

मन्त्र का भाव है राज्य का अध्यक्ष, राज्य का सेनापति आदि इतने निपुण, चतुर व प्रबल हों कि शत्रु की सेना चाहे, **द्विपदी**=पदाति और अश्वारोही वाली हो, चाहे, **चतुष्पदी**=पदाति, रथी, अश्वारोही, हाथियों वाली हो अथवा चाहे **अष्टापदी**=सेना के पदाति आदि ४ अङ्गों की चौगुनी शक्ति वाली हों, उस शत्रु को राज्य से बाहर निकाल दे। शत्रु को निकालने के लिए प्रबलता से राष्ट्ररक्षा में नियुक्त हों।

अभ्यक्ताक्ता., अथर्व. १०/१/२५ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=तोप, बम आदि रूप के घातक हिंसा साधनों से युक्त शत्रुसेना! अथवा तोप! तू **अभ्यक्ता**=साहस से युक्त, मालिश से युक्त, **अक्ता**=गतियुक्त अथवा चित्रित की हुई, **स्वरंकृता**=चतुरंगिणी सेना से सजी हुई, रंगों से सुभूषित, **सर्वं दुरितम्**=युद्ध के सब परिणामों को धारण करती हुई दीख रही है, अतः, **परा इहि**=हमारे राष्ट्र से दूर जा और तेरा जाना, **स्वं पितरम्**=अपने पिता की ओर जाने वाली, **दुहिता इव**=पुत्री के समान हो, **कर्तारम्**=उस तुझ सेना के बनाने वाले को, **जानीहि**=आश्रय मान।

मन्त्र में शत्रुसेना को राज्य से बाहर करने का उपाय निर्दिष्ट है। शत्रु को

बाहर करने व होने के दो उपाय होते हैं-**एक** तो यह कि राष्ट्ररक्षक से बिना युद्ध किये शत्रु सेना ही स्वतः लौट जाये, **दूसरा** यह कि शत्रुसेना युद्ध में घायल होकर अपने राष्ट्र को लौट जाये।

प्रकृत मन्त्र में युद्ध में घायल हुई सेना को लौटाने का संकेत है। जिसका प्रयत्न शत्रु सेनापति या दूसरे पक्ष के राष्ट्राधिपति को करना है।

परेहि कृत्ये., अथर्व. १०/१/२६ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=कर्मशील (डुकृञ् करणे) सेना! **परा इहि**=दूर जा, **मा तिष्ठ**=हमारे समीप न ठहर, **विद्धस्य इव**=बींधे हुए मृग आदि के समान, **पदं नय**=गति कर जैसे बाण से घायल मृग आदि को उसके पैरों के निशान से शिकारी खोज लेता है, वैसे ही शत्रु सेना को खोज निकाल, **सः मृगः**=शत्रुसेना मृग है, **त्वं मृगयुः**=तू सेना! उस **मृग**=शत्रुसेना की शिकार करने वाली है। वह सेना **त्वा**=तुझे, **निकर्तुं न अर्हति**=नहीं काट सकती है।

मन्त्र का भाव स्पष्ट है राष्ट्ररक्षक सेना शत्रुसेना से हार न खाये, अपितु उसे परास्त कर नष्ट करे। मन्त्र में तान्त्रिक जादू टोना की चर्चा नहीं है, युद्धनीति का विषय है।

उत हन्ति., अथर्व. १०/१/२७ मन्त्र का अर्थ है-**अपरः**=परस्पर शत्रुओं में से एक जिसने प्रहार नहीं किया वह, **पूर्वा सिनम्**=पहले प्रहार करने वाले को (**पूर्व+असु क्षेपणे**) **प्रति आदाय**=पकड़कर, **उत**=और, **इष्वा हन्ति**=बाण से मारता है, **उत**=और, **पूर्वस्य निघ्नतः**=पहले हत्या करने वाले को, **प्रति**=प्रतिकार रूप में, **अपरः**=पहले न मारने वाला राष्ट्ररक्षक, **निहन्ति**=प्रतिरोध स्वरूप भारी चोट करता है।

मन्त्र में युद्ध नीति के प्रकारों का निर्देश है। युद्धनीति के कई प्रकार हैं, उनमें एक प्रकार यह है कि परस्पर शत्रु बने दो अध्यक्षों में यदि **एक** शान्त रहे पहले आक्रमण न करना चाहे, पर **दूसरा** अवसर पाते ही पहले आक्रमण करके मार दे। युद्ध की इस विधा में अनाक्रान्ता अध्यक्ष रक्षणात्मक यानी प्रजा रक्षा हेतु प्रतीकार रूप में पूर्व आक्रान्ता शत्रु को पकड़े भी और नष्ट भी करे। मन्त्र में रक्षणात्मक युद्ध का वर्णन है।

एतद्धि शृणु., अथर्व.१०/१/२० मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=शत्रुसेना ! **मे एतत् वचः**=मेरा यह वचन, **हि शृणु**=निश्चय से सुन, **अथ इहि**=और यहाँ से जा, **यतः एयथ**=जहाँ से तू आई है, **तं प्रति**=उसकी ओर, **यः त्वा**=जिसने तुझे, **चकार**=हिंसा के लिए बनाया है।

मन्त्र में युद्धनीति की सामनीति का निर्देश है। राष्ट्ररक्षा में आक्रमण पहला हत्या न हो, यह मन्त्र का सार है।

अनागोहत्या., अथर्व.१०/१/२९ मन्त्र का अर्थ है-हे **कृत्ये**=हिंसा करने वाली शत्रुसेना ! **अनागोहत्या**=निरपराध, निष्पाप की हत्या, **वै भीमा**=निश्चय से भयंकर है, भयप्रद परिणाम नहीं देने वाली है, अतः, **नः**=हमारे, **गाम् अश्वं पुरुषम्**=गौओं, अश्वों, घोड़ों, पोषक धारक साधनों को, **मा वधीः**=वध मत कर। हे सेना ! तू, **यत्र यत्र**=जहाँ-जहाँ राष्ट्र में, **निहिता**=छिपायी गई है, **ततः**=वहाँ-वहाँ से, **त्वा**=तुझे, **उत्थापयामसि**=उखाड़ फेंकते हैं, **पर्णात्**=पत्ते से भी, **लघीयसी भव**=**लघु**=कम शक्ति वाली, पत्ते से भी हल्की, **भव**=हो जा।

मन्त्र का भाव है राष्ट्ररक्षक का ऐसा प्रयत्न हो कि जो शत्रुसेना निरपराधियों को कष्ट पहुँचाती है, प्राण घात करती है ऐसे घातक समुदाय को शक्ति से खदेडे और ढूँढ-ढूँढ कर राज्य से बाहर करे, नष्ट करे।

यदि स्थ तमसावृता., अथर्व.१०/१/३० मन्त्र का अर्थ है-यदि शत्रुसेना, **तमसावृताः**=आङ्गिरसी कृत्या[1] के साधन धूम्र से युक्त या कर्तव्य से शून्य, अज्ञान से आच्छादित, **स्थ**=हो गई हो, **जालेन अभिहिताःइव**=घात प्रघातों (**जल घातने**) से घिरी हुई सी हो, मार काट में उद्धत हो, तब उसकी, **सर्वाः कृत्याः**=सब प्रकार की हिंसा, घात प्रघातों को करने वाली सेना को, **संलुप्य**=मूर्च्छित व प्रताड़ित (**लुप विमोहने, लुप्लृ छेदने**) करके, **इतः**=अपने इस राज्य से दूर, **कर्त्रे**=सेना भेजने वाले शत्रु की ओर, **पुनः प्रहिण्मसि**=राष्ट्ररक्षक पीछे लौटा दें।

मन्त्र का भाव है शत्रुसेना घात प्रतिघात अथवा **तमसा**=आङ्गिरसी कृत्या के जो साधन गन्धक, पोटाश, सीसा के मल आदि का धुँआ आदि हैं,

---

१. आङ्गिरसी शब्द की व्याख्या कृत्या भेदों के प्रसङ्ग में पृष्ठ १३१, १३२ में द्रष्टव्य है।

उनसे आच्छादित हो, तथापि प्रबल शक्ति से आङ्गिरसी कृत्याओं के द्वारा राष्ट्ररक्षक शत्रुसेना का बल नष्ट कर देवे।

कृत्याकृतो., अथर्व.१०/१/३१ मन्त्र का अर्थ है-**हे कृत्ये**=राष्ट्ररक्षक कर्मशील सेना। (**डुकृञ् करणे**) तू, **वलगिनः**[1]=भूमि के अन्दर बम, बारुद छिपाकर घात करने वाले (**वल संवरणे**), **अभिनिष्कारिणः**=आक्रमण करने वाले, नष्ट करने वाले, शत्रुओं की, **प्रजाम्**=प्रजा को, सेना समुदाय को, **मृणीहि**=नष्ट कर, **अमून् कृत्याकृतः**=उन हिंसक सेना समुदाय को बनाने वालों को, **जहि**=नष्ट कर, **मा उच्छिषः**=किसी को भी शेष न कर सबको मार।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि शत्रु बार-बार शान्ति नीति से समझाये जाने पर भी विस्फोटक घात करे, अपने हस्तगत स्थानों को न छोड़े, तब प्रतीकार रूप में राष्ट्ररक्षक राजा सेना द्वारा शत्रुसेना पर आक्रमण करे। यह राष्ट्ररक्षक का प्रत्याक्रमण रूप युद्ध जादू टोना का सूचक नहीं है, राज्य की प्रजा की रक्षा का उपाय है।

यथा सूर्यो., अथर्व.१०/१/३२ अथर्ववेद के इस मन्त्र में शत्रु के प्रत्यावर्तन, शत्रु पर विजय प्राप्ति के पश्चात् विजेता राष्ट्ररक्षक का क्या कर्तव्य है ? इस तथ्य का प्रतिपादन है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **यथा**=जैसे, **सूर्यः तमसः परि**=सूर्य **तमस**=अन्धकार से, **मुच्यते**=छूट जाता है, **च**=और, **रात्रिम्**=रात्रि को छोड़ देता है, **एवं, उषसः केतून्**=उभयकालीन प्रकाश अन्धकार के रूपों को भी, **जहाति**=छोड़ देता है, **एव अहम्**=इसी प्रकार मैं राष्ट्ररक्षक, **कृत्याकृता**=हिंसा करने वाले शत्रुओं के द्वारा, **कृतम्**=किये गये, **सर्वं दुर्भूतम्**=सभी दुःखकारक, **कर्त्रम्**=युद्धों, घातक प्रयोगों, साधनों को, **जहामि**=छोड़ता हूँ, **इव**=जैसे, **हस्ती**=हाथी, **रजः**=धूल को छोड़ता है, ऐसे **दुरित्म्**=घातक युद्धों को, पूर्वाक्रमणों को छोड़ता हूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है राष्ट्ररक्षा में लगे राजा का कर्तव्य है कि शत्रुओं को

---

१. वलग शब्द की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ ११४, १३७, १५३, १५७ में द्रष्टव्य है।

परास्त कर जन, धन की हुई हानि में तत्पर होवे। घातक द्वारा किये गये कटुता के व्यवहारों को सूर्य की भाँति जैसे सूर्य अन्धकार से घिरने पर भी प्रकाशमय हो जाता है, वैसे ही राजा अपने को शान्त, स्थिर कर लेवे और वह शान्ति क्षणिक न होवे, अपितु दीर्घकालिक होवे, जैसे हाथी अपने देह पर लगे हुए मिट्टी के कणों को झाड़ देता है, तत्काल उससे युक्त नहीं होता है वैसे राजा युद्ध की प्रवृत्ति वाला न बने, हाँ ! घातकों को अवश्य खदेड़े। ऐसा राजा ही कीर्ति, यश का भागी बनता है। युद्ध राष्ट्ररक्षा के लिए होता है, युद्धीय मानसिक वृत्ति बनाने के लिए नहीं।

इस प्रकार इस '**टोना के समस्त रूप**' शीर्षक में आक्षेप्ता उपेन्द्र राव द्वारा उद्धृत दशम मण्डल के प्रथम सूक्त के ३२, मन्त्रों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सूक्त में तान्त्रिकों के जादू टोना सम्बन्धी हिंसक अभिचारों, घातक प्रयोगों का वर्णन नहीं है, अपितु राष्ट्र, समाज, शरीर आदि की सुरक्षा आदि के उपाय निर्दिष्ट हैं। शत्रुसेना के आक्रमण को **ब्रह्मास्त्र**[1]=बुद्धि बल, **आग्नेयास्त्र**=गन्धक, पोटाश आदि के मिश्रण के हथियार, **आग्नेयास्त्र**[2]= सीसा, अग्नि पदार्थजन्य बम आदि, **सौम्यास्त्र**[3]=साम, दाम, सन्धि आदि के द्वारा राज्य रक्षा, शरीर रक्षा आदि के उपाय विशेषों का निर्देश है। उपेन्द्र राव द्वारा अभिज्ञात जादू टोना का कथन नहीं है !

कृत्या की उपाधि वाले पदार्थ, की समीक्षा

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव ने कृत्या नाम से उन पदार्थों को मुट्ठी में लिया है, जिनको वे तान्त्रिक ओझाओं का जादू टोना का सहायक मानते हैं। उपेन्द राव की दृष्टि में **प्रतिसरो मणिः, औषधियाँ, शत्रुनाशक त्रिषन्धि, ब्रह्मगवी, ब्रह्मगवी** के लिए **राक्षसी शिक्षा, आकाशीय ग्रहोपग्रह, जङ्गिडमणिः, आञ्जन** आदि शीर्षक वाले पदार्थ **कृत्या**=जादू टोना की उपाधि वाले हैं।

---

१. *इस सूक्त में बुद्धिबल=ब्रह्मास्त्र विषय अथर्व. १०/१/१९, पृष्ठ १५८ में द्रष्टव्य है।*
२. *सीसा, अग्नि आदि पदार्थ=आग्नेयास्त्र विषय अथर्व. १०/१/२९, पृष्ठ १६१ में द्रष्टव्य है।*
३. *साम, दाम, सन्धि आदि=सौम्यास्त्र विषय अथर्व. १०/१/२८, पृष्ठ १६१ में द्रष्टव्य है।*

हतभाग्य। उपेन्द्र राव न **कृत्या** का अर्थ जानते हैं, न **उपाधि** का। अत: उन्हें सर्वत्र शिक्षा दवा, सूर्य, चाँद, वृक्ष सब कुछ जादू टोना ही लगता है। गनीमत है। स्वत: अपने को जादू टोना नहीं कह सके।

प्रतिसरो मणिः

आक्षेप्ता का **पहला दोष** स्थल है-**प्रतिसरो मणिः**। जिसके मन्त्र हैं-

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः॥ अथर्व.८/५/२॥
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु॥ अथर्व.८/५/५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम्। अथर्व.८/५/६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी॥ अथर्व.८/५/४॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः
कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या ३ अति॥ अथर्व.८/५/९॥

अयं मणिः., अथर्व.८/५/२, **तदग्निराह**., अथर्व.८/५/५, **अन्तर्दधे**., अथर्व.८/५/६, ये **स्राक्त्यम्**., अथर्व.८/५/७, **याः कृत्या**., अथर्व.८/५/९ अथर्ववेद के ८ वें मण्डल के ५ वें सूक्त के इन मन्त्रों में **कृत्या**=जादू टोना है, **यह** उपेन्द्र राव इन मन्त्रों पर **आक्षेप** है, जो विलाप मात्र है।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों के **देवता**=विषय प्रतिपादन की दृष्टि से विभिन्न हैं। पर उपेन्द्र राव सम्पूर्ण सूक्त का देवता **प्रतिसर**=वृक्ष विशेष को मानते हैं और उसकी शाखा, टहनी, फल आदि को व टुकड़े को मणि बताते हैं। जब कि **प्रतिसर**[1] शब्द **प्रति+सृ+अप्**, ऋदोरप्, पा.३/३/५७ सूत्र से सिद्ध अप् प्रत्ययान्त कृदन्त शब्द है। जिसका अर्थ घेरा, घूमना, मण्डल समूह है, **प्रतिसर** शब्द का वृक्ष, शाखा आदि अर्थ नहीं है। **मणि**[2] शब्द के यद्यपि

१. *प्रतिसर शब्द की विशेष व्याख्या एवं व्युत्पत्ति 'मणि धारण की झूठी प्रशंसा, की समीक्षा' प्रसङ्ग के 'प्रतिसरो मणिः' प्रकरण के पृष्ठ ६५ में द्रष्टव्य है।*
२. *मणि शब्द का निर्वचन व अर्थ पृष्ठ ६२ में द्रष्टव्य है।*

शाखा, टहनी टुकड़े आदि भी अर्थ होते हैं, तथापि प्रसङ्गतः यहाँ बल, वीर्य, समूह आदि अर्थ मणि के हैं, वृक्ष की शाखा, टहनी आदि नहीं।

अयं मणिः., अथर्व.८/५/२ मन्त्र का देवता सपत्नहा है मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **अयं मणिः**=यह ईश्वर, वीर्य, बल, रूप मणि, **सपत्नहा**[१]=रोग, पाप रूप शत्रु को नष्ट करने वाला है, **सुवीरः**=रोग, पाप आदि को कम्पित करने वाला है (**वीर विक्रान्तौ**), **सहस्वान्**=बल युक्त है, यह मणि, **वाजी**=वेग की गति देने वाला, **सहमानः**=शत्रुओं को पराभूत करने वाला, **उग्रः**=तेजस्वी है। यह, **वीरः**=पराक्रम शील मणि, **कृत्याः**=रोग, पाप रूप हिंसा को तथा शत्रु को, **दूषयन्**=दूर करती हुई, **प्रत्यक्**=सामने सदा, **एति**=रहती है।

मन्त्र का भाव है मणि रूप व्यापक ईश्वर, वीर्य, बल शरीर को, **प्रतिसर**=घेर कर रखते हैं और **कृत्या**=समस्त रोग, पाप की हिंसाओं व शत्रुओं से सुरक्षित करते हैं। ईश्वर, वीर्य आदि पदार्थ जादू टोना नहीं हैं, न तान्त्रिकों द्वारा की जाने वाली **कृत्या**=हिंसा है।

तदग्निराह., अथर्व.८/५/५ इस मन्त्र का देवता **इन्द्र**=विविध शक्ति सम्पन्न सेनाध्यक्ष है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **तत्**=जिस आदेश को, **अग्निः आह**=अग्रणी नायक ने कहा है, **तत् उ**=उसे ही, **सोमः**[२] **आह**=राजा ने कहा है, **बृहस्पति**=ज्ञानियों ने कहा है, **तत्**=उसे ही, **सविता इन्द्रः**=प्रेरक ऐश्वर्यशाली सेनाध्यक्ष ने कहा है, **ते**=वे सभी, **मे**=मेरे, **देवाः पुरोहिताः**=दिव्य गुणवाले पुरोगामी, हितकारी जन, **प्रतीचीः**=अपनी ओर आने वाली शत्रु सेना की, **कृत्याः**=हिंसक सेनाओं को, **प्रतिसरैः**=उनके प्रति जाने वाली मण्डल घेरे में आबद्ध संगठित सेना के द्वारा, **अजन्तु**=लौटा दे, दूर कर दे।

---

१. *सपत्नो वा अभिमातिः। शत.ब्रा.३/९/४/९, पाप्मा वा अभिमातिः, तै.सं.२/१/३/५, अर्थात् सपत्न को अभिमाति कहते हैं और अभिमाति पापी होता है।*

२. *राजा वै सोमः, शत.ब्रा.१४/१/३/१२*

मन्त्र का भाव है शत्रुओं द्वारा आक्रमण होने पर राष्ट्र के जितने भी राजा, मन्त्री, ज्ञानी पुरोहित आदि राष्ट्ररक्षक समुदाय हैं, वे सब शत्रु का प्रतीकार करे, **प्रतिसरैः**=संगठित चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा शत्रु को खदेड़कर बाहर करे।

अन्तर्दधे., अथर्व.८/५/६ इस मन्त्र का देवता भी राष्ट्ररक्षक सेनाध्यक्ष है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् शत्रु का आक्रमण होने पर राजा, द्यावा पृथिवी को, **अन्तर्दधे**= ढ़क देता है, **उत**=और, **अहः**=दिन, **सूर्यम्**=सूर्य को ढ़क देता है।

मन्त्र में राष्ट्ररक्षा के उपाय का वर्णन है। राज्य से शत्रु को खदेड़ने के अनेक उपाय हैं। शत्रु को अचम्भित करना, दिन रात का बोध न होने देना भी एक उपाय है। इस उपाय का ही इस मन्त्र में कथन है। जब शत्रु हमला करे, तब आग्नेय पदार्थों का ऐसा धूम्र करना चाहिये, जिससे दिन रात का बोध न हो सके।

ये स्राक्त्यम्., अथर्व.८/५/७ मन्त्र का देवता **वर्म**=कवच है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **इव**=जैसे, **ये जना.**=जो लोग, **स्राक्त्यं**[1] **मणिम्**[2]=निरन्तर गतिशील, मणि रूप बल, पराक्रम राजा आदि को, **वर्माणि**=कवच रूप में, **कृण्वते**=स्वीकार करते हैं, उनकी, **कृत्याः**=रोग, पाप, शत्रुघात रूपी सेना को, बल एवं राजा आदि मणि, **विनाधते**=नष्ट कर देते हैं और उन घातक शक्तियों को अपने वश में कर लेती है, **इव**=जैसे, **सूर्यः दिवम् आरुत्थ**=सूर्य द्युलोक में चढ़कर अन्धकार को वश में करता है, नष्ट करता है, वैसे शत्रु का छेदन भेदन करती है।

मन्त्र में कवच रूपी **स्राक्त्यं मणिम्**=निरन्तरता से कार्यों को करने वाले वीर्य, बल, राजा आदि की शक्तियों के माहात्म्य का प्रतिपादन है, जो **कृत्याः**=नाशक शक्तियों का प्रतिसंहार करती है। तान्त्रिक **कृत्या**=जादू

---

१. स्राक्त्य शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ पृष्ठ ६५ में द्रष्टव्य है।
२. मणि शब्द के अर्थ व निर्वचन पृष्ठ ६२ में द्रष्टव्य है।

टोना का मन्त्र में वर्णन नहीं है।

याःकृत्याः., अथर्व.८/५/९ मन्त्र का देवता **कृत्या** है। युद्ध आदि में जिन हिंसा प्रकारों का मुख्यतया प्रयोग होता है, उन प्रकारों का इस मन्त्र में प्रतिपादन है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **याः**=जो, **कृत्याः**=हिंसक, घातक क्रियायें, **आङ्गिरसीः**=शरीर के अङ्गो को प्रभावित करने वाली हैं, **याः कृत्याः**=जो घातक क्रियायें, **आसुरीः**=प्राणों को उद्वेलित करने वाली हैं, **याः कृत्याः**=जो कि ये दोनों कृत्यायें, **स्वयंकृता**=स्वयं की जाने वाली अथवा आत्मदोष से उत्पन्न होने वाली हैं, **च उ**=और निश्चय से, **याः अन्येभिः आभृताः**=दूसरों के द्वारा की जाती हैं, प्राप्त करायी जाती हैं, **ताः उभयीः**=वे दोनों प्रकार की कृत्यायें, **परावतः**=दूर से दूर, **नाव्याः नवतिम् अति**=नौकाओं से तैरने योग्य ९० नदियों को पार कर, **परा यन्तु**=दूर चली जाये।

मन्त्र का तात्पर्य है कि **कृत्याः**=हिंसक क्रियायें **आङ्गिरसी** तथा **आसुरी** दो प्रकार की होती हैं।[1] इन दो प्रकार की घातक कृत्याओं को स्वयं भी किया जाता है एवं अन्यों के सहयोग से भी किया जाता है।

इस प्रकार अष्टम मण्डल के ५ वें सूक्त के इन मन्त्रार्थों से स्पष्ट है कि सूक्त में शरीर, वीर्य, बल एवं राज्य की सुरक्षा के संवर्धन के निर्देश हैं। तान्त्रिक जादू टोना का कोई सम्बन्ध नहीं।

ओषधियाँ

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥

अथर्व.८/७/१० ॥

उन्मुञ्चन्तीः., अथर्व.८/७/१० अथर्ववेद के इस मन्त्र में **कृत्यादूषणीः**, **विषदूषणीः** शब्द आये हैं। उपेन्द्र राव इन शब्दों का सम्बन्ध तान्त्रिक जादू टोना की क्रियाओं में लगा रहे हैं। मन्त्र में **ओषधीः** शब्द देखकर व्यंग्य शैली में उपेन्द्र राव यह भी व्यक्त कर रहे हैं कि **ओषधीः** शब्द तान्त्रिकों की कृत्या का वाचक है।

१. आङ्गिरसी तथा आसुरी कृत्याओं का विषय विस्तार पृष्ठ १३१-१३४ में द्रष्टव्य है।

वेदोक्त **कृत्या**[1] शब्द यौगिक शब्द है, जिसका जहाँ हिंसा अर्थ है, वहीं कर्म, कर्मकर्ता, कर्मसाधन आदि भी अर्थ हैं। हिंसा का तात्पर्य जैसे प्रतिद्वन्द्विता में दूसरे को मारना, काटना होता है, वैसे ही रोगों का नाश रोगकृमियों का नाश, वात, कफ, पित्त विकारों का नाश, शल्य चिकित्सा आदि भी होता है।

प्रकृत मन्त्र अथर्ववेद के अष्टम मण्डल के ७ वें सूक्त का है, जिसमें २८ मन्त्र हैं। इस सूक्त के देवता **ओषधयः**, **भेषजम्**[2] तथा **आयुष्यम्** हैं। औषधियाँ **जाति**=वर्ग, व्यक्ति, रंग, स्वरूप, गुणधर्म, **कार्य**=शोधन, स्नेहन, विषनाशन आदि एवं जल, पर्वत आदि उत्पत्ति स्थान आदि अनेक भेदों वाली हैं, जिन्हें आयुष्य के लिए परमात्मा ने प्रदान किया है। अथर्ववेद में इन सभी भेदों, प्रकारों वाली औषधियों का वर्णन है। प्रकृत सूक्त में रंग, स्वरूप, गुण, शोधन, स्नेहन, विषनाशन, जल उत्पन्न, दुग्ध, घृत जनक, फैलने वाली, पुष्प, फल, .. आदि वाली अनेक प्रकारक औषधियों का प्रकथन है।

प्रसङ्गगत प्रकृत मन्त्र में विष, कफ तथा हिंसा जनित घातक घावों के विकार विनाशक जाति वर्ग वाली औषधियों का प्रतिपादन है, व्यक्ति वर्ग वाली का नहीं। जो औषधियाँ आकारों एवं आन्तरिक गुणों में समान होती हैं, वे औषधियाँ जाति वर्ग के भेद वाली होती हैं। व्यक्तिवर्ग वाली औषधियाँ वे होती हैं जो बाह्य आकार तथा आन्तरिक गुण दोनों में भिन्न होती हैं।

ओषधि गुण

आयुर्वैदिक ग्रन्थों में **बन्धुजीव**[3]=दुपहरिया, **भार्गी**=भारङ्गी, **सुरस**=काली तुलसी, **कपित्थ**[4]=कैथा, **पिप्पली**=पीपल आदि औषधियों को स्थान

---

१. *(i) कृत्या शब्द की व्युत्पत्तियाँ व अर्थ विस्तार पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४, १५६ में द्रष्टव्य है।*
(ii) कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ में द्रष्टव्य है।

२. *कृणोमि भेषजम्। अथर्व.८/७/५*

३. *शिरोगते विषे नस्तः कुर्यान्मूलानि बुद्धिमान्। बन्धुजीवस्य भार्ग्याश्च सुरसस्यासितस्य च। चरक.चिकि.विष.२३/१८१*

४. *चरक.चिकि.विष.२३/१८४-१८५*

भेद से विविध विषों का नाशक बताया है।

कालेयक=पीत चन्दन, **अगुरू**=अगर, **तिलपर्णी**=हुलहुल, **कुष्ठ**=कूठ, हरिद्रा, **शीतशिव**=कपूर, **शतपुष्पा**=सौंफ, **सरला**=चीड़, साल, रासना **प्रकीर्य**=चिरबिल्व, चरेल, पापरी, **उदकीर्य्य**=करञ्ज, **इंगुदी**=पुत्रजीव, इंगौट, **सुमन**=चमेली, मालती आदि **काकादनी**=मुञ्जा, **लाङ्गलकी**=कलिहारी, **हस्तिकर्ण**=भूपलाश, **मुञ्जातक**=सालमपञ्जा, **लाममञ्जक**=खसखस, **वल्लीपञ्चमूल**=साल पञ्चमूल कण्टक पञ्चमूल, कटेरी पञ्चमूल आदि कफ नाशक औषधियाँ सुश्रुत[1] आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट की गई है।

राजनिघण्टु आदि में बला, नीली, दन्ती, गम्भारी, अनन्तमूल, श्वेत-विष्णुक्रान्ता, हल्दी आदि औषधियों को रक्तविकार, घाव, जले कटे आदि के विकारों को दूर करने वाली निर्दिष्ट किया है।[2]

उन्मुञ्चन्तीः., अथर्व.८/७/१० मन्त्र का अर्थ है-**याः**=जो, **उन्मुञ्चतीः**=रोगों से मुक्त कराने वाली है, **विवरुणाः**=वरुण=रोग बन्धनों से रहित करने वाली है, **उग्राः** = जो तीव्र गन्ध, रस, शक्ति वाली है, **विषदूषणीः**=जो विष की नाशक हैं, **अथ**=और **याः बलासनाशनी**[3]=जो कफ नाशक हैं, **च**=और, **कृत्यादूषणीः**=छेदन भेदन जन्य विकारों को नष्ट करने वाली हैं, ताः=वे सभी प्रकार की, **औषधीः**=औषधियाँ, **इह**=जगत् में, पृथिवी में, **आयन्तु**=प्राप्त होवें।

मन्त्र का स्पष्ट भाव है कि रोग, बन्धन, विष, कफ, खांसी, को दूर करने वाली एवं **कृत्या**=हिंसाजन्य घावों के विकारों को दूर कर उनको भरने वाली जो-जो औषधियाँ हैं, वे सभी प्राप्त हों, यह ईश्वर, राजा आदि से निवेदन है।

---

१. *कालेयकागुरूतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पा सरलारास्नाप्रकीर्योदकीर्येङ्गुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिमुष्ककादिर्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरिती समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः।* सुश्रु.सूत्र.३९/९

२. *भद्रायां तु बलानीली दन्ती काश्मरीसारीवा। श्वेताद्रिकर्णी गौरी च सप्तप्रोक्ता भिषम्वरैः॥ राजनिघण्टु॥*

३. *बलं अत्तीति बलाशः=बलासः=बल+अश भोजने+अण्, शकारस्य सकारः, बलासः=श्लेष्मा। शब्दक.भाग ३, पृ.४००*

मन्त्र में स्वार्थ सिद्धि के साधक तान्त्रिक जादू टोना के कर्मों का कोई प्रसङ्ग नहीं है।

शत्रुनाशक त्रिषन्धि

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी।
कृत्येऽ मित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया॥ अथर्व.११/१०(१२)/६॥

शितिपदी., अथर्व.११/१०/६ अथर्ववेद के इस मन्त्र के **कृत्ये** शब्द ने उपेन्द्र राव को उद्वेलित कर रखा है। उपेन्द्र राव मन्त्र के कृत्ये शब्द में तान्त्रिकों के जादू टोना की कल्पना करके क्यों भयंकर कांप रहे हैं?

मन्त्र का कृत्ये शब्द कर्मशील शत्रुनाशक सेना का (**डुकृञ् करणे, कृञ् हिंसायम्**) का वाचक है, जादू टोना[1] का नहीं। शत्रुनाशक सेना से भय नहीं होता, अपितु निर्भयता मिलती है। मन्त्र का तथा सम्पूर्ण सूक्त का देवता **त्रिषन्धिः** है। **तिस्रः .सन्धयः सन्धानानि जयसाधनानि सन्ति यस्याःसा त्रिषन्धिः**, अर्थात् जिसके जल, स्थल एवं वायु तीन प्रकार की सेना, शक्ति सामर्थ्य हैं, वह सेनाध्यक्ष, राजा आदि **त्रिषन्धि** वाले कहे जाते हैं। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **कृत्ये**=शत्रु निवारक सेना ! तू, **शितिपदी**=भेदक व तीक्ष्ण पैरों वाली (**शिञ् निशाने + क्तिन्=शितिः**) है, तथा तू यह, **चतुष्पदी**=चार पैरों वाली (**हस्त्यश्वरथपादाङ्गं सेनाङ्गचतुष्टयम्**) हाथी, घोड़े, रथ व पदाति वाली, **शरव्या**=बाणों वाली (**शरसमूहा**), **सं द्यतु**=शत्रु को खण्डित कर सकती है, अतः हे सेना ! **त्रिषन्धेः सेनया सह**=त्रिसन्धि सेना वाले राजा आदि की जल, स्थल व वायु सेना के साथ, **अमित्रेभ्यः भव**=शत्रुओं की विनाशकारी बन।

मन्त्र का तात्पर्य है कि शत्रु पर विजय पाने के लिए चार तैयारियाँ आवश्यक हैं- १. सेना तीव्र व तीक्ष्ण चलने वाली हो, २. सेना में गजारोही, अश्वारोही, रथारोही एवं पदाति सैनिक हो, ३. सेना के सैनिक बाण चलाने में कुशल हो, ४. सेना शत्रुओं को परास्त करने वाली हो।

---

१. *जादू टोना शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ विशेष पृष्ठ १४५, १४६ में द्रष्टव्य है।*

मन्त्र में युद्धनीति के उपाय विशेषों का वर्णन है, जो राज्य, प्रजा, शरीर आदि की रक्षा के अनिवार्य अङ्ग हैं। यहाँ तान्त्रिक जादू टोना का कोई प्रसङ्ग नहीं है। सम्पूर्ण सूक्त में राज्य की रक्षा के जिन-जिन साधनों उपायों की अर्हता है, उन-उन पदार्थों, गुणों, कर्मों आदि का ही प्रतिपादन है, जादू टोना का नहीं।

ब्रह्मगवी

इस शीर्षक के माध्यम से उपेन्द्र राव ने अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त तथा १२ वें काण्ड के ४ वें सूक्त पर एवं १० वें काण्ड के १० वें सूक्त पर जो ज्ञान परोसा है, वह थोड़ी भी बुद्धि रखने वाले जन को तो पचेगा नहीं। तान्त्रिक जादू टोना की **कृत्या**=हिंसा को कहते-कहते राव का ऐसा पचका हुआ है, कि उन्हें सर्वत्र **कृत्या=कृत्या** ही दीखती है। उनकी सामान्य विशेष सभी क्रियायें कृत्यामय हो गई हैं।

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त में ७ विभाग एवं ७३ मन्त्र हैं, जिसका **ब्रह्मगवी** देवता है। १२ वें काण्ड के चतुर्थ सूक्त में ५३ मन्त्र हैं, जिसका **वशा** देवता है।

उपेन्द्र राव ने **ब्रह्मगवी** शब्द का अर्थ ब्रह्म की गाय तथा ब्राह्मण की गाय किया है। ब्राह्मण शब्द के विषय में उनका विवेचन है कि सामान्यतः ब्राह्मण का स्वभाव शान्त, सौम्य और अहिंसक होता है तथा यह साधु सन्त के समान सबका भला चाहने वाला भी होता है। अतः उसके यहाँ पलने वाले गाय, बकरी, भेड़ आदि भी उसी के स्वभाव को अपना लेते हैं। पर ब्रह्मगवी शब्द वाच्य ब्राह्मण सामान्य ब्राह्मण न होकर जादू टोना करने वाला क्रूर ओझा ब्राह्मण है। उसने अपनी गाय को भी क्रूरता व हिंसा की शिक्षा देकर उसे राक्षसी गाय बनाया। राव की दृष्टि में १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त में ब्रह्मगवी की क्रूरता एवं उसे दी गई हिंसक शिक्षाओं का वर्णन है। **ब्रह्मगवी भयङ्कर व तान्त्रिक कृत्या की उपाधि वाली है।**

१२ वें काण्ड के चतुर्थ सूक्त एवं १० वें काण्ड के १० वें सूक्त के देवता वशा के सम्बन्ध में भी **उपेन्द्र राव का ज्ञान अनिर्वचनीय है।** राव ने

वशा शब्द का अर्थ भी ब्राह्मण की गाय ही किया और उस गाय का स्वभाव बताया-'वह भी साधु न होकर क्रूर है। परन्तु वह ब्रह्मगवी के समान स्वयं हिंसा न करते हुए, उसे जो पीड़ित करता है, उसको वह मरवाती है।' पृष्ठ.४९ ॥

उपेन्द्र राव द्वारा **ब्रह्मगवी** एवं **वशा** शब्द के किये गये अर्थ नितान्त फूहड़ हैं। कहीं इन अर्थों की संगति लग भी जाये, तो भी वह संगति **गौणिक**=अप्रधान होगी, खद्योत की भाँति होगी।

ब्रह्मगवी शब्द के ब्रह्म-ब्राह्मण शब्द का अर्थ

ब्रह्मगवी शब्द के अर्थ से पूर्व **ब्रह्मन्**+ब्राह्मण शब्द का अर्थ जानना अनिवार्य है। **ब्राह्मण** शब्द **ब्रह्मन्** प्रातिपदिक से निष्पन्न हुआ है। ब्राह्मण शब्द के उद्भावक ब्रह्मन्=**ब्रह्म**[1] शब्द के अनेक अर्थ हैं-

सत्यं ब्रह्म। शत.ब्रा.१४/८/५/१ ॥
वाक् ब्रह्म। गो. ब्रा१/२/१० ॥
ब्रह्म वै ब्रह्मा। मै. सं.२/५ ॥
ब्रह्म वै मन्त्रः। जै. ब्रा.१/८८ ॥
ब्रह्म तपसि। गो. ब्रा.२/३/२ ॥
प्राणाः वै ब्रह्म। तै. ब्रा.३/२/८/८ ॥
ब्रह्म इति उदकनाम। निघ.१/१२ ॥
ब्रह्म इति अन्ननाम। निघ.२/७ ॥
ब्रह्म इति धननाम। निघ.२/१० ॥
ब्रह्माणि कर्माणि। निरु.१२/४/३३ ॥

अर्थात् ब्रह्मसंज्ञा सत्य, वाणी, परमात्मा, **मन्त्र**=वेद, तप, प्राण एवं जल, अन्न, धन, कर्म आदि पदार्थों, क्रियाओं की है।

इस सत्य, वाणी, परमात्मा, वेद आदि वाचक **ब्रह्मन्** प्रतिपदिक से **तदधीते तद्वेद**, पा.४/२/५९ सूत्र द्वारा **अधीते** व **वेद** अर्थ में **अण्** प्रत्यय होकर **ब्राह्मण** शब्द सिद्ध होता है। **अधीते** शब्द का अर्थ पढ़ना है, **वेद**

---

१. ब्रह्मन् शब्दः वृहि वृद्धौ धातोः, बृंहेर्नोच्च, उणा.४/१४७ सूत्रेण मनिन् कृते बृंह्+मनिन्=ब्रह्मन् शब्द. निष्पद्यते। बृंहति वर्धते इति ब्रह्म=जो बढ़ता है, वृद्धि देता है, जो बड़ा है, वह ब्रह्म कहा जाता है।

शब्द पांच धातुओं[१] से निष्पन्न है अतः उसके ज्ञान, विचार, सत्ता, लाभ तथा चेतना, **वेदना**=सुख, कथन, निवास, परिवाद अर्थ हैं।

इस प्रकार **ब्राह्मण** शब्द का निर्वचन है-

यः ब्रह्म अधीते वेद वा सः ब्राह्मणः।

अर्थात् जो सत्य, वेद, वाक्, परमात्मा आदि विषय को पढ़ता है एवं सत्य ज्ञान जानता है, सत्य को आचरण में लाता है, परमात्मा को जानता है, उसकी उपासना करता है, आज्ञा में रहता है, तपस्या का मूल्य जानता है, प्राणों की चेतना का लाभ उठाता है, सुख से रहता है, सत्य, परमात्मा आदि ब्रह्म पदार्थों का कथन करता है, ब्रह्म में **निवास**=विचरण करता है, अन्न, धन, जल का लाभ लेता है, कर्मशील है, वह ब्राह्मण कहाता है।

ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति यह भी प्रसिद्ध है-

ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः। काशिका ६/४/१७१॥

अर्थात् ब्रह्म का अपत्य ब्राह्मण संज्ञक होता है।

इस निष्पत्ति का भी वही आशय है जो पूर्व निष्पत्ति का है। ब्रह्म परमात्मा, सत्य आदि की संज्ञा है। ब्रह्म परमात्मा, सत्य, वाक् आदि स्वरूपों वाला है, उन सत्यादि धर्मों से युक्त जो-जो हैं, वे-वे ब्राह्मण हैं।

स्वार्थिक अण् प्रत्ययान्त ब्राह्मण शब्द की एक और यह निष्पत्ति है-

ब्रह्म एव ब्राह्मणः।

अर्थात् जो ब्रह्म है, वही ब्राह्मण है यानी परमात्मा की ब्राह्मण संज्ञा है। परमात्मा ब्राह्मण है।

तात्पर्य हुआ परमात्मा एवं सत्याग्रही, सत्य का आचरण करने वाला, ब्रह्म की उपासना वाला, वेदज्ञान पढ़ने पढ़ाने, जानने जनाने वाला, सत्य वाणी कहने वाला, तपस्यामय जीवन जीने वाला, अपने व दूसरें के प्राणों की रक्षा करने वाला, अन्न, जल, धन पदार्थों को ठीक रखने वाला, सत्यज्ञान

---

१. *(i) विद ज्ञाने (अ.), (ii) विद विचारणे (रु.), (iii) विद सत्तायाम् (दि.), (iv) विदॢ लाभे (तु), (v) विद चेतनाख्याननिवासेषु अथवा विद वेदनाख्यानपरिवादेषु (चु.)।*

को जीवन व कर्म में परिनिष्ठित करने वाला कर्मशील जीव ब्राह्मण होता है। क्रूर, हिंसक एवं हिंसा की शिक्षां, तान्त्रिक जादू टोना करने वाला ब्राह्मण नहीं होता है।

ब्रह्मगवी शब्द के **गौ शब्द का अर्थ**

गौ शब्द **गम्लृ गतौ** धातु से **गमेर्डोः**, उणा. २/६८ सूत्र से **डो** प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है। इस निष्पत्ति से **गच्छतीति गौः**=जो-जो गतिशील है, वह वह गौ शब्द पद वाच्य होता है। अब वे गमनशील पदार्थ परमात्मा की शक्ति, परमात्मा, जीव, पशु, इन्द्रिय, सुख, भूमि, वाणी, जल, किरण, चन्द्रमा कुछ भी हो सकते हैं, क्योंकि ये सभी पदार्थ गतियुक्त हैं।

गौ शब्द अनेक अर्थों वाला है, अतः महर्षि यास्क ने गौ शब्द के निघण्टु और निरुक्त के माध्यम से अनेक अर्थ व निर्वचन निर्दिष्ट किये हैं। यथा-

गौरिति वाङ्नाम। निघ. १/११ ॥ गौरिति स्तोतृनाम। निघ. ३/१६ ॥

गौरिति साधारणनाम, सूर्य, द्युलोक आदिनाम, निघ. १/४ ॥

गौरिति पदनाम, दान, जितेन्द्रियत्व, मेघ, विद्युत, सोम, उषा, निघ. ४/१, ५/५ ॥

गौरिति रश्मिनाम। निघ. १/५ ॥ गौरिति पृथिवीनाम। निघ. १/१ ॥

गौरिति पृथिव्या नामधेयं, यद् दूरं गता भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति। अथापि पशूनामेह भवत्येतस्मादेव। निरु. २/२/५ ॥

अर्थात् वाणी, स्तोता, सूर्य, द्युलोक, दान, जितेन्द्रियत्व, मेघ, विद्युत्, सोम, उषा, **रश्मि**=किरण एवं सूर्य से दूर-दूर तक गति करने वाली और जिसमें प्राणी गति करते हैं, उस पृथिवी की तथा स्वेच्छया विचरने वाली जीवन की आधार गाय पशु की गौ शब्द संज्ञा है।

यास्क इतने अर्थों की सीमा में ही नहीं रुके और भी गौ शब्द के अर्थ किये हैं। यथा-

अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति। निरु. २/२/५ ॥

अर्थात् तद्धित प्रत्यय से प्रतीयमान अर्थ से युक्त एवं तद्धित प्रत्यय से अयुक्त, तद्धित अर्थ वाले के समान अर्थ वाले मन्त्र होते हैं। यानी गाय का

दूध[1], घी, **अधिषवण**[2]=चर्म[3], सरेस, तांत[4], ज्या[5] आदि आदि **गौ शब्द के अर्थ हैं।**

आदित्योऽपि गौरुच्यते। निरु. २/२/६ ॥

अथाप्यस्यैको रश्मिश्चंन्द्रमसं प्रति दीव्यते (सुषुम्ण रश्मिः)... सो ऽपि गौरुच्यते ॥ निरु. २/२/६ ॥

सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते ॥ निरु. २/२/७ ॥

अर्थात् आदित्य, सूर्य की सुषुम्ण रश्मि एवं आदित्य की सभी रश्मियाँ **गौ** संज्ञक हैं।

महर्षि यास्क द्वारा निर्दिष्ट गौ शब्द के इन अर्थों से एवं औणादिक **गच्छतीति गौः**[6] निष्पत्ति से सुस्पष्ट है कि गौ शब्द केवल गाय पशु का वाचक नहीं है, अपितु परमात्मा, परमात्मा की शक्ति, वाणी, पृथिवी, द्युलोक, सूर्य, **किरण**=प्रकाश, इन्द्रिय, जल, धन, अन्न आदि अर्थों एवं गाय पशु सम्बन्धित दूध, घी, चर्म, आदि अनेक अर्थों का वाचक है। जिनका प्रकरणानुसार सम्बन्ध, समन्वय, समायोजन होता है। वेद में गौ शब्द अनेक प्रसङ्गो में आया है।

जो कोई केवल अक्षरानुबोध वाला होगा, शास्त्रज्ञ नहीं होगा, वह ही गौ शब्द के अर्थ के साथ गाय पशु का सम्बन्ध जोड़ेगा, शास्त्रज्ञ नहीं!

ब्रह्मगवी शब्द का अर्थ

ब्रह्मगवी शब्द **ब्राह्मण** एवं **गौ** इन २ शब्दों का समस्त शब्द है। ब्राह्मण शब्द सत्य, ज्ञान, तप, कर्म, ब्रह्म, मन्त्र आदि गुणधारक का वाचक है। गौ शब्द वेद, वाणी, उपासना, सूर्य, रश्मि, पृथिवी एवं गाय पशु आदि पदार्थों का वाचक है। **इन विशिष्टार्थ सम्बन्ध वाले ब्राह्मण और गौ शब्द का समास हो जाता है**, तब **ब्रह्मगवी** शब्द बनता है। जिसका शब्द

---

1. *गोभिः श्रीणीत मत्सरम् इति पयसः। निरु. २/२/५, ऋ. ९/४६/४*
2. *अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि इत्यधिषवण चर्मणः, निरु. २/२/५*
3. *अथापि चर्म च श्लेष्मा च। निरु. २/२/५ ॥*
4. *अथापि स्नाव च श्लेष्मा च। निरु. २/२/५ ॥*
5. *ज्यापि गौरुच्यते। निरु. २/२/५ ॥*
6. *गौ शब्द का निर्वचन पृष्ठ १७१ में द्रष्टव्य है।*

निर्वचन इस प्रकार है-

ब्राह्मणस्य गौः ब्रह्मगवी। ब्रह्म+गौ यहाँ षष्ठी समास होकर **ब्रह्मगौः** शब्द बना, ततः **गोरतद्धितलुकि**, पा.५/४/९२ सूत्र से समासान्त **टच्** होकर ब्रह्मगव शब्द सिद्ध हुआ, पुनः**षिद्गौरादिभ्यश्च**, पा.४/१/४१ सूत्र द्वारा **ङीष्** होकर **ब्रह्मगवी** बना।

ब्राह्मणस्य गौः **ब्रह्मगवी** शब्द का अर्थ हुआ-ब्राह्मण की गौ।

ब्रह्मगवी शब्द का ब्राह्मण की गौ यह अर्थ शब्द दृष्ट्या तो नितान्त सही है। पर गौ अर्थ का वाचक क्या होवे ? यह सन्देह तो बना ही रह गया, क्योंकि ब्राह्मण की गौ अर्थ से कोई विशेष पदार्थ वाच्य नहीं हो रहा है। लोक में गौ का अर्थ गाय पशु बहुत प्रसिद्ध है, वह अर्थ भी सर्वत्र संगत नहीं हो सकता, यह पूर्व निर्दिष्ट गौ शब्द के अर्थों से स्पष्ट है। अतः प्रकरणानुसार गौ शब्द के अर्थों का ब्रह्म शब्द के साथ संबन्ध होगा। मन्त्रार्थ करने में प्रकरण का अतिमहत्त्व है, इस विषय में महर्षि यास्क का कथन है-

न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः।

निरु.१३/१२॥

अर्थात् मन्त्रों का अर्थ चिन्तन प्रकरण छोड़ कर नहीं करना चाहिए, अपितु प्रकरणानुसार ही मन्त्रों का अर्थ, निर्वचन करना चाहिये। इस प्रकार **ब्रह्मगवी शब्द के अर्थ हैं-**

ब्रह्मगवी=परमात्मा की शक्ति

ब्रह्मगवी=सत्य, कर्म, गुणयुक्त ब्राह्मण की वाणी

ब्रह्मगवी=जीव की शक्ति एवं वाणी

ब्रह्मगवी=परमात्मा का सूर्य, पृथिवी आदि

ब्रह्मगवी=ब्राह्मण की गाय, पृथिवी, धन, इन्द्रिय

ब्रह्मगवी=ब्राह्मण की वाणी रूपी गाय

आक्षेपक ने ब्रह्मगवी विषय वाले अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त को आक्षेप रूप में प्रक्षिप्त किया है। जिसमें ७३ मन्त्र व ७ पर्याय हैं। उन ७ पर्यायों के मन्त्रों में प्रकरणानुसार गौ शब्द के अर्थ की संगति होगी।

सर्वत्र गौ शब्द का गाय **पशु अर्थ** करना **असंगत** है।

ग्रिफिथ, ह्विटनी आदि विदेशी अनुवादकों की भूल है कि जिन्होंने जहाँ कहीं भी वेद में गौ शब्द देखा और उसका गाय पशु अर्थ कर डाला। विदेशियों का यह असंगत अर्थ ही उपेन्द्र राव के हाथों में है, जिसके कारण कभी तो **ब्राह्मण** कोसते हैं और कभी **अथर्ववेद** द्रष्टा **अथर्वा** को ! राव के पास अपनी दृष्टि तो कोई है ही नहीं !

ब्रह्मगवी शब्द के ब्राह्मण की वाणी अर्थ में यह सन्देह करना भी व्यर्थ है कि गौ का अर्थ यदि वाणी ही करना था तो **गौ** शब्द क्यों रखा ? **गौ** शब्द रखने का भी प्रयोजन है। **गच्छतीति गौः**[1] जो वाणी गमनशीला हो, ज्ञान कराने वाली, उपलब्धि कराने वाली हो, वह वाणी ब्रह्मगवी शब्द से अभिहित हो साधारण वाणी नहीं, एतदर्थ वाणी अर्थ के लिए भी गौ शब्द का वेद में निर्देश है। अन्यच्च जैसे गौ पशु निर्दोष, शान्त, रक्षणीय होती है, वैसे ही अपशब्द रहित, अस्खलित, शान्ति देने वाली रक्षणीय **ब्राह्मण की वाणी** गौ कही जाती है।

ब्राह्मण की वाणी रक्षणीय है, अनुलङ्घनीय है, पालनीय है, अघन्या है क्योंकि ब्राह्मण सत्य, ज्ञान, तप आदि से विभूषित होता है। उसकी वाणी उपकारी होती है, **उसकी वाणी का पालन न करने पर,** उसकी वाणी को खा लेने पर पाप आदि जीवन को नष्ट कर देते हैं।

भूमि रूपी गौ की सींचने, जोतने आदि द्वारा सेवा करने से भूमि गौ एक अन्न दाने की जगह अनेक अन्न के दाने देती है, सेवा न करने पर भुखमरी प्राप्त होती है।

पशु रूपी गौ का पालन करने से वह पशु घास के बदले अमृत रूप दुग्ध, घृत आदि देती है, पालन न करने पर कुपोषण या अपोषण प्राप्त होता है।

सूर्य रश्मि रूपी गौ का सेवन करने से अमूल्य जीवनीय शक्ति मिलती है, सेवन न करने पर शक्ति का ह्रास प्राप्त होता है।

---

१. गतेस्त्रयो अर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च।

उसी प्रकार वाणी रूपी गौ की रक्षा, आदेश पालन करने से ज्ञान, आचार, व्यवहार की उपलब्धि एवं सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। पालन न करने पर, दुःख, संकट, आपत्ति आदि प्राप्त होती है।

इस प्रकार **ब्रह्मगवी शब्द का** मात्र ब्राह्मण की गाय पशु अर्थ ही नहीं है, **अपितु ब्राह्मण का ज्ञान, ब्राह्मण की वाणी, ब्राह्मण=परमात्मा की शक्ति आदि अर्थ भी हैं।**

ब्रह्मगवी शीर्षान्तर्गत आये **वशा शब्द का अर्थ**

अथर्ववेद के कुछ सूक्तों का विषय व देवता **वशा** है। इस वेदोक्त **वशा** शब्द का अर्थ भाष्यकार **पं. शङ्कर पाण्डुरंग, दारिल, सायण** आदि एवं **ह्विटनी, ग्रिफिथ** आदि यूरोपियन अनुवादक लोक प्रसिद्ध मात्र बन्ध्या गौ करते हैं। इन भाष्यकारों के अर्थ को ही उपेन्द्र राव पान के पत्ते की भाँति संभाले बैठे हैं ! और अथर्ववेद के १२/४/१-७३, १०/१०/१-३४ मन्त्रों में आये **वशा** शब्द **का बन्ध्या** गौ अर्थ करके दोनों सूक्तों के मन्त्रों की खिल्ली कर रहे हैं। जो कि उनकी बाल बुद्धि, नादानी के संकेतक हैं।

वशा शब्द **वश कान्तौ** धातु से **वशिरण्यो रूपसंख्यानम्** वा.पा.३/२/५८ वार्तिक द्वारा **अच्** तथा **टाप्** द्वारा निष्पन्न होता है। जिसकी व्युत्पत्ति है-

वशति यः या वा येन यं वासः सा वा वशा।

अर्थात् जो वश में करता है, जिसके द्वारा वश में करता है, जिसको वश में करता है, वे सब वशा कहे जाते हैं।

तात्पर्य हुआ **वश में करने वाला ईश्वर, ईश्वर की शक्ति, जगत्, पृथिवी आदि पदार्थ वशा कहे जाते हैं, क्योंकि ये पदार्थ भूमि आदि में अन्न आदि को रोकते हैं, उत्पन्न करते हैं एवं जो उत्पत्ति रोकता है या जिसकी उत्पत्ति रुकी होती है, वह भी वशा कहा जाता है।**

उत्पत्ति निरोध वाचक वशा शब्द के प्रलयस्थ, प्रकृति, गौ, स्त्री आदि अनेक वाच्यार्थ हैं।

वशा शब्द के इन अर्थों का प्रकरण के अनुसार सम्बन्ध होता है।

अथर्ववेद के १० वें काण्ड के १० वें सूक्त में ब्रह्माण्ड को वश में करने वाले **परमात्मा की शक्ति का वशा शब्द के द्वारा प्रतिपादन है**। अथर्ववेद के इस सूक्त में परमात्मा की शक्ति का, सामर्थ्य का प्रतिपादन है। वशा शब्द का बन्ध्या गौ अर्थ नहीं है, यह इस सूक्त के २३ वें मन्त्र से ही स्पष्ट है। उस २३ वें मन्त्र में **वशा** की परिभाषा बताते हुए कहा-

ससूव हि तामाहुर्वशेति। अथर्व.१०/१०/२३ ॥

अर्थात् जब परमात्मा की शक्ति प्राणव उत्पादक शक्ति, **ससूव**=उत्पन्न करती है, तब **ताम्**=उस शक्ति को व परमात्मा को, **वशा इति**=यह वशा है, वशी भूत करने वाली है ऐसा, **आहुः**=कहा जाता है।

परमात्मा की इस वशा शक्ति का सम्बन्ध जगदुत्पादन, अन्नादि उत्पादन, शक्ति वर्धन तथा काम, क्रोधादि नाशन, शत्रु निवारण आदि कार्यों में होता है।

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के चौथे सूक्त में भी **वशा** शब्द का अर्थ ईश्वर की शक्ति, दान, ज्ञान आदि की प्राप्ति आदि है एवं **वशा** द्वारा ज्ञान के उपयोग दुरुपयोग, हानि लाभ आदि का सूक्त में कथन है।

इस प्रकार उद्धृत सूक्तों के **वशा** शब्द का अर्थ मात्र **बन्ध्या गौ अर्थ नहीं है** और न वशा का अर्थ ओझाओं की गौ आदि अर्थ है।

ब्रह्मगवी केआक्षिप्त मन्त्र

उपेन्द्र राव ने ब्रह्मगवी सूक्त के जिन मन्त्रों को कृत्या प्रपञ्च में निरर्थक जोड़ा है। वे मन्त्र हैं-

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥

अथर्व.१२/५ (३/७)/१/१२ ॥

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशयनं वलग ऊबध्यम् ॥

अथर्व.१२/५(५/९)/१/३९ ॥

वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ अथर्व.१२/५ (६/१०)/७/५३ ॥

सैषा भीमा., अथर्व.१२/५ (३)/१२ अथर्ववेद के इस मन्त्र का अर्थ है-**सा एषा**=वह यह, **ब्रह्मगवी**=ब्राह्मण की वाणी, **आवृता**=प्रतिबद्ध,

निरुद्ध हुई, **भीमा**=भयंकर सिद्ध होती है, प्रतिबद्ध वाणी, **अघ विषा**=पाप को फैलाने वाली (**विष्लृ व्याप्तौ**) तथा **साक्षात् कृत्या=साक्षात्**=प्रत्यक्ष वाणी का निरोध करने वाले के लिए नाशक सिद्ध होती है। ब्राह्मण की वाणी का रोकना, **कूल्बजम्**=नदी के कूल=किनारों में रुके, प्रतिबद्ध, **वजम्**=जल प्रवाह के (**वज गतौ**)समान होता है।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि **ब्रह्मगवी**=परमात्मा के ज्ञान वेद वेदज्ञ ब्राह्मण की वाणी को, आदेश को राजा रोकता है, तो सम्पूर्ण राष्ट्र दिशाविहीन होकर पाप, चोरी, हत्या, आदि कार्यों में जुड़ जाता है। ब्राह्मण की वाणी क्षत्रिय बल, तोप, गन, बन्दूक आदि का बल नहीं होता, यह आत्मिक बल होता है। जिसके द्वारा ब्राह्मण व्यक्ति, राष्ट्र आदि की रक्षा करता है। ब्राह्मण का यह वाणी रूपी शस्त्र बड़ा ताकतवर होता है।

महर्षि दयानन्द के **अमीचन्द तू है तो हीरा, किन्तु कीचड़ पड़ा है,** इस ब्रह्मगवी रूप वाणी से अमीचन्द पाप छोड़कर शुभ कर्म में लग गया। यह **वाणी की महिमा** जादू टोना यानी उपेन्द्र राव के शब्दों में तान्त्रिक जादू टोना करने वाले क्रूर ओझा का कार्य कहा जाने वाला कार्य नहीं है, और न ओझा का कृत्या=हिंसा का कार्य है। यह तो वाणी की यथार्थ महिमा है। इतिहास इसके साक्षी हैं।

तस्या आहननम्., अथर्व.१२/५ (५)/३९ मन्त्र का अर्थ है- **तस्याः**=उस **ब्रह्मगवी**=ब्राह्मण की वाणी का, **आहननम्**=मारना, उल्लंघन करना, **कृत्या**=घातक होता है, **आशसनम्**=टुकड़े-टुकड़े रूप में काटना, **मेनिः**=वज्र रूप (**मेनिरिति वज्रनाम**,निघ.२/२०) होता है और, **ऊबध्यम्**= बुरी तरह उसको बाँधना, **वलगः**=गुप्त, घातक प्रयोग के समान है।

मन्त्र का भाव है विनष्ट की गई ब्राह्मण की वाणी विनाश की कारण बनती है।

योगीराज श्रीकृष्ण ने वाणी के माध्यम से दुर्योधन के समक्ष सन्धि का प्रस्ताव रखा, पर सन्धि का प्रस्ताव न मानने पर, योगीराज की बात न मानने पर सबका विनाश हुआ वेद या वाक् रूपी वाणी भगवान् का दिया वरदान

है, उसका महत्त्व समझाना चाहिये। वाणी रूपी धनुष को जितना अपनी ओर खींचा जाता है, जो कहा जाता है, उसके अनुसार आचरण होता है, उतना ही वाक् रूपी तीर का प्रभाव होता है।

वैश्वदेवी., अथर्व. १२/५ (६)/५३ मन्त्र का अर्थ है-हे वाणी ! तू, **वैश्वदेवी**=सब देवों की प्रतिरूपा वेदवाणी अथवा परमात्मा की शक्ति ! **उच्यसे**=कही जाती है, **आवृता**=प्रतिबन्धित की जाती हुई तू, ब्रह्मगवी, **कृत्या**=घातक सिद्ध होती है एवं, **कूल्बजम्**=तुम्हारा रोका जाना नदी तटों के जल प्रवाह को रोके जाने के समान है।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि वेद, ज्ञानी, ब्राह्मण, पुरोहित आदि के द्वारा दिये जाते ब्रह्मगवी-उपदेशों का पालन नहीं होता, वचनों के आश्रित व्यवस्थायें नहीं होती, तो वह ब्रह्मज्ञों को नष्ट कर देती है, उनके पुण्यफलों को छीन लेती है।

इस प्रकार इन मन्त्रों में तान्त्रिक जादू टोना आदि वीभत्स हिंसा प्रकरण का प्रतिपादन नहीं है। वेद, ज्ञानी, शासक आदि की परोपकारिणी वाणी के महत्त्व का सूक्त में वर्णन है।

ब्रह्मगवी के लिए राक्षसी-शिक्षा, की समीक्षा

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥

अथर्व. १२/५ (६/१०)/५/५१ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ अथर्व. १२/५ (६/१०)/६/५२ ॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ अथर्व. १२/५ (६/१०)/८/५४ ॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ अथर्व. १२/५ (६/१०)/८/५५ ॥

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥

अथर्व. १२/५ (६/१०)/१४/६० ॥

छिन्ध्या., अथर्व. १२/५ (६)/५१, **आददानम्.**, अथर्व. १२/५ (६)/५२, **ओषन्ती.**, अथर्व. १२/५/ (६)/५४, **क्षुरपविः.**, अथर्व. १२/५ (६)/५५, **अघ्न्ये प्र.**, अथर्व. १२/५ (६)/६० उपेन्द्र राव की दृष्टि में अथर्ववेद के ये मन्त्र **राक्षसी शिक्षा** देने वाले हैं। उनका आरोप है-'एक

तरफ तो **अघ्न्ये** कहकर न मारने वाली कहा जा रहा है, दूसरी तरफ **प्र शिरो जहि**=सिर काट, यह शिक्षा दी जा रही है।'

अथर्ववेद के इन मन्त्रों का **देवता ब्रह्मगवी** है। ब्रह्मगवी शब्द का अर्थ व्यापक ब्रह्म, व्यापक ब्रह्म की शक्ति, ब्रह्म=परमात्मा द्वारा प्रदत्त गौ=(**गौरिति वाङ्नाम**, निघ.१/११) वेदवाणी तथा ब्रह्म=ज्ञानी के आश्रय में रहने वाली वाणी रूप गौ है।

ब्रह्मगवी का जब ब्रह्म व ब्रह्म शक्ति, वेद वाणी व ब्राह्मण की वाणी अर्थ होगा, तब सूक्त का भाव है कि ब्रह्म, ब्रह्मशक्ति, ज्ञानी ब्राह्मण की वाणी **अघ्न्या**[1]=अत्याज्य है। जो वेदवाणी का त्याग कर देता है, वह नाना प्रकार के अपराध कर बैठता है, वेदज्ञों को दुःख देता है, ऐसे वेद घातक का वेदवाणी सिर तोड़ देती है।

ब्रह्मगवी का अर्थ जब **गौ पशु** होगा, तब सूक्त का तात्पर्य है कि **अघ्न्या**= न मारने योग्य गौ को जब घातक मारता है, तब वह वह ऐसी शक्ति से युक्त हो जाये, जिससे घातकों को नष्ट कर दे, उसमें इतना साहस हो जाये कि गोघातक गौ पशु से भयभीत हो जावे।

छिन्ध्या., अथर्व.१२/५(६)/५१, **आददानम्.**, अथर्व.१२/५(६)/५२ मन्त्रों का अर्थ है-हे **आङ्गिरसि**=ब्राह्मण को अग्रगण्य बनाने वाली वेदवाणि ! **तू, ब्रह्मज्यम्=ब्रह्म**=वेद व ब्राह्मण की हानि करने वाले को (**ज्या वयोहानौ**), **छिन्धि**=काट डाल, **आ छिन्धि**=सब ओर से काट डाल, **प्र छिन्धि**=अच्छी प्रकार से काट डाल, **क्षापय क्षापय**=उखाड़ उखाड़, **आददानम्**=ज्ञान घातक (**दो अवखण्डने**) का, उप दासय=नाश कर।

मन्त्रों का तात्पर्य इतना ही है दुष्ट मानसिकता वाले जन वेदवाणी को ठुकराते हैं, तो उनका सर्वनाश होता है। वेदवाणी रहित व्यक्ति एवं राष्ट्र अन्याय, झूठ, दुराचार आदि दोषों से लिप्त हो जाते हैं। अतः मनु महाराज ने वेद वाणी के त्याग को मृत्यु रूप कहा है[2]। वेदवाणी चाकू, हसुआ,

---

१. *अघ्न्या अहन्तव्या भवति, अघघ्नीति वा।* निरु.११/४/१॥

२. *अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।* मनु.५/४

खुर्पी, फावड़ा, बन्दूक जैसा शस्त्र नहीं है, अपितु अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ आदि की उत्पत्ति के रूपों में वज्र रूपा होती है, शस्त्र रूपा बनती है। वेदज्ञान रहित होने से काम, क्रोधादि के फल प्राप्त होते हैं।

ओषन्ती., अथर्व.१२/५(६)/५४ मन्त्र का अर्थ है-वेदज्ञान से रहित व्यक्ति व राष्ट्र को वेदवाणी, **ओषन्ती**=सन्ताप देती हुई, जलाती हुई, **समोषन्ती**=खूब परिताप देती हुई, **ब्रह्मणः**=परमात्मा प्रदत्त वेदवाणी, **वज्रः**=शस्त्र होती है।

मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है, जो वेद के विरुद्ध आचरण करेगा, **अत्राजहीत ये असन् अशिगः**, अथर्व.१२/२/२७, **अत्रा जहीत ये असन् दुरेवाः**, अथर्व.१२/२/२६, **उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि**, अथर्व.८/४/२२, अर्थात् जो अकल्याणी दुर्गुण हैं उन्हें छोड़ो, पाप व पापी का साथ छोड़ो, भेड़िये की चाल, क्रोध आदि छोड़ो। वेद की इन आज्ञाओं का जो परित्याग कर देता है, उसके लिए वेद की एतादृशी शिक्षायें ब्रह्म की वज्र के समान हो जाती हैं। इन शिक्षाओं का परित्याग करने से राग द्वेष बढ़ता है। दुःख की प्राप्ति ईश्वर का फेंका गया वज्र होता है।

क्षुरपविर्., अथर्व.१२/५(६)/५५ मन्त्र का अर्थ है-हे अपनायी गई, **आङ्गिरसि**=शक्ति, रूप, **ब्रह्मगवी**=वेदवाणि ! **त्वम्**=तू परित्यक्त होती हुई, **क्षुरपविः**=छूरे के समान तीक्ष्ण धार वाली, **भूत्वा**=होकर तथा, **मृत्युः**=मृत्यु रूप होकर, **विधाव**=प्राप्त होती है।

मन्त्र का भाव है **न पापात्वाय रासीय**, ऋ.७/३२/१८, **मा नो मर्तस्य परि छात्**, ऋ.३/१५/६, अर्थात् मैं पाप की ओर न झुकूँ, शत्रु के दुर्विचार, कुबुद्धि हम पर हावी न हो आदि वेद निर्देशों का परित्याग करने पर नाना पापाचार प्रविष्ट हो जाते हैं, जो मृत्यु रूप होते हैं।

अघ्न्ये., अथर्व.१२/५(६)/६० मन्त्र का अर्थ है-हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्य, अत्याज्य वाणी ! तुम, **ब्रह्मज्यस्य**=ब्रह्म अनुपासक, अवेदज्ञ, **कृतागसः**=अपराधी, **अराधसः**=असफल(**राध साध संसिद्धौ**), **देवपीयोः**=दिव्य गुण व विद्वान् घातक जन के, **शिरः**=सिर को, **प्र जहि**=नष्ट कर

देती हो।

मन्त्र का तात्पर्य हुआ जो अघ्न्या=अत्याज्य वेदवाणी को आचार, विचार, व्यवहार आदि से पृथक् कर देता है, सत्यज्ञान का परित्याग कर देता है, वह, **वाचाऽनृतपरुषसूचनाऽसंबद्धानि.....सेयं पापात्मिकावृत्तिर-धर्माय, न्याय.वात्स्या.** १/१/२ अर्थात् सम्पूर्ण 'दुरितों, पापों से युक्त हो जाता है। पापों से युक्त होना सिर का कुचलना सदृश है।

इन सूक्तों के मन्त्रों में जहाँ ब्रह्मगवी का अर्थ गौ पशु है, वहाँ गौ का परित्याग करने पर शरीर, इन्द्रिय, बल आदि के रोग वज्र रूप बनकर घात करते हैं। गौ का दूध वात, पित्त को नष्ट करने वाला व बुद्धि को बढ़ाने वाला है, शरीर को पुष्ट,नीरोग, बनाता है।

मन्त्र में आये **प्र शिरो जहि**=सिर को काट या काटती है इस पद का तात्पर्य छुरा घोंपना नहीं है, अपितु दुर्बलता, अज्ञानता आदि बाधाओं का द्योतक है।

वृश्च प्र वृश्च सं विश्च दह प्र दह सं दह। अथर्व.१२/५(७/११)/१/६२॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह॥ अथर्व.१२/५(७/११)/२/६३॥
यथायाद्यमसादनात्पापलोकान्परावतः॥ अथर्व.१२/५(७/११)/३/६४॥
एवां त्वं देवघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः॥
अथर्व.१२/५(७/११)/४/६५॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना॥ अथर्व.१२/५(७/११)/५/६६॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि॥ अथर्व.१२/५(७/११)/६/६७॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय॥ अथर्व.१२/५(७/११)/७/६८॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह॥ अथर्व.१२/५(७/११)/८/६९॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि॥ अथर्व.१२/५(७/११)/९/७०॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय॥ अथर्व.१२/५(७/११)/१०/७१॥
अग्निरेनं क्रत्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः॥
अथर्व.१२/५(७/११)/११/७२॥
सूर्य एनं दिवः णुदतां न्योषतु॥ अथर्व.१२/५(७/११)/१२/७३॥

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त के ७ वें पर्याय के ६२ से लेकर ७३ संख्या के मन्त्रों में ब्रह्मज्ञान, वेदज्ञान परित्याग करने वाले अथवा

ब्रह्म=वेद के ज्ञानी ब्राह्मण का उल्लंघन, विनाश को प्राप्त हो जाता है, उसकी बुद्धि, मन, विचार सब दूषित हो जाते हैं। वेदवाणी के परित्याग से जो-जो दोष होता है, उसे इन मन्त्रों में प्रतिपादित किया है।

वृश्च., अथर्व.१२/५(७)/६२ मन्त्र का अर्थ है-जो वेदवाणी का घात करता है, परित्याग करता है, उसे वेदवाणी, **वृश्च प्रवृश्च संवृश्च**=भेद देती है, अच्छी तरह छेद देती है, खूब छेदती है, **दह प्र दह सं दह**=जलाती है, अच्छी तरह जलाती है, खूब जलाती है।

ब्रह्मज्यम्., अथर्व.१२/५(७)/६३ मन्त्र का अर्थ है-उस घातक को, **देवि अघ्न्ये**=दिव्य ज्ञान देने वाली अत्याज्य वेदवाणि ! **अमूलात्**=सिर से पैर तक, **अनुसंदह**=फूँक डालती है।

यथा यात्., अथर्व.१२/५(७)/६४, **एवां त्वम्.**, अथर्व.१२/५(७)/६५, **वज्रेण.**, अथर्व.१२/५(७)/६६, **प्र स्कन्धान्.**, अथर्व.१२/५(७)/६७ अथर्ववेद के इन मन्त्रों का अर्थ है-**हे देवि अघ्न्ये**=अत्याज्य वेदवाणि ! **यमसादनात्**=नियन्त्रक परमेश्वर (**यम उ वै ब्रह्मा**, काण्व शत.ब्रा. ५/४/१/२३),**सादनात्**=दण्ड से, **परावतः**=दूर से बहुत दूर, **पापलोकान्**=पापियों को फल स्वरुप प्राप्त होने वाले लोकों, जन्मों को, **यथा**=जिस प्रकार पापी, **अयात्**=पहुँच जाये। **एवा**=इस प्रकार हे अवध्य वाणि ! **त्वम्**=तू, **ब्रह्मज्यस्य**=ब्रह्म उपासक वेदज्ञ एवं जीव घातक (ज्या वयोहानौ), **कृतागसः**=पापकारी, **देवपीयोः**=विद्वानों के शत्रु, **अराधसः**=असफल, कर्म सिद्धि में असमर्थ व्यक्ति के, **शतपर्वणा**=१०० नौंकों वाले, **तीक्ष्णेन**=तेज, **क्षुरभृष्टिना**=छुरे के समान भूनने वाले, **वज्रेण**=हथियार से, **स्कन्धात्**=कन्धों को, **प्र जहि**=काट, **शिरः प्र जहि**=और सिर को नष्ट कर।

लोमानि., अथर्व.१२/५(७)/६८, **मांसानि.**, अथर्व.१२/५(७)/६९, **अस्थीनि.**, अथर्व.१२/५(७)/७०, **सर्वाः.**, अथर्व.१२/५(७)/७१ मन्त्रों का अर्थ है-हे अवध्य वाणि ! **अस्य लोमानि**=इस वेद घातक, वेद विरोधी अनुपासक के लोमों को, **सं छिन्धि**=भली प्रकार काट, **अस्य**

त्वचम्=इसकी त्वचा को, **वि वेष्टय**=उल्टी लपेट दे, उधेड़ दे। **अस्य मांसानि शातय**=इसके मांस के लोथड़ों को नष्ट कर, **अस्य स्नावानि**=इसकी नस नाड़ियों को, **संवृह**=ऐंठ, कुचल दे। **अस्य अस्थीनि**=इसकी हड्डियों को, **पीडय**=पीड़ा पहुँचा, दुःख पहुँचा, **अस्य मज्जानम्**=इसकी मज्जा (हड्डियों का गूदा, चर्म) को, **नि र्जहि**=नष्ट कर।, **सर्वाः अस्य अङ्गा**=इसके सब अङ्गो को, **पर्वाणि**=जोड़ों को, **विश्रथय**=ढ़ीला कर दे।

अग्निरेनम्., अथर्व.१२/५(७)/७२, **सूर्य एनम्.**, अथर्व.१२/५(७)/७३ मन्त्रों का अर्थ है-हे वेदवाणि ! **एनम्**=इस ब्रह्मघाती, गोघाती को, **क्रव्यात् अग्निः**=कच्चे मांस को खाने वाली श्मशान अग्नि, **पृथिव्याः नुदताम्**=पृथिवी से निकाल दे, **उत् ओषतु**=और जला डाल, **वायुः**=वायु देव, **महतः वरिम्नः अन्तरिक्षात्**=बड़े विस्तृत अन्तरिक्ष से धकेल दे। **सूर्यः**=सूर्य, **एनम्**=इस हत्यारे को, **दिवः**=द्युलोक से, **प्र नुदताम्**=दूर फेंक दे, **न्योषतु**=निश्चय से जला दे, तपा दे।

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के ५ वें सूक्त के इन मन्त्रों में ब्रह्मगवी=व्यापक, ब्रह्म, ब्रह्म की शक्ति, वेदज्ञान को लक्ष्य कर उपासना व वेदज्ञान से रहित पापी व्यक्ति के नाश के लिए प्रार्थना की गई है और वह प्रार्थना अग्नि, वायु, सूर्य से प्रार्थना की गई है। ये प्रार्थनीय पदार्थ **ब्रह्म**=ईश्वर, ईश्वरीय शक्ति, वेदज्ञान, ज्ञानी, अग्नि, वायु, सूर्य सभी मारने काटने के क्षुरा, भाला, तलवार आदि नहीं है, और न ही ये पदार्थ भाला, तलवार आदि चलाते हैं। ये पदार्थ तो जीवन के आधार हैं, अतः ये पदार्थ कृत्याप्रपञ्च तान्त्रिक जादू टोना के साधक नहीं हैं। आक्षेपक इन पदार्थों को जादू टोना की राक्षसी शिक्षा से ओतप्रोत कहते हैं, जो निरर्थक ही है।

जब व्यक्ति न ईश्वर की सत्ता मानता है, न उपासना करता है, न वेदज्ञान को अपनाता है और न ही सदाचार, सद्व्यवहार, सत्शिक्षा का जीवन जीता है, हत्या हिंसा आदि दुष्कर्म करता है ऐसे व्यक्ति की जो दशा होती है, वही इस पञ्चम सूक्त में इन ब्रह्म, अग्नि आदि का नाम लेकर निर्दिष्ट की गई है। जो पापी होते हैं, वे अपने कर्मों से, **परावतः**=बहुत दूर

शीघ्र ही मनुष्य योनि में न लौटने वाले कीट, पतंग वृक्ष आदि की योनियों में चले जाते हैं। उनके कंधे और सिर रोगकृमियों से भर जाते हैं, लोम, त्वचा, नस, नाड़ी, हड्डियाँ पीड़ा, दर्द से घिर जाती हैं। मज्जा एवं शरीर के सभी अङ्ग, जोड़ रोगग्रस्त व टकटक आवाज वाले बन जाते हैं।

घातक की यह दशा होती क्यों है ? क्योंकि ईश्वर, ब्रह्मज्ञान, ब्राह्मण आदि से रहित व्यक्ति की, शरीर की जो **अग्नि**=जठराग्नि है, जिसका कार्य अन्न को पचाना, शरीर को स्वस्थ रखना एवं पुष्ट, सुदृढ बनाना है। वह हिंसा, घात, दुराचार, अत्याचार, कुकर्म आदि के भय से विकृत हो जाती है, मन्द पड़ जाती है। वैद्यों की भाषा में मन्दाग्नि दोष उत्पन्न हो जाता है। पुनः वह मन्दाग्नि शरीर में बुखार जलन उत्पन्न करती है, शरीर अशक्त, दुर्बल हो जाता है। भूख मिट जाती है, तृषा बढ़ जाती है, लोम कट जाते हैं या रुखे हो जाते है, त्वचा कट जाती है, तृषा बढ़ जाती है, नस नाड़ी मोटे हो जाते हैं या सूख जाते है, हड्डियाँ टूट जाती है या बढ़ जाती है, शरीर के जोड़ पीड़ा, दर्द के घर बन जाते हैं या ढ़ीले हो जाते हैं।

ईश्वर, वेदज्ञान व ब्राह्मण के तिरस्कार से राष्ट्र पराधीन होता है, भ्रष्ट्राचार बढ़ता है, चोरी, घूसखोरी राष्ट्र को चूस लेते हैं। ब्रह्मज्ञों का तिरस्कार करना पथ भ्रष्टता को उत्पन्न करता है। ब्राह्मण की वाणी शासक को इन्हीं विकृतियों की ओर संकेत करती है। ब्राह्मण की वाणी को रोकना, अनियन्त्रन करना आपत्तियों को बुलाना होता है।

ब्रह्मगवी=गौ पशु की अवगानना, गारना जहाँ राष्ट्र को दुर्भिक्ष, कुबुद्धि आदि कूप में धकेलते हैं, वहीं शरीर को रोगी, निस्तेज, बुद्धिहीनता आदि का शिकार बनाते हैं।

इस प्रकार इस सूक्त के मन्त्रों में व्यक्ति, शरीर, राष्ट्र आदि की रक्षा के उपायों का व ब्रह्मगवी के घातकों का जो परिणाम होता है, उसका दिग्दर्शन है। वेद के इस महत्त्वपूर्ण विवेचन को उपेन्द्र राव ने **कृत्या** प्रपञ्च **तान्त्रिक जादू टोना** नाम देकर लोगों को **भ्रमित करने** की जो साजिश की है, वह साजिश की कृत्या प्रपञ्च और तान्त्रिक जादू टोना है। वेद का यह सूक्त कृत्या

प्रपञ्च व तान्त्रिक जादू टोना का प्रतिपादक नहीं है।

आकाशीय-ग्रहोपग्रह, की समीक्षा

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नःशंनोऽभिचाराःशमु सन्तुकृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाःशमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु॥

अथर्व. १९/९/९

नक्षत्रमुल्काभिहतम्., अथर्व. १९/९/९ इस मन्त्र को उदाहृत कर **'आकाशीय-ग्रहोपग्रह'** शीर्षक में उपेन्द्र राव ने आरोप किया है कि यह मन्त्र फलित ज्योतिष का प्रेरक है। तान्त्रिक कृत्या सम्बन्धी आडम्बरों में भूमि, उल्का, नक्षत्र, देशोपसर्ग, ग्रह, चन्द्रमा, आदित्य, राहु, केतु से शान्ति की प्रार्थना की जाती है, उसी कृत्या, प्रपञ्च का कथन करने वाला यह मन्त्र है। पृ. ५१।

उपेन्द्र राव का यह आरोप भेड़ों के पीछे चलने वाले पांसुल पादों के सदृश है। भूमि, उल्का, नक्षत्र, आदि जड़ हैं, इस तथ्य से सभी सुपरिचित हैं। बिना दूसरे की सहायता से ये पदार्थ न चलते हैं, न स्थिर होते हैं, न सुख दुःख की उत्पत्ति करते हैं। **न तत्र सूर्यो भाति**[1], कठो. ५/१५, **भयादस्याग्निस्तपति**[2], कठो. ६/३ आदि उपनिषदों के वचनों तथा स्वतः प्रमाण वेद के **येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा**[3]. यजु. ३२/६, **स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्**[4] यजु. १३/४ आदि वेद मन्त्रों से सुस्पष्ट है कि द्यौ, भूमि आदि लोकों एवं सूर्य, अग्नि, नक्षत्र आदि पदार्थों को स्थिर, दृढ, प्रकाश गतियुक्त करने वाला परमात्मा है।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में जगन्नियन्ता लोकधारक ग्रह, नक्षत्र संचालक, देवाधिदेव ईश्वर से याचना की गई है कि नक्षत्र आदि पदार्थ कल्याणकारक

---

१. *न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।*
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ कठो.५/१५

२. *भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥* कठो.६/३

३. *येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।*
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु.३२/६

४. *हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत्।*
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु.१३/४

हों। जगन्नियन्ता से की गई यह प्रार्थना तान्त्रिक कृत्या प्रपञ्च नहीं है।

जगन्नियन्ता से की गई प्रार्थना को न समझना ही कृत्या एवं जालसाजी कहा जायेगा। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् जगद्धारक, नियन्त्रक परमात्मन्! हमारे उपकार के लिए निर्मित, **उल्का अभिहतं नक्षत्रम्**=उल्काओं से घिरा नक्षत्र समूह, **नः शम्**=हमारे लिए कल्याणकारी हो (**शमिति सुखनाम**, निघ. ३/६) सुखकारी हो, **अभिचाराः**[1] **कृत्याः**[2]=आन्तरिक दुःख देने वाले विष, कृमि, रोग आदि की कृत्यायें, कर्म, साधन, **उ नःशं सन्तु**=निश्चय से हमारे लिए शान्तिकारक हों, **निखाताः वलगाः**[3]=बम, बारुद आदि घातक, विस्फोटक, ज्वाला तथा, **देशोपसर्गाः**=देश, स्थान, भूमि के उपद्रव, उत्पाद, **उ**=निश्चय से, **नः**=हमारे लिए, **शं भवन्तु**=शान्तिदायक हों।

मन्त्र का तात्पर्य है जीवन के आधार नक्षत्र, उल्का आदि जो पदार्थ हैं, वे सब नियन्त्रक परमात्मा की शक्ति में बँधे हुए हैं। ये शान्ति प्रदान करें, वातावरण में व्याघात न हो। **अभिचाराः**=आन्तरिक कष्टों की, **कृत्याः**= पीड़ा, घातों का शमन हो तथा हमारी रक्षा के, **वलगाः**=सुरङ्ग आदि साधन, **उल्काः**=विद्युत् आदि पदार्थ सुव्यवस्थित हो। देश के **उपसर्गाः**=घात प्रतिघात मुँह न उठाये। यह प्रार्थना तान्त्रिक जादू टोना नहीं है।

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव का **'फलित ज्योतिष्य का प्रेरक अथर्ववेद है'** एक वाक्य है, जिस पर आदित्य मुनि की टिप्पणी लगी हुई है। जिसकी अन्तिम पंक्ति है 'उस समय २७ नक्षत्रों का प्रचार था, किन्तु यह जानना कठिन है कि नक्षत्रों की गणना किस प्रकार की जाती थी ? पृ. ५१.।

काल अखण्ड है। उस अखण्डित काल को सूर्य चन्द्र, ग्रह उपग्रह

---

१. अभिचार शब्द का निर्वचन व अर्थ विशेष की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ १५३-१५७ में द्रष्टव्य है।

२. (i) कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४, १५७ में द्रष्टव्य है।

(ii) कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २१ में द्रष्टव्य है।

३. वलग शब्द की विस्तृत व्याख्या ११४, १३७, १५३, १५७ में द्रष्टव्य है।

आदि द्युलोकीय पदार्थों की स्थिति, प्रगति आदि के द्वारा दिन रात, अर्ध मास, मास, षण्मास, ऋतु, संवत्सर आदि रूपों में अवखण्डित किया गया है। काल को अवखण्डित करने वाले इन सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि के रूपों, भेदों आदि का वेदों में भली भाँति प्रतिपादन है।

चारों वेदों का ज्ञान पूर्ण है एवं एक साथ प्राप्त हुआ ज्ञान है। जितनी भी ज्ञान विधायें हमें दृष्टिगोचर होती हैं, वे सब वेद से निःसृत हैं। जो ज्ञान वेदों में है, वही ज्ञान अन्यत्र है, उससे भिन्न नहीं। ऋतु, मास आदि का परिज्ञान ऋक्, यजुः, साम, अथर्व **चारों वेदों** में निबद्ध है। नक्षत्र विषय का ज्ञान भी वेदों में प्रख्यात है। अथर्ववेद चूँकि अन्य वेदोक्त ज्ञानों का रक्षक, संशय निवर्तक है, साथ ही उन वेदोक्त ज्ञान राशियों का पूरक है, अत एव अथर्ववेद में नक्षत्रों के नाम गणना आदि का ज्ञान विस्तार से प्रतिपादित है। नक्षत्र नाम व गणना के सूचक मन्त्र हैं-

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पष्यो भानुराश्लेषा अयं मघा मे॥
पुण्यं पूर्वाफाल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे असतु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम्॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजन्मे रासतां पुष्पमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय् आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु॥

अथर्व. १९/७/२-५

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में क्रमशः कृत्तिका रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु पुष्य, आश्लेषा मघा, पूर्वा फाल्गुनी उत्तरा फाल्गुनी, हस्त चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् श्रवण, **श्रविष्ठा**=धनिष्ठा, शतभिषज्, पूर्व प्रोष्ठपदा उत्तर प्रोष्ठपदा=पूर्व भाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती **अश्वयुज्**=अश्विनी, भरणी इन २८ नक्षत्रों को परिगणन है।

वेद के इस नक्षत्र परिगणन में वही क्रम है, जो क्रम वर्तमान में सूर्य

सिद्धान्त आदि ज्योतिष के ग्रन्थों में नक्षत्रों का किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान की नक्षत्र गणना का जो क्रम है, वह वेद से ही लिया गया है, अतः वैदिक काल एवं अवैदिक काल में नक्षत्रों की गणना किस प्रकार की जाती थी ? अतः आदित्य मुनि द्वारा उठाई गई प्रश्न की उद्भावना निःसार है।

वेद के इस पाठ में यह संदेह उठाना भी व्यर्थ होगा कि मन्त्रों का प्रारम्भ चित्रा से क्यों नहीं हुआ ? चित्रा नक्षत्र से सूक्त का प्रारम्भ न करने का यह हेतु है, क्योंकि इन नक्षत्रों का वर्तुल मण्डल के रूप में आवर्तन होता है, जिसका चैत्र मास से अतिरिक्त मासों में भी चित्रा आदि नक्षत्रों का ही संयोग होता है।

जङ्गिडमणिः, की समीक्षा

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत्॥ अथर्व. १९/३४/२
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ अथर्व. १९/३४/४

या गृत्स्यः., अथर्व. १९/३४/२, **कृत्यादूषणः**, अथर्व. १९/३४/४ जङ्गिड़मणि विषय वाले अथर्ववेद के ये मन्त्र तान्त्रिकों की जादू टोना की क्रिया के प्रतिपादक हैं। यह उपेन्द्र राव का आरोप है।

राव का **यह आरोप प्रलाप मात्र** है। मन्त्रों में आया जङ्गिड़ शब्द जादू टोना का वाचक नहीं है, यह सामर्थ्य, शक्ति वाले पदार्थों का वाचक है। पाप, दुःख, रोग आदि नाशक पदार्थ जङ्गिड कहे जाते हैं।

ईश्वर, वीर्य, प्राण शक्ति एवं सोम, अर्जुन औषधियाँ जङ्गिड[1] शब्द से वाच्य होती हैं।

या गृत्स्यः., अथर्व. १९/३४/२ मन्त्र का देवता जङ्गिडः है। जङ्गिड शब्द ईश्वर, वीर्य, प्राण, अर्जुन औषधि आदि का वाचक है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **याः**=जो, **त्रिपञ्चाशीः**=१५० (**त्रिवारं पञ्चाशत् संख्या**)

---

१. जङ्गिड शब्द के अर्थ एवं निर्वचन पृष्ठ ८७-८९ में द्रष्टव्य हैं।

यानी असंख्य, मन, बुद्धि, शरीर, ज्ञान व कर्म, इन्द्रियों की जो **गृत्स्यः**=अभिकाङ्क्षायें **(गृधु अभिकाङ्क्षायाम्)**, **च**=और, **ये**=जो, **शतम्**=सौ, सैंकड़ों या अनेक, **कृत्याकृतः**=दुःख देने वाले रोग, व्याधियाँ हैं, उन, **सर्वान्**=सब हिंसक क्रियाओं को, **तेजसः**=उनके तेज, प्रभाव से, **जङ्गिड**=जङ्गिड औषधि, ईश्वर आदि, **विनक्तु**=पृथक् कर देते हैं, और उन्हें, **अरसान्**=रसहीन निष्प्रभावी, **करत्**=करती है।

मन्त्र का तात्पर्य है जङ्गिड पद वाच्य ईश्वर, औषधि, बल, वीर्य आदि पदार्थ, **त्रिपञ्चाशीः**=रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि विषयक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक बहुत सी जो अभिकांक्षायें हैं, भोग विलास की वृत्तियाँ हैं तथा रोग रोगकृमि आदि हैं उनकी निवृत्ति एवं उन्हें निष्प्रभावी कर देती है।

कृत्यादूषणम्., अथर्व. १९/३४/४ मन्त्र का अर्थ है-अयं **जङ्गिडः कृत्यादूषणः एव**=यह जो ईश्वर, औषधि पदवाच्य जङ्गिड है वह हिंसा की बाधाओं, विकृतियों, रोग समूहों का निश्चय से नाशक है, **अथ उ**=और निश्चय से, **अरातिदूषणः**=कंजूसी, अदानवृत्ति को दूर करता है, **अथ**=और, **सहस्वान्**=शक्तिशाली रोगादि के प्रभाव को सहन करने वाला, **जङ्गिड**=औषध, ईश्वर, **नःआयूंषि**=हमारी आयु को, **प्रतारिषत्**=बढाता है।

मन्त्र का तात्पर्य है कि जङ्गिडमणि हिंसा, घात के दोषों, अदानवृत्ति को हटाने वाला एवं आयु प्रदान करने वाला है। यह जङ्गिड तान्त्रिकों के जादू टोना का साधन नहीं है, अपितु आधि, व्याधियों को नष्ट करने का साधन है।

आञ्जन, की समीक्षा

आञ्जन पदार्थ के विषय में उपेन्द्र राव **'अञ्जनों की झूठी बड़ाई, की समीक्षा'** प्रसङ्ग में जमकर दोष उपस्थापित कर चुके हैं। विस्मृति वशात् उन्होंने पुनः **'कृत्या की उपाधि वाले पदार्थ'** शीर्षक में आञ्जन विषय को धर दबोचा ! सन्तोष इस बात का है कि आञ्जन पदार्थ में पुनः दोष देकर उपेन्द्र राव ने कृत्या सम्बन्धी आरोपों में 'इस प्रकार कृत्या प्रपञ्च समाप्त हुआ' इस वाक्य के साथ लगाम लगा दी ! आक्षिप्त मन्त्र है-

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम्।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि श्रृणाञ्जन॥ अथर्व. १९/४५/१

ऋणात्., अथर्व. १९/४५/१, अथर्ववेद के इस मन्त्र को उपेन्द्र राव जादू टोना का प्रेरक मान रहे हैं, जो भ्रान्ति के अतिरिक्त कोई नई विवेचना नहीं है।

मन्त्र का देवता **आञ्जनम्** है। **आञ्जन**[1] शब्द प्रकट, संघात, दीप्ति, गति, ज्ञान, प्राप्ति कराने वाले ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि पदार्थों का वाचक है। आञ्जन शब्द का अर्थ जादू टोना नहीं है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **ऋणात् ऋणम्**=ऋण लेने के पश्चात्, **इव**=जैसे, **गृहं संनयन्**=ऋणी व्यक्ति ऋण को ऋणदाता के गृह में पहुँचाता है, वैसे **आञ्जन**=ईश्वर, जीव, वीर्य आदि, **कृत्याम्**[2]=हिंसा, रोग, रोगकृमियों को, **कृत्याकृतः**=हिंसा करने वाले शत्रु व रोगकृमियों के आश्रय में पहुँचाते हैं, यह **आञ्जन**=ईश्वर, बल, वीर्य, राजा आदि, **चक्षुः मन्त्रस्य**=आँख के इशारों अथवा गुप्तचरों की मन्त्रणा वाले, **दुर्हादः**=दुष्ट, कपटी हृदय वाले की, **पृष्टीः**=पसलियों को, **अपि शृण**=काट डालता है।

मन्त्र का तात्पर्य है आञ्जन शब्द वाच्य ईश्वर, जीव, प्रकृति, राजा, औषधि आदि पदार्थ तेजस्वी शक्ति वाले होते हैं। तेजस्वी शक्तिवाले होते हैं। तेजस्वी शक्ति वाले होने से समस्त **कृत्या**=घात, प्रतिघात, रोगों को नष्ट कर देते हैं। ईश्वर, राजा आदि रक्षक दुष्टों की भावनायें कुचल देते हैं, पनपने नहीं देते।

इस मन्त्र को तान्त्रिक जादू टोना की विधियों में संलग्न करना उपेन्द्र राव की दूषित मनोवृत्ति है। मन्त्र में ऐसा कोई संकेत नहीं है, जिससे जादू टोना[3] सिद्ध हो।

इस प्रकार **'कृत्या की उपाधि वाले पदार्थ'** शीर्षक में जितने भी दोष

---

१. *आञ्जन शब्द का अर्थ विशेष 'आञ्जनों की झूठी बड़ाई, की समीक्षा' के पृष्ठ ५७-५९ एवं २०५, २३० में द्रष्टव्य है।*

२. (i) *कृत्या शब्द की निष्पत्ति व अर्थ विशेष पृष्ठ ६७, १११, ११२, १२३, १३०-१३४, १५७ में द्रष्टव्य है।*

(ii) *कृत्या शब्द का शब्द विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलगम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ में द्रष्टव्य है।*

३. *जादू टोना शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ विशेष पृष्ठ १४५, १४६ में द्रष्टव्य है।*

हैं, वे सब व्यर्थ हैं, अपलाप हैं, तत्त्व से रहित हैं।

दुःस्वप्न का दुष्टविज्ञान, की समीक्षा

'दुःस्वप्न का दुष्टविज्ञान' यह भारी भरकम शीर्षक आगे आने वाले उपशीर्षकों का आमुख शीर्षक है। आगे आनेवाले शीर्षकों में उपेन्द्र राव ने **सविता, आदित्य** आदि आधिदैविक पदार्थों, **अपामार्ग आञ्जन** आदि औषधियों एवं **स्वप्न,काम** आदि गुणों, प्रवृत्तियों के जो कार्य, गुण व स्वभाव आदि हैं, उनको अनदेखा करके सभी पदार्थों की डटकर हँसी उड़ायी है।

स्वप्न का आधार व चिकित्सा, की समीक्षा

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव की स्थापना है कि मनुष्यों की नींद के मध्य में जो स्वप्न आते हैं, वह व्यक्ति के आहार, विहार,विचार, एवं दृष्ट पदार्थों तथा अनुभव पर अधारित होता है। स्वप्न के आधार वायु, कफ व पित्तवाला शरीर भी होता है। कुछ अनबुझे स्वप्नों के कारण पूर्वजन्मों के संस्कार भी होते हैं, और वे स्वप्न अच्छे भी होते हैं और बुरे भी।

इन सभी स्वप्नों की चिकित्सा के विषय में उपेन्द्र राव का कहना है कि-

बुरे स्वप्नों से छुटकारा पाने का **एक उपाय** आहार, विहार, व्रिचार आदि में बदलाव लाना होता है। राव ने **दूसरा उपाय** बताया-मनोरोगों का चिकित्सक इस सम्बन्ध में यथासाध्य सहायता दे सकता है यानी स्वप्न चिकित्सा मनोरोग विशेषज्ञ चिकित्सक की सलाह से होती है। यहाँ स्वप्न चिकित्सा सम्बन्ध में धमाकेदार बात यह कही-**इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।**

उपेन्द्र राव जिस किसी भी विषय में ऐसी टांग अड़ाते हैं कि उन्हे ऐसा करते अपना भी होश नहीं रहता ! दूसरे की हँसी उड़ाने में उद्यत, हँसी उड़ाते उड़ाते उपेन्द्र राव स्वयं ही हँसी के पात्र बन जाते हैं।

स्वप्न विषय

आक्षिप्त प्रकरण पर विचार करने से पूर्व **स्वप्न**=सोना क्रिया विषय

का स्वरूप जानने योग्य है। **स्वप्न** शब्द ञिष्वप् शये धातु से कृवृजृसिद्रू सिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित् उणा.३/१० सूत्र द्वारा नन्[१] प्रत्यय करके सिद्ध होता है। जिसकी सुत्पत्ति है।

यः स्वापयाति यः स्वपिति यत् सुप्यते वा सः स्वप्नः।

अर्थात् जो सुलाता है, जो सोता है अथवा जो सोया जाता है, उसे स्वप्न कहते हैं।

तात्पर्य हुआ सोने की क्रिया कराने व करनेवाला कर्ता एवं सोने की क्रिया स्वप्न कहे जाते हैं। स्वप्न नींद को कहते हैं।

सोने=निद्रा की क्रिया क्यों की जाती है ? सोने की क्रिया का जीवन में क्या महत्त्व है ? इसे स्पष्ट करते हुए चरक ऋषि कहते हैं-

त्रय उपस्तम्भा इति, आहार, स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। चरक. सूत्र. ११/३५

अर्थात् शरीर को धारण करने के आहार, स्वप्न=सोना एवं ब्रह्मचर्य ये ३ आधार स्तम्भ हैं।

तात्पर्य हुआ शरीर धारण के तीन प्रमुख कारण है-आहार, ब्रह्मचर्य और स्वप्न।

आहार व आहार लाभ

आहार शब्द यद्यपि लाना, समीप लाना, भोजन करना आदि अनेक अर्थों का वाचक है। प्रसंगतः यहाँ आहार का अर्थ भोजन, खाना पीना आदि भक्षणीय पदार्थों की क्रिया का वाचक है। **आहार**=भोजनादि का क्या प्रभाव होता है ? इसे बताते हुए महर्षि सुश्रुत कहते हैं-

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ॥
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्नि विवर्धनः ॥ सुश्रु.चिकि.२४/६८, ६९ ॥

अर्थात् आहार पोषक, तृप्ति देने वाला, आशु बलवर्धक, शरीरधारक होता है तथा आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज एवं अग्नि को बढाता है।

तात्पर्य यह हुआ कि उत्तम स्वास्थ्य के लिये आहार बहुत बड़ा साधन

---

१. स्वपो नन्, पा.३/३/९१ इति सुत्रेणापि ञिष्वप शये धातोः ननि प्रत्यये कृते स्वप्नः इति सिद्धयति।

है। स्वास्थ्य जनक शरीर पोषक आहार उत्तम, पवित्र, सात्त्विक होना चाहिए। उपनिषद् में कहा है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। छान्दो.उ.७/२६/२॥

अर्थात् आहार शुद्धि से **सत्त्व**=अन्तःकरण शुद्ध होता है, **अन्तःकरण**= मन, चित्त आदि की शुद्धि से स्मृति ध्रुव होती है, मुक्ति का मार्ग खुलता है।

ब्रह्मचर्य

स्वस्थ शरीर धारण का **ब्रह्मचर्य**=सर्वेन्द्रिय निग्रह भी प्रमुख अङ्ग है। ब्रह्मचर्य धारण करने से शरीर स्वस्थ नीरोग रहता है। ब्रह्मचर्य के महत्त्व में **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत**, अथर्व.११/५/१९, **मरणं बिन्दु-पातेन जीवनं बिन्दुधारणात्** आदि वेदमन्त्र व सूक्तियाँ अतिप्रसिद्ध हैं।

स्वप्न=सोना क्रिया का लाभ

स्वप्न=शयन, सोना क्रिया के आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लाभ बताते हुए कहा है-

निद्रायत् सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥ चरक. सूत्र. २१/३६॥

अर्थात् यथाविधि निद्रा लेने से शारीरिक, मानसिक सुख, शरीरपुष्टि, बल, वीर्य वृद्धि, ज्ञान वृद्धि एवं दीर्घ जीवन होता है।

शास्त्र नियम के विपरीत निद्रा लेने से दुःख, कृशता, दुर्बलता, नपुंसकता, अज्ञान तथा मृत्यु होती है।

पुष्टिवर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतन्द्रिताम्।
करोतिधातुसाम्यं च निद्रा काले निषेविता॥ सुश्रु.चिकि.२४/८८॥

अर्थात् समुचित समय पर निद्रा लेने से वर्ण, बल, उत्साह की प्राप्ति एवं अग्नि दीप्त होती है और तन्द्रा का नाश होता है एवं शरीर में धातुओं की समता बनी रहती है।

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता॥ चरक.सूत्र.२१/३८॥

अर्थात् निद्रा यदि उचित प्रकार से सेवन की जाती है, तो फिर वही

निद्रा मनुष्य के शरीर को सुखायु से युक्त कर देती है। जिस प्रकार **सत्या**=विवेकपूर्ण बुद्धि के आ जाने से योगी पुरुष को सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृषः।
नातिस्थूलकृशः श्रीमान् नरो जीवेत् समाः शतम्॥ सुश्रु. शारी.४/४०॥

अर्थात् समुचित समय तक ही नींद लेने वाले व्यक्ति नीरोग एवं प्रसन्नचित्त रहते हैं, बल और वर्ण से युक्त होते हैं एवं **वृष**=उत्पादन सामर्थ्य युक्त, न अधिक स्थूल, न कृश होते हुये, **श्रीमान्**=शोभा युक्त होकर सौ वर्ष तक जीने वाले होते हैं।

स्वप्न=सोने क्रिया के नाश से स्वप्न

नियमानुसार ग्रहण की गई स्वप्न=सोना क्रिया बल, शक्ति, शोभा एवं शतायु वर्ष का जीवन प्रदान करती है। यदि स्वप्न=सोना क्रिया समुचित नहीं होती, अर्ध निद्रा में होती है, तो वह स्वप्न=सोना क्रिया बल, वर्ण आदि को प्रदान नहीं करती। उस अपूर्ण निद्रा में सोने वाला नाना प्रकार के स्वप्नों को देखता रहता है। मनुष्य को स्वप्न कब आते हैं ? इस विषय में चरक लिखते हैं-

नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलांस्तथा।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान् पश्यत्यनेकधा॥ चरक.इन्द्रिय.५/४२॥

अर्थात् जब मनुष्य पूर्ण गाढ निद्रा में नहीं होता, तब वह इन्द्रियों के स्वामी मन के द्वारा सफल, विफल अनेक स्वप्नों को देखता है।[1]

अर्ध निद्रा में आने वाले स्वप्नों का प्रकार बताते हुए कहा-

दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥ चरक. इन्द्रिय.५/४३॥

अर्थात् स्वप्न दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज सात प्रकार के होते हैं।

---

१. *(i) सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा। विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति। अत्रि संहि. वागभट्ट सु. अ.९*
(ii) पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः। रणोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान्। सुश्रु. शारी.४/३६

स्वप्न चिकित्सा के पदार्थ

इन सात प्रकार के स्वप्नों में दोषज स्वप्न वात, पित्त एवं कफ की वृद्धि से होने वाले स्वप्नों को कहा जाता है। वात, पित्त, कफ की वृद्धि होने से निद्रानाश होता है और निद्रानाश से स्वप्न आते है।[१] उन स्वप्नों के निराकरण में जहाँ नित्यप्रति आहार में लिए जाने वाले गेहूँ, दाल आदि अन्नों में क्या खाना है ? क्या नहीं खाना है ? आदि का विवेचन किया जाता है। वहीं औषधि प्रयोग, मर्दन, अग्नि सेवन, मन को शान्ति, स्थिरता प्रदान करने वाले ईश्वरोपासना, यज्ञ आदि कर्म किये जाते हैं एवं सूर्य किरण सेवन, उषा काल में उठना आदि किये जाते हैं।

वात शामक औषधियाँ

सुश्रुत में अनेक **वात शामक** औषधियों का वर्णन है। यथा-**भद्रदारु**=देवदारु, **कुष्ठ**=कूठ, हरिद्रा, **वरुण**=वरना, मेढाश्रृंगी, **बला**=बरियार, **अतिबला**=कंघी, **आर्तगल=ककुभ**=अर्जुल=नीलझिण्टी=कष्टकी, कच्छुरा=कौंच के बीजङ्ग, **सल्लकी**=सलांई हस्तिप्रियः, **कुबेराक्षी**=पाटला, **वीरतरु**=अर्जुन, **सरचर**=पियाबांसा, **अग्निगन्थ**= अरणी, **वत्सादनी**=गुडूची, सरवड, **अश्मभेदक**=पाषाणभेद, **अलके**= श्वेतार्क, **अर्क**=रक्तपुष्पार्क, शतावरी, पुनर्नषा, **वसुक** बरुपुष्प, **वशिर**= सूयोवते, **कांचनक**=धतूरा, **भार्गी**=भारङ्गी, **कर्पासी**=वनकार्पासिका, **वृश्चिकाली**=मेढाश्रृङ्गी, **फ्तूर**=कुचन्दन, बदर, यव, **कोल**=जंगली बेर, **कुलत्थ**=कुलथी, आदि तथा विदारी, गन्धादि गण बृह. रवं लघु पञ्चमूल वात नाशक औषधियाँ हैं, जो संक्षेप से कही गई है।[२]

---

१. (i) निद्रानाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि। सुश्रु. शारी.४/४२
(ii) मनोवहानां पूर्णत्वाद् दोषैरतिबलैस्त्रिभिः। स्रोतसां दारुणान् स्वप्नान् काले पश्यति स्वप्ने दारुणे॥ चरक. इन्द्रिय.५/४१

२. संशमनान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः-तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषश्रृङ्गी बलातिबलार्तगल-कच्छुराशल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थवत्सादन्येण्डाश्मभेदकालर्कार्क-शतावरीपुनर्नवावसुकवशिरकाञ्चनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीपत्तूरबदरयवकोल-कुलत्थप्रभृतिनि विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्ये पञ्चमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः। सुश्रु. सूत्र.३९/१

पित्त शामक औषधियाँ

सुश्रुत में **प्वित्त शामक** अनेक औषधियाँ गिनायी हैं। यथा-**चन्दन**=श्वेत चन्दन, **कुचन्दन**= रक्तचन्दन, **व्हीबेर** =काला हाऊबेर, **उशीर**= खश, **मञ्जिष्ठा**= मंजीठ, **पयस्या**=स्वर्णक्षीरी, **विदारी**=विदारीकन्द शतावरी, **गुन्द्रा**=गोंदपटेर, **शैवल**=शैवाल, **कह्लार**=लाल कमल, **कुमुद**=श्वेतकमल, **उत्पल**=नील कमल, **कंदली**=सर्पछत्रक, दूर्वा, **मूवो**=हधोइ आदि औषधियाँ तथा का कोह्यादि, सारिवादि, अञ्जनादि, उत्पलादिख न्यग्रोधादि गण की औषधियाँ एवं तृण पञ्चमूल की औषधियाँ पित्त शामक होती हैं।[१]

श्लेष्म=कफ शामक औषधियाँ

सुश्रुत में **कफ शामक** औषधियाँ भी विभिन्न प्रकार की बतायी गई हैं। यथा-**कालेयक**=पीत चन्दन, अगुरु=अगर, **टिलपर्णी**=हुलहुल आदि औषधियाँ कफ नाशक औषधियाँ हैं। इन औषधियों का '**ओषधि गुण**' प्रकरण में संक्षेप से परिगणन किया गया है।[२]

वात, पित्त, कफ की वृद्धि से निद्राक्षय होने पर जो स्वप्न दोषों की उत्पत्ति होने लगती है, उन स्वप्न दोषों के निवारण में ये वात, पित्त, कफ नाशक औषधियाँ भी सहायक होती हैं।

वात, पित्तादि त्रिविध दोषों के कारण निद्राक्षय से जो स्वप्न आते हैं, उस निद्राक्षय का निवारण **मर्दन**=मालिश द्वारा भी किया जाता है-

निद्रानाशेऽभ्यङ्गयोगो मूर्ध्नितैलनिषेवणम्।
गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानि च॥ सुश्रु.शारी.४/४३॥

अर्थात् निद्राक्षय का नाश शरीर पर तैल की मालिश, सिर पर तैल की मालिश तथा सम्पूर्ण शरीर में उबटन लगाकर एवं **संवह**=शनैः शनेः दवा कर करनां चाहिए।

अग्निहोत्र

वात, पित्त, कफ के दोषों तथा तज्जनित विकारों के निद्रा क्षय,

---

१. चन्दनकुचन्दनह्रीबेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्द्राशैवलकह्लारकुमुदोत्पल कन्द (द) लीदूर्वामूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिः सारिवादिरञ्जनादिरुत्पलादिन्र्य ग्रोधादिस्तृण-पञ्चमूलमिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः। सुश्रु. सूत्र.३९/८

२. कफ शामक औषधियों का परिगणन 'ओषधि गुण' प्रकरण में पृष्ठ १६७ में द्रष्टव्य है।

आधमान, पीडा आदि कष्टों का निवारण अग्नि तथा अग्निहोत्र से होता है। शरीर के किसी भी भाग में शोथ, तीव्र वेदना आदि का उपचार अग्नि से सेक कर किया ही जाता है तथा अग्नि, अग्निहोत्र में औषधियों की आहुति देकर किया जाता है। ये पीडा शोथ आदि की व्याधियाँ प्राय:वात, पित्त, कफ के विकारों से ही उत्पन्न होती हैं।

अग्नि और अग्निहोत्र विकारों को हटाते हैं, शुद्ध करते हैं, अतः वेद में कहा -

अग्नी रक्षांसि सेधति। ऋ.७/१५/१०॥

अर्थात् अग्नि रक्षांसि[1]=रोग, रोगकीटाणु, रोगकृमि, वात पित्त, कफ आदि विकारों को, सेधति=दूर करती है।

भैषज्ययज्ञा वा एते। तस्माद्दतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।
गो.ब्रा. २/१/१९

अर्थात् ऋतु सन्धियों में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, अतः भैषज्य= चिकित्सा करने वाले चिकित्सा रूप यज्ञों का विधान प्रति ऋतु सन्धि में किया जाता है।

अग्निहोत्र वात, पित्त आदि विकारों एवं तज्जनित दोषों को दूर करता है। इस विषय में चरक ऋषि ने एक बहुत अच्छा वाक्य कहा है-

आहिताग्निः सदा पथ्यान्यन्तरग्नौ जुहोति यः।
दिवसे दिवसे ब्रह्म जपत्यथ ददाति च॥
नरं निः श्रेयसे युक्तं सात्म्यज्ञं पानभोजने।
भजन्ते नाम याः केचिद् भाविनोऽप्यन्तराद्दते॥ चरक.सूत्र.१७/३४६,३४७॥

अर्थात् जो **आहिताग्निः**=प्रतिदिन यज्ञ करने वाला सर्वदा **पथ्य**= हितकर अन्नपान रूपी आहुति का, **अन्तरग्नौ**=जठराग्नि में देता है और प्रतिदिन ब्रह्म का जप करता है, वेद पढ़ता है और उसी का दान करता है वह व्यक्ति **निःश्रेयस्**=मोक्ष मार्ग में संलग्न होता है। **पानभोजने**=खानपान में, **सात्म्यज्ञम्**=अनुकूल प्रतिकूल को जानता है, ऐसे व्यक्ति को, **भावी**=पूर्वजन्म

---

१. रक्षः शब्द का अर्थ व निर्वचन पृष्ठ ७ में द्रष्टव्य है।

के फल रूप होने वाले रोगों के अतिरिक्त भी उसे कोई रोग नहीं होते।

इस प्रकार वेद एवं आयुर्वेद के इन चरक, सुश्रुत आदि कल्याणकारी ग्रन्थों से स्पष्ट है कि अग्नि व अग्निहोत्र वात, पित्त आदि विकारों व रोगों को विनष्ट करते हैं। इस वचन से यह भी स्पष्ट है कि **आहिताग्निः**=प्रतिदिन यज्ञ करने वाला व्यक्ति **पथ्य**=हितकर खानपान करता है, अहितकर नहीं।

ब्रह्मोपासना=परमदेव ईश्वर का ध्यान

जगन्नियन्ता परमेश्वर के देव, देवता, देवी, ब्रह्म आदि अनेकों नाम हैं, वह शुद्ध और पवित्र है। वह रोगों से रहित है, शरीर से विरहित है[1]। ऐसे परब्रह्म दैवाधिदेव की उपासना उपासक को भी, शुद्ध, पवित्र करती है, समस्त आधि व्याधियों से दूर करती है। ब्रह्म का ध्यान व्याधियों से हमें दूर करता है, यह अग्निहोत्र माहात्म्य में पूर्व कहे गये चरक ऋषि के **'दिवसे दिवसे ब्रह्म जपति'**, चरक.सूत्र. २७/३४६ इस वचन से सुस्पष्ट ही है।

ईश्वरोपासना से व्याधियाँ दूर होती हैं, इस तथ्य को ज्ञापित करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है-

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। योग. १/२९।

अर्थात् ईश्वर **जप**=ध्यान, उपासना से अन्तरात्मा का साक्षात्कार होता है तथा **अन्तरायाः**=वात, पित्त, कफ आदि की (**व्याधिर्धातुरसकरण-वैषम्यम्**, योग. व्यासभा. १/३०) विषमता के रोग नष्ट हो जाते हैं।

परमेश्वर **दुःख**=वात, पित्त, कफ आदि दोषों, दुर्गुण, दुर्व्यसन को दूर करता है, रोगों को दूर करता है, आगे उत्पन्न नहीं होने देता। ईश्वर जीव की रक्षा करता है, अतः वेद में कहा है-

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥ अथर्व. ८/२/२५

अर्थात् जब जीवन के सुख के लिए, **ब्रह्म**=परमेश्वर को जिस-जिस क्षेत्र में, **परिधिः**=घेरा बना लिया जाता है, वहाँ-वहाँ ईश्वर सभी गौ, घोड़ा आदि पशु एवं पुरुष पशु को जीवन देता है। रोग आदि कष्ट वहाँ नहीं पहुँचते।

---

१. *स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। यजु.४०/८*

तात्पर्य यह हुआ कि ईश्वर के ध्यान से **अन्तरायाः**=वात, पित्त, कफ आदि के वैषम्य से जो रोग होते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं। ईश्वर के ध्यान से जहाँ मनुष्य ठीक होता है, वहीं उसके आश्रय से पशु भी स्वस्थ रहते हैं, क्योंकि हम दोष रहित होकर अपने साथ अपने पशुओं को भी समुचित आहार आदि प्रदान करते हैं।

सूर्य

सूर्य प्रत्येक पदार्थ का **प्राण**=जीवनीय शक्ति है। **अपान**=रोग, प्रदूषण आदि की निरोधक शक्ति है। सूर्य सर्वत्र गति करता हुआ, व्याप्त होता हुआ प्रतिदिन पौ फटते ही अपने प्रकाश से पूरी पृथिवी को अलंकृत कर देता है, शरीर की व्याधियों को विनष्ट कर देता है। सूर्य अन्य अग्नि आदि देवों की भाँति औषध स्वरूप है। वेद में कहा है-

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः।

अथर्व. ९/८/२२

अर्थात् आदित्य सब रोगों को उखाड़ फेंकने वाला (**दाप् लवने, दो अवखण्डने**), सूर्य उगता हुआ रश्मियों के द्वारा, **शीर्ष्णः रोगम्**=सिर के रोगों को नष्ट कर देता है, **अङ्गभेदम्**=अङ्गों के टूटने, फटने को, **अशीशमः**=नष्ट कर देता है।

मन्त्र से स्पष्ट है सूर्य जैसे अन्धकार नष्ट कर प्रकाश देकर उन्नति करता है, उसी प्रकार सूर्य अपनी रश्मियों से समस्त रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ, नीरोग बनाता है।

उषा

उषा=प्रभातवेला सूर्योदय से पूर्व का काल ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है। इस समय उठनेवाला व्यक्ति प्रभूत शक्ति, सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। वेद का मन्त्र है-

उषस्तच्चित्रमाभराभस्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तोकं च तनयं च धामहे॥ ऋ. १/९२/१३

अर्थात् हे **उषः**=सुन्दर प्रभातवेला! अथवा अन्धकार को दूर करने

वाली (**उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः, उच्छतेरितरा माध्यमिका**, निरु. १२/१/६, **उषाः कस्मात् ? उच्छतीति सत्याः**, निरु. २/६/१९) प्रभातवेला ! तू हमें उस, चित्रम्[1]=संग्रहणीय ऐश्वर्य, ज्ञान आदि श्रेष्ठ धन को प्रदान कर, हे **वाजिनीवति**=प्रशस्त अन्न वाली, बलशालिनी उषा ! तुम्हारे दिये हुए, उस श्रेष्ठ धन से हम पुत्र पौत्रादि का पोषण करें।

मन्त्र का भाव है **उषा**=प्रभातवेला हमें बल, शक्ति, सामर्थ्य प्रदान करती है, अन्नों व भक्षणीय पदार्थों को सामर्थ्य प्रदान करती है। उस नीरोग अन्न भक्षण से पुत्र, पौत्रादि नीरोग रहते हैं। **उषः**=प्रातःकाल में **विहार**=भ्रमण करने से प्राणी वात, पित्त, कफ के विकारों से रहित होते हैं।

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि **स्वप्न**=सोना क्रिया नींद के क्षीण होने पर जो वात, पित्त, कफ की वृद्धि होती है, जिस वृद्धि के कारण नाना प्रकार के रोग पीड़ित करते हैं, अन्यच्च नाना प्रकार के स्वप्न आते हैं, उन सबका विनाश, उनकी चिकित्सा जहाँ **आहार**=समुचित खानपान, **ब्रह्मचर्य**=संयम, **विहार**=भ्रमण, खेल, मनोरंजन एवं **विचार**=चिन्तन, सोच, विवेक, सतर्कता से होती है, वहीं औषधि, **देव**=ब्रह्म, ब्रह्मोपासना, यज्ञ, सूर्य रश्मि, उषा आदि से भी वात, पित्त, कफ आदि की विकृति नष्ट होती है, स्वप्नों का नाश होता है।

स्वप्न चिकित्सा प्रसङ्ग में बुरे स्वप्न से छुटकारा पाने का एक उपाय आहार, विहार, विचार आदि में बदलाव.... आदि लिखकर उपेन्द्र राव ने जो 'इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है' यह पंक्ति लिखी है। उनकी यह पंक्ति बहुत थोथी है, वेद, वैदिक शास्त्रों के विपरीत है।

श्री उपेन्द्र राव का यह कथन शास्त्र विपरीत क्यों है ? क्योंकि उपेन्द्र राव ने स्वप्न आने के जो कारण बतायें हैं, वे आहार, विहार, विचार कारण तो होते ही हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त भी चोट, प्रहार, शोक, मृत्यु आदि के प्रसङ्ग, भय, कार्य की असफलता आदि और भी अनेक कारण होते हैं, जिनसे स्वप्न=शयन क्रिया ठीक से नहीं होती। जिसके कारण वात, पित्त,

---

१. *चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनम्।* *निरु. १२/१/६*

कफ बढ़ जाते हैं, जिनकी वृद्धि से मन मूर्च्छित सा हो जाता है। फलतः नाना प्रकार के स्वप्न आने लगते हैं। उनका निवारण, उपचार केवल आहार, विहार विचार एवं मनोरोग चिकित्सक की सलाह मात्र से असंभव है। स्वप्नों की निवृत्ति के लिए औषधि सेवन, ईश्वरोपासना आदि पूर्वोक्त विधान भी आवश्यक होते हैं।

वेदकाल में जङ्गली-विधि को अपनाना, की समीक्षा

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव ने, **'स्वप्न का आधार व चिकित्सा'** इस पूर्व वाले शीर्षक में कही गई **'इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है'** अपनी इस पंक्ति का ही भाष्य किया है।

अपने इस भाष्यकरण में उपेन्द्र राव का मानना है कि वेदकाल वनवासी जङ्गली लोगों का है। उन जङ्गली लोगों को बुरे स्वप्नों के कारण ज्ञात नहीं थे, और न उन्हें उपयुक्त चिकित्सा का ज्ञान था, अतः उन्होंने दुःस्वप्न नाशन के जादू टोना वाले ठगों की जङ्गली विधि, देवी देवता=ब्रह्मोपासना, औषधि सेवन, ग्रह नक्षत्रों का ज्ञान, यज्ञ हवन आदि विधियों को अपनाया। उन जङ्गली विधियों के ऋग्वेद में ८ मन्त्र हैं, यजुर्वेद और सामवेद में १-१ मन्त्र है। जादू टोना के उस्ताद अथर्ववेद में दुःस्वप्न नाशन के २८ मन्त्र हैं।

स्वप्न=सोना क्रिया को कहते हैं और यह सोना क्रिया तब होती है, जब मन व इन्द्रियाँ थक जाती हैं, विषयों से विमुक्त हो जाती हैं[१]।

स्वप्न=चरक सूत्रस्थान में निद्रा छः प्रकार की बताई गई है। वे भेद हैं-

१. तमोभवा=इस तमोभवा निद्रा में तमोगुण की प्रधानता होती है, कफ आदि की सामान्य। यह निद्रा **तामसी** निद्रा कहाती है। यह निद्रा मृत्यु कारक होती है।

२. श्लेष्मसमुद्भवा=श्लेष्मसमुद्भवा निद्रा कफ की वृद्धि होने पर होती है।

३. मनःशरीरश्रमसम्भवा=यह निद्रा शरीर और मन के थक जाने

---

१. *यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥* चरक. सूत्र. २१/३५

पर आती है। यह निद्रा सुख, स्वास्थ्य की कारण है, इसमें स्वप्न नहीं दिखाई देते हैं।

४. आगन्तुकी=यह निद्रा तमोगुण प्रधान होती है। यह निद्रा **अरिष्ट**=मृत्यु कारक एवं शरीर, शरीर स्वभाव, धर्म आदि की विकृति वाली होती है। इसमें किसी न किसी रोग का अनुबन्ध अवश्य होता है।

५. व्याध्यनुवर्तिनी = यह निद्रा कफ प्रदान होती है। इस निद्रा में व्याधि, रोग का **अनुवर्तन**=अनुसरण होता रहता है।

६. रात्रिस्वभावप्रभवा = यह निद्रा रात्रि के स्वभाव से युक्त अर्थात् काम काज से उपरत करनेवाली होती है[१]। प्राणियों का पालन करने से इसे **भूतधात्री** भी कहा जाता है[२]।

इन छः प्रकार की निद्राओं को सुश्रुत में ३ भागों में बाँटा है-**वैष्णवी, तामसी** एवं **वैचारिकी**। वैष्णवी निद्रा रात्रीस्वभावप्रभवा कही जाती है, तामसी निद्रा को तमोभवा कही गई है और वैचारिकी निद्रा में अन्य श्लेष्मसमुद्भवा आदि चार निद्रायें समाविष्ट हो जाती है[३]।

चरक संहिता में **स्वप्न**=निद्रा के बताये गये इन छः भेदों को भी दो भेदों में बाँटा गया है। वे दो भेद हैं। **१.गाढ निद्रा, २. अर्ध निद्रा**। गाढ निद्रा में स्वप्न नहीं आते। अर्ध निद्रा में शुभ अशुभ समस्त स्वप्न देखे जाते हैं।

गाढ निद्रा तब आती हैं, जब मन और शरीर थक जाते हैं[४]। यह निद्रा

---

१. रात्रिः कस्मात् ? उपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति। निरु. २/६/१८

२. तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनःशरीर श्रम सम्भवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा॥
रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
तमोभवामाहुरघस्य मूलं, शेषाः पुनर्व्याधिषु निर्दिशान्ति॥ चरक. सूत्र. २१/५८, ५९

३. निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति; सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशतिं। तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी, सा प्रलयकाले; तमोभूयिष्ठानामहः सु निशासु च भवति, रजोभूयिष्ठानामनिमित्तम्, सत्त्वभूयिष्ठानामार्ध रात्रे; क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराभितापवतां च नैव, सा वैकारिकी भवति॥ सुश्रु. शारी. ४/३३

४. मनःशरीर सम्भवा च। चरक. सूत्र. २१/५८

स्वप्नों से रहित होती है। इस निद्रा में यदि तमोगुण प्रधान हो, तब वह वैकारिकी संज्ञा वाली भी हो जाती है। इसमे मनुष्य संज्ञाहीन हो जाते हैं, अतः इसे अनवबोधिनी कहा जाता है[1]। यह निद्रा मृत्यु काल में आती है।

अर्धनिद्रा में इन्द्रियों का स्वामी मन इन्द्रियों की सहायता से गन्ध, शब्द आदि विषयों को स्मरण करके उन विषयों के ग्रहण में तथा उन विषयों के परित्याग में सुख दुःख का अनुभव करने लगता है। इसलिए वह **स्वप्न**=सोना, **दुःस्वप्न**=खराब सोना, अर्धनिद्रा आदि शब्दों से कहा जाता है।

दुःस्वप्न शब्द अपने आप में भयङ्कर अर्थ वाला नहीं है। दुःस्वप्न शब्द दुर् दुस् तथा स्वप्न इन उपसर्ग तथा कृदन्त पदों का समस्त रूप है। जिसकी व्युत्पत्ति है-

दुर्, दुस् दुष्टश्चासौ स्वप्नोनिद्राच इति दुःस्वप्नम्।

अर्थात् **दुर् दुस्**=बुरा, खराब, दुर्बल, घटिया, कठिन, दुष्ट जो सोना है, वह दुःस्वप्न कहाता है।

तात्पर्य हुआ दुःस्वप्न शब्द खराब सोना, खराब तरीके से सोना, सोने में निद्रा का भग्न होना, निद्रा में नाना प्रकार के विचार व्याधातों का आना, निद्रा में पीड़ा आदि का अनुभव करना आदि अनेक भावों को व्यक्त करता है।

दुःस्वप्न शब्द के इन समस्त वाच्यों का निराकरण जहाँ आहार, विहार, विचार से होता है, मनो चिकित्सक की सहायता से होता है, वहीं औषधि, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मोपासना आदि के द्वारा भी दुःस्वप्न=अर्ध निद्रा के दोषों का शमन किया जाता है, जिसका वेदों में प्रतिपादन है[2]। वेद के ये उपाय न जङ्गली हैं, न जादू टोना है। वेदोक्त औषधि आदि उपाय अर्धनिद्रा आदि को दूर करते हैं, इसके प्रमाण पूर्व शीर्षक में दिये गये हैं।

---

१. तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी। सुश्रु. शारी.४/३३

२. औषधि और ब्रह्मोपासना आदि कर्म निद्राक्षय के कारणभूत वात, पित्त, कफ के निवारक हैं, यह विवेचन 'स्वप्न का आधार व चिकित्सा, की समीक्षा' शीर्षक के पृष्ठ १८६-१९३ में द्रष्टव्य है।

वेद नित्य

नित्य ज्ञान वेद की विधियों को **वेदकाल** शब्द कहकर किसी सीमा में बाँधना धोखा मात्र है। वेद का काल प्रवाह से नित्य है और वह कभी नष्ट नहीं होता, वह सदा रहता है, उसमें विभाग नहीं किया जा सकता है[1]। मनुस्मृति के व्याख्याकार कुलूकभट्ट एवं मेधातिथि ने वेदों की सार्वकालिकता, नित्यता ज्ञापित करते हुए लिखा है-

प्रलयकालेऽपि सूक्ष्मरूपेण परमात्मनि वेदराशिः स्थितः। कुलूकभट्ट मनु. १/२१

नैव वेदा प्र लीयन्ते महाप्रलयेऽपि। मेधातिथि मनु. १/२१।

अर्थात् प्रलयकाल में भी वेदराशि परमात्मा में सूक्ष्म रूप से स्थित रहती है। महाप्रलय में भी वेदों का नाश नहीं होता।

इस प्रकार वेदकाल व **वेदकाल की विधियाँ जङ्गली हैं**, वेदों में जादू टोना है आदि प्रकारक उपेन्द्र राव के कथन व्यर्थ, निःसार हैं।

वेदों के पदप्रयोग

दुःस्वप्न—खराब सोना आदि विषय का प्रसङ्ग चल रहा है। इस प्रसङ्ग में दुःस्वप्न शब्द के द्वैविध्य प्रयोग रूपों को स्थापित करके उपेन्द्र राव ने अथर्ववेद को अर्वाचीन सिद्ध करने का निरर्थक प्रयत्न किया है।

उपेन्द्र राव का आरोप है कि दुःष्वप्न अथवा दुःष्वप्न्य शब्द का वेदों में विसर्गयुक्त एवं विसर्ग रहित दो प्रकार का शब्द प्रयोग प्राप्त होता है। विसर्ग सहित वाला दुःष्वप्न्य शब्द का पाठ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का है। अथर्ववेद का दुष्वप्न, दुष्वप्न्यं विसर्ग रहित वाला पाठ है। जैसे प्रादेशिक भाषाओं में दुःख दुःष्वप्न, दुष्वप्न्य विसर्ग रहित वाला पाठ है। जैसे प्रादेशिक भाषाओं में दुःख दुख विसर्ग सहित, विसर्ग रहित दो पाठ हैं, वैसे ही दुःष्वप्न शब्द के हैं। दुःष्वप्न शब्द की विसर्ग रहितता अथर्ववेद में है, **अतः अथर्ववेद ही अर्वाचीन है।**

अथर्ववेद अर्वाचीन नहीं

अथर्ववेद पर जड़े गये अर्वाचीनत्व के आरोप में सर्वप्रथम तो यह

१. *वेद नित्य एवं सार्वकालिक हैं, यह तथ्य पृष्ठ १४७ में द्रष्टव्य है।*

ज्ञातव्य है कि अथर्ववेद का ज्ञान न पीछे मिला है, न आगे। अपितु आदि सृष्टि में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन वेदों के साथ ही अथर्ववेद का ज्ञान भी ऋषियों के माध्यम से प्राप्त हुआ है। अथर्ववेद अर्वाचीन नहीं है, आदिसृष्टि का ज्ञान है, इसके पोषक प्रमाण स्वतः प्रमाण वेदों में ही विद्यमान हैं।

सो अङ्गिरोभिः., ऋ. १०/१००/४, अर्थात् वह अथर्ववेद पढ़ने वालों के साथ। **अथर्वभ्योऽवतोकाम्**., यजु. ३०/१५, अर्थात् गर्भ सन्तान निकली हुए स्त्री अथवा गौ को चिकित्सार्थ, **अथर्वभ्यः**=अथर्ववेदी को दें, आदि वेदों के मन्त्रों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद अर्वाचीन नहीं है। अन्यथा आक्षेपक के अनुसार अथर्ववेद के अर्वाचीन होने पर ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद के मन्त्रों में अथर्ववेद का नाम नहीं आया होता। अन्य वेदों में अथर्ववेद का नाम आया है, अतः निःसन्देह सिद्ध है कि अथर्ववेद को **अर्वाचीन**[1] कभी नहीं माना जा सकता।

दुःष्वप्न शब्द के द्विविध प्रयोगों का कारण

वेद नित्य, सार्वदेशिक, सार्वकालिक ज्ञान है और जगत् प्रचलित समस्त ज्ञानों का मूल स्त्रोत है। शिक्षा, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि नानाविध ज्ञानों का उद्भव वेद से ही हुआ है। व्याकरण का उद्भव वेद है, इसका व्यापक वेदमन्त्र है-

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रध्दां सत्ये प्रजापतिः॥ यजु. १९/७७

अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने सत्य, असत्य दो रुपों को देखकर सत्य और अनृत को पृथक् पृथक् व्याकृत कर दिया, छांट दिया और **अनृते**=झूठ में अश्रद्धा को रखा, **सत्ये**=सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया।

व्याकरण का उद्गम वेद

तात्पर्य हुआ कि प्रयोग विषय के माध्यम शब्दों के **सत्य**=प्रयोक्तव्य, **असत्य**=अप्रयोक्तव्य शब्द कौन है ? इसका ज्ञान वेद ही कराते हैं। मन्त्र के **व्याकरोत्** पद का यह भी संकेत है कि प्रयोक्तव्य शब्द किस स्वरूपवाला,

---

1. *अथर्ववेद के अर्वाचीन आरोप विषय की विवेचना पृष्ठ ३९, ४० तथा ११५ में द्रष्टव्य है।*

किस विधा वाला होगा ? यह ज्ञान भी वेद से ही प्राप्त होता है। शब्द उच्चारण, शब्दार्थ सम्बन्ध, व्युत्पत्ति, विभक्ति, पद, पद के प्रकृति प्रत्यय आदि व्याकरण सम्बन्धी सभी विधाओं का स्त्रोत उद्भावक वेद है[१]। तपस्वी ज्ञानियों ने व्याकरण की पद शब्द आदि विधाओं को वेद से ही जान कर सूत्र व्यवस्था में व्यवस्थित किया है।

किस शब्द में विसर्ग होगा ? किस में नहीं होगा ? अथवा किस शब्द को विसर्ग सहित व विसर्ग रहित दो प्रकार का प्रयोग होगा ? कहाँ विसर्ग का लोप होगा या नहीं होगा ? आदि नियमों का भी वेद ही ज्ञापक हैं[२]।

दुष्टश्चासौ स्वप्नो निद्रा च इति दुःस्वप्नः। इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है कि दुःस्वप्न शब्द दुर् या दुस् उपपद रहते ञिष्वप् शये धातु से औणादिक[३] अथवा अष्टाध्यायी[४] सूत्र द्वारा **नन्** प्रत्यय करके सिद्ध होता है। विसर्ग युक्त **दुष्वप्न** शब्द की सिद्धि इस प्रकार होती है-

दुर्, दुस्=दुर्+स्वप्न इस स्थिति में **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** पा.८/३/१५ से रेफ को विसर्जनीय हुआ।

दुः+स्वप्न **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि** पा. ८/३/५८ सूत्र से स्वप्न के सकार को मूर्धन्य षकार हुआ।

दुःष्वप्न इस प्रकार यह विसर्जनीय युक्त **दुःष्वप्न** शब्द सिद्ध हुआ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में विसर्जनीय सहित **दुःष्वप्न** पद का प्रयोग होता है। ऋग्वेदादि वेदों कां यह विसर्ग सहित पाठ **नुम्विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि**, पा.८/३/५८ सूत्र द्वारा विसर्ग व्यवाय में होने वाले इस षत्व विधायक व्याकरण नियम को द्योतक है। वेदों के एतादृश विसर्ग युक्त पाठ विसर्ग व्यवधान में होने वाली षत्व विधि के ज्ञापक होते हैं।

---

१. *वेद व्याकरण का उद्गम है, एतद्विषयक विस्तृत व्याख्या लेखिका के 'व्याकरण का उद्गम वेद' निबन्ध में द्रष्टव्य है।*

२. *व्याकरण नियमों व नियमों की विकल्पता के ज्ञापक वेद ही हैं। विभिन्न व्याकरणीय नियम विकल्प विषय लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २, ९, १८, १९, ३८, ४५, ८०, ६४ में द्रष्टव्य है।*

३. *कृवृजृसिद्रूपन्यनिस्वपिभ्यो नित्। उणा. ३/१०*

४. *स्वपो नन्। पा. ३/३/९१*

अथर्ववेद में विसर्ग रहित **दुष्वप्न** शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद का यह प्रयोग जहाँ **बहुलं छन्दसि**[1], पा. २/४/३९ सूत्र द्वारा व्याकरण में कही गई विधियों का **बहुलम्**=कहीं होना कहीं न होना अथवा अनुक्त विधियों का विधान होता है, व्याकरण के उस नियम का अभिद्योतक है। अन्यच्च **बहुलं छन्दसि**, पा. २/४/३९ इन अनेक सूत्रों द्वारा जो व्याकरणीय सूत्र बद्ध विधियों के यत्र तत्र शब्दों में उल्लंघन व अनित्यत्व दृष्टिगोचर होते हैं, उन सब अनित्यताओं के विसर्ग रहित दुष्वप्न सदृश वेदों के पद प्रयोग ही ज्ञापक हैं। वेदों के एतादृश प्रयोग **'वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति'** पात. महाभा. १/४/९ इस व्याकरण नियम के स्त्रोत हैं।

छन्दसि वाप्राम्रेडितयोः, पा. ८/३/५४ सूत्र द्वारा वेद विषय में विकल्प से विसर्जनीय को सकार आदेश होता है कवर्ग, पवर्ग परे रहते। पर यहाँ **'वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति'**, महाभाष्य. १/४/९ आदि के कारण विसर्जनीय को सकार न होकर विसर्जनीय का लोप हो गया तथा बिना कवर्ग, पवर्ग के परे भी लोप हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट है दुःस्वप्न शब्द की विसर्ग रहितता अथवा विसर्गसहितता वेदों के **अर्वाचीनत्व** की द्योतक व पोषक नहीं हैं, अपितु विसर्जनीय की यह विकल्पता विसर्जनीय का लोप भी होता है, इस नियम का प्रतिपादक है।

दुःष्वप्न्यम्

दुःस्वप्न शब्द बुरा, खराब सोना, सोने वाला आदि अर्थों का वाचक है। जब दुःष्वप्न शब्द से **भव अर्थ** में बाहुलक **यल्** प्रत्यय करते हैं, तब **दुःष्वप्न्यम्** शब्द सिद्ध होता है। जिसकी निष्पत्ति है-

दुःस्वप्ने भवं दुःष्वप्न्यम्।

अर्थात् अर्धनिद्रा, खराब निद्रा, खराब सोने वाले का जो विचार या भाव है, वह **दुःष्वप्न्यम्** कहाता है। **दुःष्वप्न्य संज्ञा अर्धनिद्रा में देखे गये**

---

१. पा. २/४/३९, २/४/७३, २/४/७६, ३/२/८८, ५/२/१२२, ६/१/३३, ७/१/८, ७/१/१०, ७/१/१०३, ७/३/९७, ७/४/७८

विविध सपनों की है।

वेदों में तीन रूपों में दुःस्वप्न शब्द प्रयुक्त हुआ है-

१. दुःष्वप्न्यम्, दुष्वप्न्यम्

२. दुःष्वप्न्यात्, दुष्वप्न्यात्

३. दौष्वप्न्यम्

दौष्वप्न्यन् शब्द **दुष्वप्नमेव दौष्वप्न्यम् ण्यञ्** प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है, इसका अर्थ वही है, जो दुष्वप्न का है।

तात्पर्य हुआ **दौष्वप्न्य** शब्द का बुरा सोना, खराब सोना, अर्ध निद्रा आदि अर्थ हैं, सपने अर्थ नहीं है। **सपने अर्थ वाले दुःष्वप्न्यम् दुष्वप्न्यम्, दुःष्वप्न्यात्, दुष्वप्न्यात्** शब्द हैं।

दुःष्वप्न्य=सपनों की चिकित्सा उपेन्द्र राव की दृष्टि में आहार, विहार, विचार के बदलाव एवं मनोचिकित्सक की सलाह मात्र से होती है। और उनकी दृष्टि में आहार, विहार, विचार का खाना पीना, घूमना फिरना, **विचार**=निर्णय, विवेक करना मात्र अर्थ है। अतः सपनों की चिकित्सा के सहयोगी **सविता**=ईश्वर, वायु, दिन, प्राण, यकृत् आदि वाचक **सविता** आदि पदार्थों का कोई मूल्य नहीं है, अतः सविता आदि पदार्थों को आरोप के निग्रह में डाल दिया।

सविता, की समीक्षा

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्।
परा दुःष्वप्न्यं सुव॥ ऋ. ५/८२/४, साम. १४१॥

अद्या नो देव. ऋ. ५/८२/४, साम. १४१ मन्त्र में **सवितः** व **देव** शब्द आये हैं, इन शब्दों को देख उपेन्द्र राव ने **व्यंग्य** का एक वाक्य निकाला- 'ऋग्वेदाचार्य दुःस्वप्न को दूर करने के लिए देवताओं से प्रार्थना करता है। **प्रार्थना करने के सिवा उसने अब तक किया ही क्या है?**.... यह नहीं समझ सका कि क्या, चिकित्सा करने से रोग दूर होता है? अथवा ईसाई पादरी वा मुस्लिम मुल्ला के समान ईश्वर व खुदा से प्रार्थना करने से? पृ. ५३

ऋग्वेदाचार्य पर स्वप्न चिकित्सा का आरोप लगाने वाले उपेन्द्र राव

को ही, स्वयं न तो यह ज्ञात है कि स्वप्न आते क्यों है ? तथा उसकी चिकित्सा क्या होती है ?

स्वप्न आने का मूल कारण है निद्रा का नाश। जिसका विस्तृत व्याख्यान **'स्वप्न का आधार व चिकित्सा, की समीक्षा'** प्रकरण में किया गया है। निद्रानाश मन के सन्ताप से होता है। मन का सन्ताप वात, पित्त, कफ की वृद्धि से होता है। वात, पित्त, कफ की वृद्धि आहार, विहार एवं विचार की विकृति से होती है। आहार, विहार, विचार की विकृति ईश्वर को भूलना, आदित्य, उषा आदि कालों की अवमानना, औषधियों के गुणधर्म न जानना, पञ्चभूतों के सामर्थ्य को न पहचानना आदि अनेक त्रुटियों से उत्पन्न होती है।

निष्कर्ष यह हुआ ईश्वर को भूलना, ईश्वरोपासना न करना निद्रानाश का कारण है। प्रश्न यह हो सकता है ईश्वर की भक्ति न करने से आहार, विहार, विचार में विकृति कैसे आयेगी ? और वह स्वप्न का आधार कैसे बनेगी ? पर यह शंका भी निर्मूल है।

शरीर धारण के जहाँ रक्त, मांस, अस्थि आवश्यक निमित्त हैं, वहीं वात, पित्त, कफ भी शरीर धारण के अनिवार्य निमित्त हैं। सुश्रुत में कहा है-

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः। तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः
शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्त्सिृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके।

सुश्रु.सूत्र.२१/३।

अर्थात् वात, पित्त और कफ ये तीन ही शरीर की उत्पत्ति के हेतु हैं। नीचे, मध्य और ऊपर क्रमशः शरीर में व्याप्त इन स्थानों में स्थित विकार रहित वात[1], पित्त[2], कफ[3], इस शरीर को धारण कर रहे हैं। जैसे कोई भवन तीन खम्भों पर टिका हो, उसकी भाँति वात, पित्तादि तीनों के द्वारा शरीर धारण होने से शरीर को कुछ आचार्य त्रिस्थूण कहते हैं।

सुश्रुत के वचन से स्पष्ट है यह शरीर वात, पित्त, कफ से ठहरा हुआ है और इन वात, पित्त, कफ को बनाने वाला ईश्वरीय शक्ति के अतिरिक्त कोई

---

१. तत्रापि पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम्। चरक. सूत्र.२०/८
२. तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्। चरक. सूत्र.२०/८
३. तत्राप्युरो विशेषेण श्लेष्मस्थानम्। चरक. सूत्र.२०/८

नहीं है। ये वात, पित्त, कफ चाहे मनुष्य के हों अथवा मनुष्य से भिन्न पशु, पक्षी आदि के हों। सभी को वह ईश्वर ही बनाता है। यदि वात, पित्तादि का कोई और बनाने वाला होता तो आज काठ की गाय आदि आकृतियों में भी घास से दूध बना लिया होता !

तात्पर्य यह हुआ कि वात, पित्त, कफ का बनाने वाला ईश्वर है, इन वात, पित्त, कफ आदि में हमारे आहार दोष से विकृति को करने वाला भी ईश्वर है। उस विकृति से निद्रा नाश होता है, निद्रा नाश से स्वप्न आता है। यह स्वप्न आने की प्रक्रिया है। अतः ईश्वर से स्वप्न=सपने के नाश की प्रार्थना करना कदापि अनुचित नहीं है। और न ईश्वर से की जाने वाली प्रार्थना ईसाई, मुल्लाओं की प्रार्थना कही जा सकती है।

ईसाई पादरी, मुस्लिम मुल्लाओं की प्रार्थनाओं में तो मध्यस्थों की आवश्यकता है। गॉड से प्रार्थना करने के लिए मध्य में **ईसा** चाहिए, खुदा से प्रार्थना करने के लिए मध्य में **मोहम्मद** चाहिये। इतना ही नहीं, नेकी बदी लिखने के लिए **किराबीन** व **कातेबीन** नामक फरिश्ते चाहिए तथा नेकीबदी पूछने के लिए **नकीर** एवं **मुनाकीर** नामक दो और फरिश्ते चाहिए ? उपेन्द्र राव। लगा न झटका !

वेद का ज्ञान **नित्य** है, **संशय रहित** है। आज नहीं तो कल आक्षेप को झक मारकर समझना पड़ेगा।

अद्या नो. ऋ. ५/८२/४, साम. १४१, इस मन्त्र का देवता **सविता** है। **सविता** शब्द के (सविता सर्वस्य प्रसविता, निरु. १०/३/३१) प्रेरक, उत्पादक, उत्पन्न जगत्, ऐश्वर्य आदि अर्थ हैं। इन गुणों से सम्पन्न ईश्वर[1], अग्नि[2], वायु[3], चन्द्रमा[4], यज्ञ[5], प्राण[6], यकृत्[7], राष्ट्र[8], सूर्य[9] आदि पदार्थ

---

१. *प्रजापतिर्वै सविता।* ताण्डय ब्रा. १६/५/१७
२. *अग्निरेव सविता।* जै. उ. ४/२७/१
३. *वायुरेव सविता।* गो. ब्रा. १/१/३३
४. *चन्द्रमा एव सविता।* गो ब्रा. १/१/३३
५. *यज्ञ एव सविता।* गो ब्रा. १/१/३३
६. *प्राणो वै सविता।* ऐ. ब्रा. १/१९
७. *यकृत् सविता।* शत. ब्रा. १२/९/१/१५
८. *सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः।* तै. ब्रा. २/५/७/४
९. *आदित्योऽपि सवितोच्यते।* निरु. १०/३/३१

सविता कहे जाते हैं। मन्त्र का अर्थ है-

हे **देव सवितः**=जगत् प्रकाशक, सर्वप्रेरक, सर्वव्यापक ईश्वर! अथवा अग्नि, यकृत् आदि **अद्य**=आज, **नः**=हमारे लिए, **सौभगम्**=उत्तम ऐश्वर्य, **प्रजावत्**=प्रजा के समान, **सावीः**=उत्पन्न करें और, **दुःष्वप्न्यम्**=अनिद्रा, निद्रानाश के कारण उत्पन्न बुरे सपने, विचार, कारण, दुःख को, **परा सुव**=दूर कर दीजिये।

मन्त्र में **दुःष्वप्न्य**=बुरे सपनों से उत्पन्न दुःख की निवृत्ति के लिये **सविता**=ईश्वर, अग्नि, प्राण, यकृत् आदि से प्रार्थना की गई है। इन पदार्थों से की गयी प्रार्थना जादू टोना नहीं है। ईश्वरोपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों के सेवन से स्वप्न आदि विकृतियाँ नष्ट होती हैं।

आदित्य, की समीक्षा

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥
ऋ. ८/४७/१४

यच्च गोषु., ऋ. ८/४७/१४, इस ऋग्वेद के मन्त्र का देवता **आदित्यः** है। **आदित्य** शब्द का निर्वचन है-

आदित्यः कस्मात्? आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम् आदिप्तो भासेति वा, आदितेः पुत्र इति वा।

अर्थात् आदित्य किस कहते हैं? जो प्रत्येक पदार्थ के रसों को ग्रहण कर लेता है, नक्षत्र, चन्द्र आदि की ज्योतियों का हरण कर लेता है, जो ज्योति से दीप्त है अथवा जो ईश्वर प्रकृति आदि का पुत्र है वह आदित्य कहलाता है।

तात्पर्य हुआ इन गुणों से युक्त ईश्वर[1], सूर्य[2], राजा[3], चन्द्रमा[4], जीव[5], प्राण[6] आदि आदित्य कहे जाते हैं।

---

१. आदित्यो वै ब्रह्म। जै. उ. ब्रा. ३/४/९
२. असौ वा आदित्यः सूर्यः। शत. ब्रा. ९/४/२/२३
३. आदित्यो राजानम्। जै. ब्रा. २/१५
४. चन्द्रमा ओमित्यादित्यः। जै. उ. ब्रा. ३/६/२
५. इमा आदित्या प्रजाः। काठ सं. २५/६
६. आदित्यो वै प्राणः। जै. उ. ४/२२/११

यच्च गोषु, ऋ.८/४७/१४ मन्त्र का अर्थ है-हे **दिवःदुहितः**= आदित्य पुत्री उषा। हे प्रकाश के भरने वाले **(दुह प्रपूरणे)** ईश्वर। हे **विभावरि**=रात्रिकालीन उषा। अथवा विशिष्ट प्रकाश वाली उषा। **यत् च गोषु**=जो हमारी वाणी व इन्द्रियों में (**गौरिति वाङ्नाम**, निघ.१/११, **इन्द्रियं वै वीर्यं गावः**, शत.ब्रा.५/४/३/१०), **दुःष्वप्न्यम्**=वात, पित्तादि की विकृति से निद्राक्षय द्वारा उत्पन्न, दुःस्वप्नों के प्रभाव को, **च**=और, **यत् अस्मे**=जो हमारे मन आदि में प्रभाव है, उसको **आप्त्याय त्रिताय**=आप्तों में होने वाले (**आप्तेषु भवः आप्त्यः**) ज्ञान, कर्म, उपासना की प्राप्ति के लिए, **परा वह**=दूर कर दीजिये। **वः**=आपकी, **अनेहसः ऊतयः**=पाप रहित रक्षा, **वः ऊतयः सुऊतयः**=आपकी रक्षा उत्तम रक्षा है।

मन्त्र का ताप्तर्य है **आदित्य**=ईश्वर, सूर्य आदि शरीर रक्षक पदार्थ हमारे मन, इन्द्रियों के, **दुःष्वप्न्यम्**=बुरे विचारों, सपनों को दूर करने वाले उत्तम साधन हैं। इनके द्वारा की गई रक्षा उत्तम रक्षा है और वह **आप्त**= धर्मात्मा जनों में होने वाले ज्ञान, कर्म, उपासना को प्रदान करने वाली है। ये **त्रित**=ज्ञान, कर्म, उपासना प्रतिष्ठा के जनक होते हैं[1]।

त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्य नेहसो व ऊतयः
सुऊतयो व ऊतयः ॥ऋ.८/४७/१५॥

मन्त्र का अर्थ है-**त्रिते आप्त्ये**=आप्त जनों में होने वाले ज्ञान, कर्म, उपासना इस त्रिगण के द्वारा, हे **आदित्य**=ईश्वर, अग्नि, प्राण, वायु आदि पदार्थ। हम, **दुःष्वप्न्यम्**=स्वप्न जनित कष्टों को, **परि दद्मसि**=दूर कर लेवें आपकी पाप रहित रक्षा है और आपकी रक्षा उत्तम रक्षा है।

ऋग्वेद के ८ वें मण्डल के ४७ वें सूक्त के इन मन्त्रों में आदित्य शब्द से वाच्य ईश्वर, अग्नि आदि पदार्थों से दुःष्वप्न को हटाने के सामर्थ्य की प्राप्ति की याचना की गई है। वह सामर्थ्य है ज्ञान, कर्म, उपासना। **आदित्य**=ईश्वर की उपासना तथा **आदित्य**=उषा की उत्पत्ति काल से पूर्व काल में भ्रमण, व्यायाम, ध्यान आदि करने से **त्रित**=ज्ञान, कर्म, उपासना

---

1. *त्रैतं भवति प्रतिष्ठायै।* *ताण्डय. ब्रा.१४/२/२१*

का फल प्राप्त होता है। यह प्रार्थना यथार्थ है, जादू टोना नहीं है।

उषाः, की समीक्षा

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो। ऋ. ८/४७/१६
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो। ऋ. ८/४७/१७
उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो। ऋ. ८/४७/१८
अथर्व. १६/६/८

तदन्नाय., ऋ. ८/४७/१६ मन्त्र का अर्थ है-हे प्रभातवेला कारक, प्रकाश दीपक ईश्वर ! अथवा सूर्योदय से पूर्व की प्रभातवेला ! **तदन्नाय**=उस नानाविध भोज्यान्न[1] प्राप्त करने वाले, **तद् अपसे**=उस श्रेष्ठ कर्म करने वाले (**अप इति कर्मनाम**, निघ. २/१), **तं भागम् उप सेदुषे**=उस अपने उत्तम भाग, अंश को प्राप्त करने वाले मनुष्य की, **त्रिताय**=मन, वाणी, कर्म की परिशुद्धि के लिए, **च**=और उस मनुष्य की **द्विताय**=बाह्य, आभ्यन्तर परिशुद्धि के लिए, **दुःष्वप्न्यम्**=बुरे सपनों को, **परा वह**=दूर कर दो। आपकी रक्षा पाप रहित व उत्तम रक्षा है।

एवा दुःष्वप्न्यम्., ऋ. ८/४७/१७ मन्त्र का अर्थ है-हे दाहक, प्रकाशक ईश्वर ! प्रभातवेला ! जैसे काल धीरे-धीरे व्यतीत होता है, पैर जैसे समान रूप से साथ-साथ बढ़ाते हैं, ऋण जैसे धीरे-धीरे चुकाया जाता है, **एवा**=इसी प्रकार, **आप्त्ये**=आप्त जनों के समीप रहकर, **दुःष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न, रोगों, कष्टों को, **सं नयामसि**=शनैः-शनैः दूर कर दें। आपकी रक्षा पापरहित व उत्तम है।

उषो यस्मात्. ऋ. ८/४७/१८, अथर्व. १६/६/२ मन्त्र का अर्थ है-हे **उषः**=पाप दाहक ईश्वर ! प्रभातवेला ! **यस्मात् दुःष्वप्न्यात्**=जिस दुःस्वप्न से हम, **अभैष्म**=डरते हैं, **तत् अप उच्छतु**=वह दूर होवे, आपकी रक्षा पाप रहित व उत्तम हैं।

---

1. एतदु परममन्नं यद्दधिमधुघृतम्। शत. ब्रा. ९/२/१/१२

ऋग्वेद के इन मन्त्रों में उषा, आदित्य अर्थात् ईश्वर, प्रभातवेला आदि शरीर रक्षक पदार्थों से दुःस्वप्न को हटाने की, बल, ओजः के प्राप्त करने की याचना की गई है। ईश्वर की उपासना तथा उषाः=प्रभातवेला में उषःपान, भ्रमण, जागरण आदि कार्यों से शरीर रोग रहित होकर नीरोग होता है। दुःस्वप्न अच्छे, बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। निर्बल, दुर्बल रोगी उन स्वप्नों से डर भी जाते हैं। वे स्वप्न दूर हों तथा भयकारक[1] न हों, यही मन्त्रों का भाव है। **मन्त्रों में जादू टोना की चर्चा नहीं है।**

विश्वे देवाः, की समीक्षा

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुःष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम्। ऋ. १०/३६/४

ग्रावा वदन्नप. ऋ. १०/३६/४ ऋग्वेद के इस मन्त्र का देवता विश्वे देवाः है। **विश्वे देवाः सर्वे देवाः,** निरु. १२/४/३८,, अर्थात् **सर्व देव**=ईश्वर, सूर्य, सूर्य मण्डल, रश्मियाँ, विद्वान् इन्द्रिय गण आदि पदार्थों का **विश्वे देवाः** शब्द वाचक है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **विश्वे देवाः**=शरीरधारक ईश्वर, सूर्य, इन्द्रिय आदि पदार्थ, **ग्रावाःवदन्**=मेघ गरजता हुआ (**ग्रावा इति मेघनाम**, निघ. १/१०) अभ्रों को तोड़ता है वैसे ही **विद्वांसो हि ग्रावाणः,** शत. ब्रा. ३/९/३/१२ विद्वान् **रक्षांसि**[2]=रोगों, दुष्टों, कृमियों आदि को, **अप सेधतु**=दूर करें और **दुःष्वप्न्यम्**=बुरे स्वप्न, **निर्ऋतिम्**=कष्ट, पीड़ा और **विश्वम् अत्रिणम्**=समस्त पीड़कों, खादकों को, **अप सेधतु**=विद्वान् दूर करें।

मन्त्र का भाव है वात, पित्त, कफ की वृद्धि, निद्रानाश आदि द्वारा, **दुःष्वप्न्य**=बुरे स्वप्न आते हैं अथवा **बाह्य रक्षः**=दुष्ट, कृमि आदि दुःख देते हैं, क्षुधा, पीड़ा आदि सताते हैं, उन सबको दूर करने के उपाय विद्वान् जानते हैं। उन उपायों को वे उपदेश द्वारा निर्दिष्ट करें, जिनसे आरोग्य एवं सुख

---

१. *कृष्णा पापा निराचारा दीर्घकेशनखस्तनी। विरागमाल्यवसना स्वप्ने कालनिशा मता॥ इत्येते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पञ्चताम्। अरोगः संशयं गत्वा कश्चिदेव प्रमुच्यते॥ चरक. इन्द्रिय.५/३९, ४०*

२. *रक्षः शब्द के अर्थ व निर्वचन पृष्ठ ७ में द्रष्टव्य हैं।*

की प्राप्ति होती है।

सूर्य, की समीक्षा

येन सूर्य ज्योतिषा बाधते तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।

तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ऋ. १०/३७/४

येन सूर्य. ऋ. १०/३७/४ मन्त्र का देवता **सूर्यः** है। **सूर्य** शब्द का निर्वचन है-

सूर्यः सर्तेर्वा, सुवतेर्वा, स्वीर्य्यतेर्वा। निरु. १२/२/१५

अर्थात् जो गति करता है, प्रेरणा करता है, प्रवृत्त करता है, वह सूर्य कहाता है।

तात्पर्य यह हुआ कि गति, प्रेरणा, नियोजन आदि क्रियाओं को करने वाले जो जो पदार्थ हैं, वे वे सूर्य कहे जाते हैं। अन्तरिक्ष, जगत् आदि में सरकने से, कर्म में प्रवृत्त कराने से तथा स्वयं लगने से ईश्वर, सूर्य, वायु, मनुष्य आदि सभी सूर्य हैं।

येन सूर्य. ऋ. १०/३७/४ मन्त्र का अर्थ है-हे **सूर्य**=सर्वोत्पादक ईश्वर अथवा सूर्य ! **येन ज्योतिषा तमः बाधते**=जिस आपके तेज से अन्धकार दूर होता है, अज्ञान तमः हटता है, **येन भानुना**=जिस प्रकाश से, **विश्वं जगत्**=समस्त जगत् को, **उत् इयर्षि**=उत्पन्न करते हो, **तेन**=उसी प्रकाश से, **अस्मत् विश्वाम् अनिराम्**=समस्त दारिद्र्य अन्न, जल का अभाव **अनाहुतिम्**=यज्ञ साधन घृत, दूध आदि का अभाव, एवं, **अपः अमीवाम्**=निम्न रोग, व्याधि, कृमियों एवं **दुःष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न व दुःस्वप्न के कारणों को, **अप सुव**=दूर कीजिये।

मन्त्र से स्पष्ट है **सूर्य**=सर्व प्रेरक ईश्वर, सूर्य रश्मियाँ आदि पदार्थ प्रकरणानुसार अज्ञान, अन्धकार, अन्नादि के अभाव को दूर करते हैं तथा घृत, दुग्ध आदि यज्ञ के साधन, गौ आदि पशुओं का अभाव को दूर कर रोग मुक्त करते हैं। निद्रा दोष से उत्पन्न स्वप्न आदि कष्टों को दूर करते हैं। ये समस्त प्रेरक पदार्थ सेवनीय हैं। इनका सेवन करना जादू टोना नहीं, ये प्रत्यक्षतः लाभ पहुँचाने वले हैं। सूर्य की किरणों से रहित दबी हुई घास पीली

पड़ जाती है, सूर्य के प्रकाश में हरी रहती है, यह तो देखा ही होगा !

उपेन्द्र राव **सूर्य** के इस प्रत्यक्ष लाभ को जादू टोना कहते हैं तो वे सर्वदा बन्द कोठरी में ही रहें !

अपामार्ग (ओषधि), की समीक्षा

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यं सुव ॥ यजु. ३५/११

अपाघमप., यजु. ३५/११ यह यजुर्वेद का मन्त्र है । मन्त्र का देवता **अपामार्ग** है । अपामार्ग की व्युत्पत्ति है-

अप विपर्ययेण आ समन्तात् मार्जयति मार्जति इति वा अपामार्गः ।

अर्थात् जो चारों ओर से बुराई, दोष, विकृति आदि को शुद्ध करता है एवं नितान्त समाप्त करता है, वह अपामार्ग कहा जाता है ।

अपामार्ग की इस व्युत्पत्ति के अनुसार ईश्वर, अपामार्ग नामा औषधि व तत्सदृश पदार्थ अपामार्ग[1] संज्ञक होते हैं ।

अपाघमप. यजु. ३५/११ मन्त्र का अर्थ है-हे **अपामार्ग**=ईश्वर व औषधि ! **त्वम्**=तुम, **अस्मत्**=हमसे, **अघम्**=पाप[2], रोग, हिंसा के भाव आदि को, **अप सुव**=दूर कर दो, **किल्बिषम्**[3]=कीर्तिनाशक दुष्कर्मों को, **अप सुव**=दूर कर दो, **कृत्याम् अप सुव**=रोग, रोगकृमि, हत्या, हिंसा के प्रयोग दूर कर दो, **रपः अप**=बाह्य इन्द्रियों की चंचलता जन्य अपराध, पाप, बलात्कार (**रपः इति पापनाम भवति**, निरु. ४/३/२१) **अप सुव**=दूर कर दो, और **दुःष्वप्न्यम् अप सुव**=बुरे, बिगड़ी निद्रा में होने वाले दुःखकारक विचार, स्वप्न के कष्टों को दूर कर दो ।

मन्त्र का तात्पर्य है रोग, हिंसा रूपी पाप, कीर्तिनाशक मनस्पाप, हिंसाजन्य पाप, इन्द्रियजन्य पाप एवं **दुःष्वप्न्यम्**=निद्राक्षयजन्य स्वप्न रूपी

१. (i) *अपामार्ग शब्द की विशेष व्याख्या 'हत्या के लिए ओषधि वनस्पतियों को उकसाना, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ १३, १४ में द्रष्टव्य है ।*
(ii) *अपामार्ग की विशेष व्याख्या लेखिका की 'अन्तरिक्ष वसिष्ठ ब्रह्म आदि विज्ञान' पुस्तक के पृष्ठ ८१-८६ में द्रष्टव्य है ।*

२. *पाप शब्द के अर्थ व निर्वचन पृष्ठ ८०, ८१ तथा १५०, १५१ में द्रष्टव्य है ।*

३. *किल्बिषं किल्भिदं कुकृतकर्मणो भयं, कीर्तिमस्य भिनत्तीति वा । निरु. ११/३/२*

पाप ईश्वर, औषधि आदि के सेवन से दूर हो जाते हैं। दोष वात, पित्त, कफ की वृद्धि व विकृति से होते हैं। उन विकृतियों का नाश ईश्वरोपासना व अपामार्ग[1] औषधि सेवन से भली प्रकार होता है।

दुःस्वप्न औषधि से दूर होने वाला रोग नहीं है, उपेन्द्र राव का यह कथन अज्ञता का द्योतक है।

आञ्जन, की समीक्षा

असन्यन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन॥ अथर्व. ४/९/६

असन्मन्त्राद्. अथर्व. ४/९/६ मन्त्र का देवता **त्रिककुदाञ्जनम्** है। **त्रिककुत् आञ्जन** शब्द ईश्वर, जीव, प्रकृति एवं पर्वतीय आञ्जन औषधि का वाचक है। प्रकृत मन्त्र में आया आञ्जन शब्द मुख्यतया ईश्वर का वाचक है, गौण रूप से आञ्जन औषधि का भी वाचक है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **आञ्जन**[2]=उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाले ईश्वर ! **नः**=हमें, **असत् मन्त्रात्**=बुरी गुप्त मन्त्रणा से, विचारों से, **पाहि**=बचाओ, **दुःष्वप्न्यात्**=बुरे, अशुभ, भयत्रास देने वाले स्वप्नों, स्वप्नों के कारणों से दूर करो, **दुष्कृतात्**=बुरे कर्म, विफल कर्म से, **उत**=और, **शमलात्**=शान्तिनिवारक (**शं शान्तिः अलं समाप्तिः, अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु**) कारणों से रक्षा करो, **दुर्हार्दः**=हृदय की दुर्भावनाओं से, **घोरात् चक्षुषः**=नेत्रों के भय, क्रूरता से, **तस्मात्**=इन सब प्रत्येक से रक्षा करो।

मन्त्र का भाव है ईश्वर की उपासना हमें दुर्विचार, दुःस्वप्न, दुष्कर्म, शान्तिघातक कारणों से दूर रखती है तथा उपासना हमें दुष्ट हार्दिक भावों तथा क्रोध आदि दुर्भावों से बचाती है।

आञ्जन शब्द का अर्थ तन्नामक औषधि लें, तो भी दुर्विचार, स्वप्न आदि की प्रार्थना निरर्थक नहीं है। आञ्जन औषधि से निर्मित **आञ्जन भस्म** मानसिक रोगों को दूर करती है, हिंस्त्र अतिशोक आदि विघ्नों को नष्ट

---

१. अपामार्ग औषधि के गुण, धर्म 'वनौषधि चन्द्रोदय' पुस्तक के भाग १ में द्रष्टव्य है।
२. आञ्जन शब्द के अर्थ विशेष 'आञ्जनों की झूठी बड़ाई, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ ५७-६० एवं १८५, २२० में द्रष्टव्य है।

करती है। निद्रा भग्न होने से मानसिक सन्ताप से दुःष्वप्न आते हैं उन्हें भी निर्मूल करती है। अञ्जन औषधि से बना सुरमा आँख के रोगों, दोषों को दूर कर सिर की अनेक व्याधियों को नष्ट करता है।

अज्ञानी उपेन्द्र राव व्यंग्य भाषा में 'अथर्वाचार्य तो दुःस्वप्न को दूर करने के लिए ओषधि मणि आदि सब किसी से भी सहायता लेता है। बिचारे ये पदार्थ भी क्या करें, हुकुम जो है!' पृ. ५४। इस वाक्य द्वारा आञ्जन औषधि के गुणों पर प्रश्न चिह्न लगाने का साहस कर बैठे। वह व्यंग उनके ज्ञान पर ही जा टिका!

अपामार्ग, की समीक्षा

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि॥

अथर्व. ४/१७/५, ७/२३(२४)/१

दौष्वप्न्यम्., अथर्व. ४/१७/५, ७/२३/१ मन्त्र का देवता **अपामार्गः** है। **अपामार्ग** शब्द ईश्वर, अपामार्ग औषधि एवं ईश्वर व औषधि के गुण वाले जीव, वायु, अग्नि आदि पदार्थों का वाचक है।

दौष्वप्न्यम्., अथर्व. ४/१७/५, ७/२३/१ मन्त्र का अर्थ है-**हे अपामार्ग**[१]=ईश्वर या औषधि ! हम आपकी उपासना व औषधि से, **दौष्वप्न्यम्**=बुरे स्वप्न एवं बुरे स्वप्नों के दृश्य, **दौर्जीवित्यम्**=जीवन के दुःखों, कष्टों, दुर्वृत्तियों (**दुर्जीवितस्य भावः दौर्जीवित्यम्**), **रक्षः**[२] **अभ्वम्**=रोग उत्पादक कृमियों को नष्ट करें, **अराय्यः**=धनाभाव असंवृद्धि एवं असंवृद्धि के कारणों को तथा हम, **अस्मत्**=हमारे मध्य में, जो **दुर्णाम्नीः दुर्वाचः**=दुष्ट नाम वाले रोग, बदनाम, कुत्सित एवं दुर्वचन, अशुभ बोलने वाली, **ताः सर्वाः**=उन सब स्त्रियों को, शक्तियों को दूर करते हैं।

मन्त्र का भाव है **अपामार्ग**=ईश्वर, औषधि आदि शोधक पदार्थ

---

१. (i) अपामार्ग शब्द की विशेष व्याख्या 'हिंसा के लिए ओषधि वनस्पतियों को उकसाना, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ ९३, ९४ में तथा २०४ में द्रष्टव्य है।
(ii) अपामार्ग की विशेष व्याख्या लेखिका की 'अन्तरिक्ष वसिष्ठ ब्रह्म आदि विज्ञान' पुस्तक के पृष्ठ ८१-८६ में द्रष्टव्य है।

२. रक्षस् शब्द का अर्थ व निर्वचन पृष्ठ ७ में द्रष्टव्य है।

स्वस्थ करते हैं। दुःस्वप्न, जीवन की दुर्गति, बीमारी व बीमारी के कृमियों को नष्ट करते हैं। अपामार्ग वाच्य पदार्थों से धन की प्राप्ति होती है, बदनामी हटती है, वाणी सुवचन कहती है। स्त्रियाँ दुष्प्रवृत्तियों से सुरक्षित होती हैं।

उपेन्द्र राव **अपामार्ग** वाच्य ईश्वर, औषधि आदि के शोधन, नाशन गुणों को जादू टोना कहकर इन पदार्थों के तिरस्कार में जुटे हैं, उनका यह प्रयत्न व्यर्थ ही रहेगा।

स्वप्न, की समीक्षा

स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि। अथर्व. ६/४६/२

एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि। अथर्व. ६/४६/३

एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि। अथर्व. १९/५७/१

अथर्ववेद के इन तीनों मन्त्रों का देवता **स्वप्नः** है। **स्वप्न**, निद्रा, सोने की क्रिया को कहते हैं। निद्रा, सोने की क्रिया को करने वाले तथा कराने वाले कर्ताओं को भी स्वप्न कहा जाता है

तात्पर्य हुआ निद्रा=सोने की क्रिया, ईश्वर, जीव, औषधि आदि की स्वप्न संज्ञा है। प्रसङ्गतः मन्त्र में आया स्वप्न शब्द सभी अर्थों का वाचक है।

स नः., अथर्व. ६/४६/२ मन्त्र का अर्थ है-**सः स्वप्न**=वह **स्वप्न**[1]=ईश्वर, जीव, निद्रा, निद्रादायक औषधि ! **नः**=हमें, **दुष्वप्न्यात्**=खराब बुरे, विकृत स्वप्नों, दुष्परिणामों एवं भय से, **पाहि**=रक्षा करो।

एवा., अथर्व. ६/४६/३ मन्त्र का अर्थ है-हे **यम स्वप्न**=नियन्त्रक निद्रा देने वाले ईश्वर ! औषधि आदि ! जैसे चन्द्र की कलाओं को सूर्य की रश्मियाँ एक-एक कर ले जाती है, जैसे अश्व, बैल के एक खुर में भी लोहे की नाल को क्रमशः लगाते हैं, जैसे ऋण को क्रमशः देते हैं, **एवा**=उसी प्रकार, सर्वं **दुष्वप्न्यम्**=बुरे विचार, दुष्परिणाम, **द्विषते**=अप्रीति करने वाले के लिए हम, **सं नयामसि**=प्राप्त कराये।

---

१. स्वप्न शब्द का अर्थ, निर्वचन एवं स्वप्न=निद्रा के लाभ आदि का विशिष्ट परिज्ञान 'स्वप्न का आधार व चिकित्सा, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ १८९-१९० में द्रष्टव्य है।

एवा दुष्वप्न्यम्., अथर्व. १९/५७/१ मन्त्र का अर्थ है-जिस प्रकार चन्द्रमा की १६ कलाओं को, जिस प्रकार खुर के दोनों हिस्सों को, जिस प्रकार ऋण को क्रमशः पूरित, युक्त करते कराते हैं, **एवा**=इसी प्रकार शनैः-शनैः **दुष्वप्न्यम्**=निद्राक्षय से उत्पन्न दुर्विचारों, दुर्विचारों के कारणों को, **अप्रिये**=द्वेषी, प्रीति रहित जनों को, **सं नयामसि**=प्राप्त कराते हैं।

मन्त्रों से स्पष्ट है **दुष्वप्न्य**=दुःख, कष्टजनक, मनोघातक दुर्विचार, दुःस्वप्नों को, **स्वप्न**=ईश्वर, सोने वाला कर्ता व औषधियाँ दूर कर देती हैं। यद्यपि स्वप्न शब्द का निद्रा अर्थ भी है, तथापि यहाँ स्वप्न शब्द का मुख्य अर्थ ईश्वर, जीव, औषधि आदि हैं।

उपेन्द्र राव स्वप्न शब्द का मुख्य अर्थ तो समझ न सके। नींद अर्थ लेकर प्रार्थना वा आज्ञा ही तो करनी है। अथर्ववेद **स्वप्न**=निद्रा से भी सहायता लेता है आदि व्यंगात्मक वाक्य रचना में ही मस्त हैं।

द्विषते, अप्रिये का तात्पर्य

प्रसंगगत मन्त्रों में आये **द्विषते, अप्रिये** पद जादू टोना के परिचायक नहीं हैं। न अन्यत्र एतादृश आये पद किसी दूसरे की हानि के, घात के परिचायक होते हैं। इन पदों का तथा एतादृश पदों का गम्भीर भाव होता है। **सच्चासच्च वचसी पस्पृधार्थ,** अथर्व. ८/४/१२ सत्य असत्य, शुभ अशुभ आदि के जोड़े वाले शब्द, वचन अनादि काल से एक दूसरे पर स्पर्धा कर रहे हैं। अर्थात् दोनों प्रकार के पक्ष विद्यमान हैं। इन दोनों पक्षों से जन्य शुभ अशुभ कर्मों में से अपने को चुनना है। जो शुभ होगा, शुभ चुनेगा, जो अशुभ होगा, अशुभ को चुनेगा, अशुभ अशुभ के पास ही रहेगा। **द्विषते**[1], **अप्रिये सं नयामसि**=दुष्ट, अप्रिय की ओर ले जावे इस कथन का बस इतना ही तात्पर्य है कि हम शुभ बने, शुभ को चुने। जब शुभ को चुन लेंगे, तो अशुभ स्वतः अशुभ की ओर ही ले जाया जायेगा, पहुँच जायेगा। मारने, काटने की क्रिया से नहीं पहुँचाया जायेगा।

---

१. *द्विषते आदि का तात्पर्य 'आत्मसंकल्प, की समीक्षा' प्रसंग के पृष्ठ २२३ में द्रष्टव्य है।*

अग्नि, की समीक्षा

दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्।

अथर्व. ६/१२१/१, ७/८३/४

दुष्वप्न्यम्., अथर्व. ६/१२१/१, ७/८३/४ मन्त्र के देवता **वरुणः** व अग्निः हैं। **वरुण** का निर्वचन है-

वरुणो वृणोतीति सतः। निरु. १०/१/४

अर्थात् जो ढकता है, आच्छादित करता है, उसे वरुण कहते हैं।

तात्पर्य हुआ ढकने व आच्छादन करने वाले ईश्वर, समुद्र, राजा, जीव, वृष्टिजनक वायु, रश्मिजाल, सूर्य, ऑक्सीजन=ओषजन्य वायु, मेघ, औषधि आदि पदार्थ वरुण कहे जाते हैं।

अग्नि का निर्वचन है-

अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नममानः, अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः, न क्नोपयति, न स्नेहयति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः, इतात्, अक्तात्, दग्धाद् वा नीतात्। निरु. ७/४/१४

अर्थात् अग्नि कौन है ? जो अग्रणी होता है, जो **यज्ञ**=श्रेष्ठ कर्म आदि में आगे लाया जाता है, जो रखा हुआ अपना अङ्ग बना लेता है। स्थौलाष्ठीवि के मत में जो रुक्ष, शुष्क करने वाला होता है। शाकपूणि के मत में जो गतिशील, दाहक, गतिदायक होता है, वह अग्नि होता है।

तात्पर्य हुआ अग्रणी आदि गुणों से युक्त पदार्थ अग्नि कहे जाते हैं। अग्रणी आदि गुणों से युक्त होने के कारण ईश्वर, **अग्नि**=आग, विद्युत्, सूर्य राजा, औषधि आदि पदार्थ अग्नि संज्ञा वाले हैं।

दुष्वप्न्यम्., अथर्व. ६/१२१/१, ७/८३/४ मन्त्र अर्थ है- हे **अग्ने**= ईश्वर, औषधि ! आपकी रक्षा, **अस्मत् दुष्वप्न्यम्**=बुरे, अवद्य स्वप्नों को, **दुरितम्**=दुःखों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों को हमसे, **निःस्व**=निकाल दें, दूर कर दें (षू प्रेरणे), **अथ**=और, हम, सुकृतस्य लोकम्=शुभ, उचित सुकर्मियों के, पुण्यों के, **लोकम्**=प्रकाश को, स्थान को (लोक दर्शने), **गच्छेम**=प्राप्त करें।

यहाँ मन्त्र में अग्नि स्वरूप ईश्वर, राजा एवं **अग्नि**=कलिहारी[1] औषधि

१. कहिलारी=अग्निशिखा, अमूला औषधि पृष्ठ १३७ में द्रष्टव्य है।

से होने वाले लाभों का प्रतिपादन है। मन्त्र का तात्पर्य है इन आग्नेय पदार्थों का आश्रयण निद्रानाश के कारण उत्पन्न वात पित्तादि की विकृति को दूर कर **दुष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्नों को दूर करता है। जिसका परिणाम होता है कि दुर्विचारों से रहित व्यक्ति सुकर्म, सुकृत् प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार आग्नेय पदार्थों से दुष्वप्न्य निवारण आदि की प्रार्थना जादू टोना नहीं होती।

आत्मसङ्कल्प, की समीक्षा

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः॥ अथर्व. ७/१००(१०५)/१

पर्यावर्ते., अथर्व. ७/१००/१ मन्त्र के देवता **अहम्** तथा **ब्रह्म** हैं। अहम्[1] शब्द आध्यात्मिक पदार्थों के परमेश्वर व जीवात्मा का वाचक है। ब्रह्म शब्द के परमेश्वर[2], कर्म[3], वेदज्ञान[4] व जीवात्मा[5] आदि अर्थ हैं।

पर्यावर्ते., अथर्व. ७/१००/१ मन्त्र का अर्थ है-**ब्रह्म**=हे ईश्वर! आपकी रक्षा कृपा से, **अहम्**=मैं जीव, **दुष्वप्न्यात्**=निद्रा नाश से उत्पन्न बुरे स्वप्न, **पापात्**=मानसिक, वाचिक, कायिक पाप से, **पर्यावर्ते**=दूर होता हूँ। **अभूत्याः स्वप्न्यात्**=सम्पत्ति नाश के स्वप्नों से दूर होता हूँ, **अन्तरम्**=अपने अन्दर, **ब्रह्म**=आप दुःस्वप्न निवारक ईश को, वेदज्ञान को, **कृण्वे**=करता हूँ, **स्वप्नमुखाः शुचः**=दुःस्वप्न उत्पादक शोक, सन्ताप दूर होवे।

मन्त्र में **ब्रह्म**=परमात्मा व **अहम्**=आत्मा सङ्कल्प द्वारा, **दुष्वप्न्यात्**=बुरे विचारों, दुःखों के निवारण की प्रार्थना की गई है। वह प्रार्थना **जादू टोना नहीं है**। ब्रह्म और आत्मसंकल्प बुराइयों को दूर करते हैं। बुराइयों को दूर करने के लिए ब्रह्म और आत्मसंकल्प गूँगे के गुड़ के सदृश हैं, अनुभव करने योग्य हैं। **तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**, यजु. ३४/१-६, अर्थात्

---

१. अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना। निरु.७/१/२
२. ब्रह्म वै प्रजापतिः। शत. ब्रा. १३/६/२/८
३. ब्रह्माणि कर्माणि। निरु. १२/४/३३
४. ब्रह्म वै मन्त्रः। जै. ब्रा. १/८८
५. तद् ब्रह्म स आत्मा। तै. आ.७/५/१

मेरा मन शिवसंकल्प वाला होवे, यह प्रार्थना आत्मसंकल्प शक्ति की अभिद्योतक है।

स्वप्न कष्ट देने वाले, **भूति**=सम्पत्ति नाश दिखाने वाले, गर्त आदि में गिरने वाले अनेक प्रकार के आते हैं। जिनकी प्रति निवृत्ति आत्मसंकल्प व ब्रह्मोपासना से की जा सकती है। स्वप्नों, दुःस्वप्नों के विविध प्रकारों का वर्णन चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में किया गया है।[1]

काम (आत्मसङ्कल्प), की समीक्षा

यन्मे मनसो न प्रियं न च क्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥अथर्व.९/२/२ ॥
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्यो अस्मभयमंहूरणा चिकित्सात् ॥
अथर्व.९/२/३ ॥

यन्मे मनसो., अथर्व.९/२/२, **दुष्वप्न्यं काम.**, अथर्व.९/२/३ इन मन्त्रों का देवता **कामः** है। **कामः** शब्द की व्युत्पत्ति है-

यः काम्यते यो वा कामयते सः कामः।

अर्थात् जो चाहा जाता है, जो चाहता है, जो दीप्त (**कमु कान्तौ**) करता है, जो दीप्त होता है, वह काम संज्ञक होता है।

सभी जीवों के द्वारा ईश्वर चाहा जाता है व जीव चाहते हैं, ईश्वर प्रकाशित करता है, दीप्त करता है, जीव दीप्त होता है अतः ईश्वर[2], व जीव[3], कामना व इच्छा **काम** शब्द से कहे जाते हैं।

यन्मे मनसो., अथर्व.९/२/२ मन्त्र का अर्थ है-हे **काम**=ईश्वर! आपकी कृपा से, **यत्**=जो, **मनसः मे न प्रियम्**=मेरे मन का प्रिय नहीं है, **न चक्षुषः** = न आँख का प्रिय है, **यत् मे बभस्ति**=जो भर्त्सना (**भस भर्त्सनदीदयोः**) करता है, **न अभिनन्दति**=संवर्द्धित व आनन्दित नहीं करता,

---

१. शष्कुलीर्वाप्यपूपान् वा स्वप्ने खादति यो नरः।
स चेत् तादृक् छर्दयति प्रतिबुद्धो न जीवीत ॥ आदि-आदि। चरक. इन्द्रिय.५/१५

२. कामो वै वैश्वानरः। मै. सं.३/१/१०, आत्मा वैश्वानरः। तै. सं.५/६/६/३

३. कामो हि दाता कामः प्रतिगृहीता। तै. ब्रा.२/२/५/६

तत् दुष्वप्न्यम्=उस निद्रानाश में उत्पन्न दुर्विचार को, **सपत्ने**=प्रतिद्विन्द्वी, विरोधी, कृमि, शत्रु में, **प्रति मुञ्चामि**=छोड़ता हूँ। कामं **स्तुत्वा**=आप ईश्वर की स्तुति, उपासना करके, **अहम्**=मैं, **उत् भिदेयम्**=उत्कृष्ट होकर, स्वप्न, स्वप्न सदृश दुर्भावनाओं, दुर्विचारों को छिन्न भिन्न कर दूँ।

मन्त्र का तात्पर्य है **काम**=ईश्वर के स्तवन व उपासना द्वारा आत्मा, मन व चक्षुरादि इन्द्रियों को कष्ट देने वाले अवाच्छित, अप्रिय दुःस्वप्न आदि दुर्विचारों को दूर करने का, **अहम्**=जीवतत्त्व को प्रयत्न करना चाहिए और आत्मोन्नति के लिए उत्तरोत्तर ऊपर उठते जाना चाहिये।

दुष्वप्न्यं काम. अथर्व. ९/२/३ मन्त्र का अर्थ है - **हे काम** = कमनीय (**कमु कान्तौ**) परमेश्वर ! **दुष्वप्न्यम्**=बुरे स्वप्नों, विचारों, दृश्यों, आपत्तियों व कारणों को, **हे काम**=दीप्तिमय परमेश्वर ! **च**=और, **दुरितम्**=दुःख, दुर्गुण, दुर्गति, दुष्परिणाम को, **अप्रजास्त्वम्**=सन्तान हीनता को, **अस्वगताम्**=निर्धनता, अनधिकारिता, **अवर्तिम्**=निर्जीविका, द्रव्यभाव को, **उग्रः ईशानः**=तेजस्वी शासक होते हुए आप इन सब अभावों को, बुराईयों को, **तस्मिन् प्रतिमुञ्च**=उसमें छोड़ दीजिये। **यः अस्मभ्यम्** = जो हमारे लिए, **अंहूरणा** = पापों, पापकर्मों को (अंहतिश्च अंहश्च अंहुश्च हन्तेर्निर्दूढोपधात् विपरीतात्, निरु. ४/४/२४), **चिकित्सात्**[1]=चाहता है।

मन्त्र की प्रार्थना है कि जो **दुष्वप्न्यम्** = बुरे विचार, दुर्भावना, सन्तानादि अभाव दूसरों के लिए चाहता है, वह चाहना, वह कर्म उसे ही प्राप्त हो, जो दूसरे का बुरा चाहता है, अशुभ करता है।

इन मन्त्रों में जादू टोना नहीं है। पर दुर्बुद्धि के भण्डार उपेन्द्र राव मन्त्रों में जादू टोना ढूँढ़ते हुए आरोपात्मक वाक्य कहना नहीं भूले और ठोंक दिया वाक्य -

'दुष्वप्न्य को मैं शत्रु पर छोड़ता हूँ। शाबाश ! दुष्टबुद्धे ! पृ. ५५ ॥

उपेन्द्र राव का यह वाक्य कितना बचकाना है, यह उनके वाक्य से ही स्पष्ट है। **दुष्वप्न्यं सपत्ने प्रति मुञ्चामि**=दुःस्वप्न को, **सपत्न**=विरोधी वृत्ति

१. कित ज्ञाने। क्षीरतरङ्गिणी ३/२०

में छोड़ता हूँ। इस आत्मसंकल्प इच्छा का तात्पर्य जादू टोना नहीं है, अपितु **सत्** = शुभ, सुविचार पक्ष को ग्रहण करूँ या करता हूँ, यह ज्ञापित करना मात्र मन्त्र का तात्पर्य है। **दुष्वप्न्य**=निद्रानाश में होने वाले विचार उठाने, रखने फेंकने वाले भाला, तलवार आदि जैसे पदार्थ नहीं हैं, जो शत्रु पर छोड़े जा सकें।[१]

आपः, की समीक्षा

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥

अथर्व. १०।५।२४, १६।१।१०,११॥

अरिप्रा. अथर्व. १०/५/२४, १६/१/१०,११ मन्त्र का देवता आपः है।आपः का निर्वचन है-

आप आप्नोतेः, आप्यते प्राप्यते सर्वत्रेति आपः निरु. ९/३/२५

अर्थात् जो व्याप्त होता है, सर्वत्र प्राप्त होता है, वह आपः कहा जाता है।

तात्पर्य हुआ सर्वत्र व्यापक, प्राप्त करने योग्य जो जो पदार्थ हैं, वे आपः संज्ञक होते हैं। व्यापन, प्रापण गुणों के कारण ईश्वर[२], वायु[३], जल[४], पृथिवी[५], तेज[६], यज्ञ[७], औषधियाँ[८], वीर्य[९] आदि पदार्थ आपः कहे जाते हैं।

आपः संज्ञक ईश्वर, जल आदि पदार्थ आरोग्य प्रदान करते हैं। अतः **आपो विश्वस्य भेषजीः**, अथर्व. ३/७/५, अर्थात् अप्तत्त्व ही सब रोगों की औषधि है, इस वचन में आपः तत्त्व की महत्ता व्यक्त की गई है। जल

---

१. शुभ ग्रहण, अशुभ परित्याग की विस्तृत व्याख्या 'द्विषते अप्रिये का तात्पर्य' शीर्षान्तरगट पृष्ठ २०८ में द्रष्टव्य है।
२. आपो वै प्रजापतिः। शत. ब्रा. ८/२/३/१३
३. आपो वै मरुतः। ऐ. ब्रा. ६/३०
४. आपो वै पुष्करम्। शत. ब्रा. ६/४/२/२, उदकं पुष्करम्। निरु. ५/३/१४
५. अप्सु पृथिवी। जै. उ. १/२
६. अप्सु तेजः। शां. आ. ६/२
७. आपो वै यज्ञः। तै. सं. १/७/५/३
८. आपो ह वा ओषधीनां रसः। शत. ब्रा. ३/६/१/७
९. आपो हि रेतः। मै. सं. ४/८/५

मात्र प्रसङ्ग में जल ही सब रोगों की औषधि है, यह वचन का वाच्यार्थ है।

आपः=जल चिकित्सा

सृष्टि का जल पदार्थ जहाँ नहाने धोने, पीने आदि के प्रयोग में आता है, वही दमा, मधुमेह, मन्दाग्नि, यकृत् आदि शरीर के विभिन्न रोगों के उपचार में उपयोग में लिया जाता है। चिकित्सा पद्धतियों में प्राकृतिक चिकित्सा भी एक पद्धति है। यह चिकित्सा औषधि विहीन चिकित्सा पद्धति है, जिसमें आहार, उपवास, मिट्टी, विद्युत्, सूर्य रश्मि, मालिश, जल चिकित्सा आदि चिकित्सायें की जाती हैं। इनमें जल चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्राकृतिक चिकित्सा में जल द्वारा गर्म जल चिकित्सा, ठण्डा जल चिकित्सा, गर्म ठण्डा उपचार, यौगिक जल चिकित्सा आदि विधाओं के द्वारा गर्म पाद स्नान, भाप स्नान, ठण्डा कटि स्नान, ठण्डा मेहन स्नान, कुंजल क्रिया, जल नैति, शंख प्रक्षालन आदि अनेकों चिकित्सायें की जाती हैं। इन चिकित्साओं से जहाँ उदर, फेंफड़े , हृदय, हाथ, पैर आदि समस्त शरीरावयवों के रोग, अनिद्रा, गठिया, वात, पित्त की विकृति, मूर्च्छा, नेत्ररोग आदि दूर किये जाते हैं, वहीं निद्रादोष, दुःस्वप्न आदि कुत्सित रोग स्पाइनल बाथ एवं ठण्डा मेहन स्नान, कटि स्नान आदि जल की चिकित्सा विधियों से दूर किये जाते हैं।

जल कैसे दुष्वप्न्य को बहाकर ले जा सकता है ? उपेन्द्र राव का यह वाक्य अन्धेरे में डंडा चलाने जैसा ही है। जल चिकित्सा से निद्राक्षय दोष दूर होगा स्वप्न, दुःस्वप्न स्वतः समाप्त होंगे। जल चिकित्सा में स्पाइनल बाथ=रीड की हड्डी का स्नान दुःस्वप्न निवारण की सुनिश्चित चिकित्सा है। इस प्रकार जल चिकित्सा जादू टोना नहीं है।

जल कैसे दुष्वप्न्य दूर करेगा ? ऐसी शंका से पूर्व कम से कम राव ने प्राकृतिक चिकित्सा के मान्य चिकित्सकों से ही सलाह ले ली होती !

अरिप्रा., अथर्व.१०/५/२४ मन्त्र का अर्थ है-हे **आपः**=व्यापन शील ईश्वर, वीर्य, जल, औषधियाँ ! **अरिप्राः**[1]=पाप रहित हैं, दोष रहित

१. रपो रिप्रमिति पापनामनीभवतः, न रिप्रम् अरिप्रम्। निरु. ४/३/२१

हैं, ये, **अस्मत्**=हमारे, **रिप्रम्**=दोषों को, पापों को, **अप**=दूर करें। **सुप्रतीकाः**=अङ्गों को सुन्दर बनाने वाले जल, वीर्य, ईश्वर आदि, **अस्मत्**=हमसे, **एनः**=पापों को, **प्र वहन्तु**=दूर बहा ले जायें, **दुरितम्**=दुराचरण, दुर्व्यवहार, **प्र वहन्तु**=दूर ले जायें, **दुःष्वप्न्यं मलम्**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत चित्त मल को, **प्र वहन्तु**=दूर कर दें।

मन्त्र का तात्पर्य है शरीर के रक्त, मांस, मन, इन्द्रियाँ आदि के व्यावहारिक, वाचिक आदि पाप हैं, दुराचरण हैं तथा निद्रानाश से दुःस्वप्न रूपी पाप हैं, जो मन को संताप देते हैं। उन सब दोष, पाप, दुराचरण, दुःस्वप्न आदि मलों को परमात्मा, वीर्य, जल आदि औषध भूत पदार्थ दूर करने के सामर्थ्य वाले हैं। इन जल आदि पदार्थों का उपयोग चिकित्सा में किया ही जाना चाहिये। इन पदार्थों से की जाने वाली चिकित्सा जादू टोना नहीं होती।

ब्रह्मगवी, की समीक्षा

अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा। अथर्व.१२/५/३२॥

अघं पच्यमाना., अथर्व.१२/५/३२ मन्त्र का देवता **ब्रह्मगवी** है। **ब्रह्मगवी**[1] शब्द के अनेक अर्थ हैं-

ब्रह्मगवी=परमात्मा की शक्ति

ब्रह्मगवी की=ब्रह्म=जीव की वीर्य आदि शक्ति

ब्रह्मगवी की=ब्राह्मण की गांय

ब्रह्मगवी की=ब्राह्मण की वाणी आदि।

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड के पञ्चम सूक्त के ब्रह्मगवी देवता वाले मन्त्र ७ पर्याय में विभक्त हैं। प्रकृत मन्त्र चतुर्थ पर्याय का है। इस पर्याय के मन्त्रों में ब्राह्मण की गौ पशु[2] की सुरक्षा का संदेश है। वेदों में जिस प्रकार

---

१. *ब्रह्मगवी शब्द के अर्थ, निर्वचन आदि की विशिष्ट व्याख्या 'ब्रह्मगवी' प्रकरण के पृष्ठ १५९-१७४ में द्रष्टव्य है।*

२. *१, २ पर्याय का विषय वेदवाणी, ३ पर्याय का विषय वाणी एवं गौ, ४ पर्याय का विषय गौ पशु, ५ पर्याय का विषय गौ पशु एवं गोघातक, ६ पर्याय का विषय परमात्म शक्ति, वाणी, गौ पशु आदि है, ७ पर्याय का विषय भी वेदवाणी, परमात्म शक्ति, गौ पशु आदि है।*

मनुष्य जाति के जीवों के अस्तित्व रक्षा के संदेश हैं, वैसे ही वृक्ष, पशु आदि पदार्थों के अस्तित्व रक्षा के भी निर्देश वेदों में विद्यमान हैं।

गौ से प्राप्त दुग्ध, घृत आदि पदार्थ पोषक, बल धारक, बुद्धि कारक होते हैं, अत एव **गावो भगो गाव इन्द्रः** ऋ.६/२८/५, अर्थात् गौएँ ऐश्वर्य एवं तेज रूप हैं, यह कहकर गौ पशु की महत्ता ज्ञापित की गई है। गौ उपकारी पशु है। इस उपकारी पशु को दण्डित, पीड़ित आदि करने पर जो दुष्परिणाम होते हैं, उनका इस पर्याय के मन्त्रों में वर्णन है।

अघं पच्यमाना., अथर्व.१२/५/३२ मन्त्र का अर्थ है-गौ घातक द्वारा, **ब्रह्मगवी**=परमात्मा प्रदत्त गौ पशु, **पच्यमाना**=पकाई जाती हुई, **अघम्**=पाप, दुःख का कारण होती है और **पक्वा**= पकी हुई यानी पक जाने पर **दुष्वप्न्यम्**=निद्रा विनाश में उत्पन्न दुर्विचारों, दुःस्वप्नों को उत्पन्न करने वाली होती है।

मन्त्र का तात्पर्य है यदि दुग्ध, दधि, घृत आदि पदार्थ देने वाले गौ पशु की हत्या की जाती है, उसका मांस पकाया जाता है, तो वह बहुत बड़ा जघन्य पाप है, दुःख का कारण है। अन्यच्च गोमांस यदि पकाया जाता है, पकाया क्यों जा रहा है ? क्योंकि खाया जायेगा। तो वह **पक्वा**=पका हुआ, खाया हुआ गोमांस, **दुष्वप्न्यम्** = निद्राविनाश, मानसिक सन्ताप तथा दुर्विचार, दुःस्वप्न सदृश अनेकों कष्टों से गोघातक, गोभक्षक को बाँध देता है।

गौ पशु का मांस विषकारक, मन्दाग्नि, अतिसार, ज्वर आदि को उत्पन्न करने वाला होता है। चरक में कहा है-

गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहत-मनसां चातीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे। चरक. चिकित्सा स्थान १९/४॥

अर्थात् गौ के मांस के भारी होने से, उष्ण और मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध होने से, गौ मांस के प्रयोग की शास्त्र में निन्दा होने से उसका सेवन करने वाले लोगों की जठराग्नि मन्द हो गई, मानसिक कष्ट बढ़ गया। इस प्रकार के व्यक्तियों को सर्व प्रथम अतिसार रोग प्रषध्र राजा के यज्ञ में हुआ।

गौ का मांस मनुष्य की प्रकृति से विरुद्ध है, उससे अतिसार आदि होते हैं, एतत् पोषक वसिष्ठ धर्मसूत्र का वचन है-

त्रय एव पुरा रोगा ईर्ष्या अनशनं जरा।
पृषध्रस्त्वघ्न्यिां हत्वा अष्टानवतिमाहरत्॥ वसि.धर्मसू.२१/२३॥

अर्थात् पहले संसार में केवल तीन ही रोग थे ईर्ष्या, क्षुधा और बुढ़ापा। प्रषध्र राजा ने गौ की हत्या करके ९८ नये रोग उत्पन्न कर दिये।

इस प्रकार स्पष्ट है गोमांस जहाँ अतिसार, बुद्धिनाश मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न करता है, वहीं दुःस्वप्न भी उत्पन्न कर देता है। **नैष स्थाणोरपराधो यदे नमन्धो न पश्यति**, निरु.१/५/१४ उपेन्द्र राव गोमांस से दुःस्वप्न उत्पन्न होते हैं, यह नहीं जानते, तो मन्त्र का कोई दोष नहीं है। यहाँ मन्त्र में **दुष्वप्न्यम्** शब्द देखकर मन्त्र को जादू टोना बताना, उपेन्द्र का बड़ा भारी दोष है।

सूर्य, की समीक्षा

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चात्तरायति।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे॥ अथर्व.१३/१/५८॥

यो अद्य., अथर्व.१३/१/५८ अथर्व वेद के इस मन्त्र का देवता **सूर्यः** है। गति, प्रेरणा, प्रवृत्त करना आदि गुण, क्रियाओं से युक्त ईश्वर, सूर्य, वायु, मनुष्य आदि पदार्थ सूर्य संज्ञा वाले हैं[1]।

सूर्य–परमात्मा अनादि काल से सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न कर सृष्टि के समस्त जड़, चेतन पदार्थों को गतिमान कर रहा है। सबका लालन पालन एवं विनाश ईश्वर के अधीन है। रोगों का शमन भी ईश्वर करता है।

प्रकाश का साधन द्युलोकस्थ सूर्य पदार्थ भी सृष्टि के पदार्थो को प्रवाहमान करता है। सूर्य की ऊर्जा से संसार के चराचर में गति प्रगति, विकास, विभाग आदि होते हैं। सूर्य जहाँ ऊर्जा, शक्ति, प्रकाश का साधन हैं, वहीं सूर्य रश्मियाँ ज्वर, अतिसार, उदरशूल, कामला, फोड़ा फुंसी आदि रोगों, रोगकृमियों को विनष्ट करती हैं।

---

१. *सूर्यः सर्तेर्वा, सुवतेर्वा, स्वीर्य्यतेर्वा* । निरु. २/१२/१५॥

चिकित्सा पद्धतियों की अभिन्न अङ्ग प्राकृतिक चिकित्सा की एक अवयव सूर्यकिरण चिकित्सा भी एक अङ्ग है। सूर्य रोगों को दूर करता है, एतत् प्रतिपादक वेद में अनेकों मन्त्र हैं। उदाहरणहृक्-

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्॥ अथर्व.६/५१/१॥

अर्थात् **सूर्यः**=सबका प्रेरक सूर्य, **रक्षांसि**[1] **निजूर्वन्**=सभी रोग, रोग कीटाणु, कृमियों को नितान्त रूप से हिंसित करता हुआ, **पुरः**=पूर्वदिशा में, **दिवःउत् एति**=द्युलोक से उदित होता है।

मन्त्र से स्पष्ट है कि उगता हुआ सूर्य रोग, रोगकृमियों का संहार करता है। शरीर में शूल, वात, पित्त, कफ, वायु का असामञ्जस्य विजातीय, विषाक्त द्रव्यों की वृद्धि आदि कष्टकारक व्याधियों का शमन करता है।

सूर्य की लाल, नारङ्गी, पीली, हरी, नीली अथवा गहरी आसमानी, जामुनी एवं बैंगनी सप्त रश्मियों से जल तैयार किया जाता है। जिस सप्तरश्मि जल अथवा रवि रश्मि जल के नाम से चिकित्सक रोगों की चिकित्सा करते हैं। सूर्य रश्मि चिकित्सा में ७ रंगो वाले शीशे के बॉक्स में सूर्य की रश्मियों से स्नान आदि की विधियाँ भी अपनायी जाती है।

सूर्य की इन विभिन्न चिकित्साओं से स्नायु संस्थान, मस्तिष्क, हृदय, यकृत्, प्लीहा आदि अवयवों के दोष दूर किये जाते हैं। कब्ज[2], खांसी[3], खुजली[4], कृमिरोग[5], मन्दाग्नि[6], निद्राक्षय[7], स्वप्नदोष[8], जुकाम[9] आदि विभिन्न रोगों की चिकित्सा की जाती है। इसी प्रकार सूर्य किरण में तैयार किये गये तैल से भी चोट, दर्द आदि की चिकित्सा की जाती है।

---

१. रक्षांसि, रक्षस शब्द का अर्थ व निष्पत्तियाँ पृष्ठ ७ में द्रष्टव्य है।
२. सफेद शीशी पर नीले तथा पीले साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
३. सफेद शीशी पर आसमानी तथा पीले साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
४. सफेद शीशी पर पीले तथा हरे साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
५. सफेद शीशी पर आसमानी तथा हरे साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
६. सफेद शीशी पर नीले तथा आसमानी साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
७. सफेद शीशी पर नीले तथा नारङ्गी साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
८. सफेद शीशी पर नीले साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।
९. सफेद शीशी पर नीले साल्फिन पेपर लगाकर तैयार किया गया जल।

प्रकृत यो **अद्य**., अथर्व.१३/१/५८ मन्त्र में मानसिक और हार्दिक उपद्रवों की सूर्य द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का प्रतिपादन है। **दुष्वप्न्यम्** मानसिक उपद्रव है। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् हे **देव सूर्य**=दिव्य प्रकाशमय ईश्वर ! प्रकाशमय साधन सूर्य ! **अद्य**=आज, **यः**=जो कारण, बाधा, **त्वां च मां च**=तुम्हारे और मेरे, **अन्तरा अयति**=बीच में व्यवधान डालता है, बाधा बनता है, **तस्मिन्**=उस बाधा में विद्यमान, **दुष्वप्न्यम्**=दुर्विचार, अशुभ स्वप्न तथा, **शमलम्**=शान्ति भञ्जक (**शं शान्तिः. अलं समाप्तिः**) **च**=और, **दुरितानि**=दुर्व्यवहार, दुष्कर्म आदि हैं उनको हम, **मृज्महे**=धोते हैं, दूर करते हैं।

मन्त्र का संदेश है जो **सूर्य**=ईश्वर की उपासना तथा **सूर्य**=सूर्य किरण आदि पदार्थों के सेवन में बाधा डालने वाले दुःस्वप्न, दुर्विचार, दुष्कर्म आदि हैं, उनको ईश्वरोपासना तथा सूर्य किरण आदि के सेवन से विनष्ट करना चाहिये। **सूर्य**=प्रेरक परमात्मा की उपासना हार्दिक, मानसिक दुःस्वप्न, दुष्कर्म के सन्तापों के मूल को समाप्त करती है। **सूर्य**=प्रभातवेला में उदित सूर्य काल में नींद छोड़कर उठ जाने पर रात्रि भर मानसिक सन्ताप देने वाले दुःस्वप्न दूर हो जाते हैं। ईश्वर व सूर्य रश्मियाँ दुःस्वप्न को विनष्ट करने वाली है।

सूर्य दुःस्वप्न कैसे दूर करेगा ? उपेन्द्र राव का यह संशय करना ही निग्रह स्थान का संशय है।

यम (स्वप्न), की समीक्षा

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ अथर्व.१६/५/१ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ अथर्व.१६/५/२ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ अथर्व.१६/५/३ ॥

विद्म ते., अथर्व. १६/५/१, **अन्तकोऽसि**., अथर्व.१६/५/२, **तं त्वा**., अथर्व.१६/५/३ अथर्ववेद के इन मन्त्रों में **स्वप्न** व **दुष्वप्न्यात्** शब्द आये हैं, जिनको देखते ही उपेन्द्र राव ने अपना शोध उपस्थित कर दिया, कि ये मन्त्र स्वप्न नाशन के लिए पुरश्चरण मन्त्र हैं।

उपेन्द्र का पुरश्चरण से क्या तात्पर्य है ? यह तो उनका मस्तिष्क जाने। **पुरश्चरण**[१] का अर्थ तो 'पहले पहल किया जाने वाला, होने वाला, कर्म, क्रिया व पदार्थों के गुण' इतना ही है।

विद्म ते., अथर्व.१६/५/१ आदि अथर्व वेद के मन्त्रों का देवता **यमः** है। **यमः** शब्द की निष्पत्ति है-

यमो यच्छतीति सतः। निरु.१०/२/२० ॥

अर्थात् जो वश में करता है, निग्रह करता है, प्राणों का संयमन करता है, वह यम कहलाता है।

यच्छति प्रयच्छति नि यच्छति वा यमः।

अर्थात् जो देता है, निग्रह करता है वह यम कहाता है।

तात्पर्य हुआ वशीकरण, नियमन, निग्रहण, प्रदान आदि करने वाले जो-जो पदार्थ होते हैं, वे-वे यम कहे जाते हैं तथा वशीकरण आदि का जो भाव है, वह यम कहलाता है। कार्यों का संयमन रोका जाने से **स्वप्न**=सोना क्रिया भी यम कही जाती है।

प्राण, जीवन प्रदान एवं वशीकरण करने से ईश्वर यम है। इन्द्रिय निग्रहण के कारण जीव यम है, रश्मियों के नियच्छन से, संयमन से सूर्य यम है। **संगच्छते रश्मिभिरिति अस्तमयावस्थ आदित्य उच्यते**, निघ.निर्व. देवरा.५/६, १७, अर्थात् अस्तंगत सूर्य यम कहलाता है।

इस प्रकार ईश्वर, सूर्य, जीव, प्राण, दिन आदि जड़ चेतन पदार्थ यम संज्ञक होते हैं।

विद्म ते., अथर्व.१६/५/१ मन्त्र का अर्थ है-हे **स्वप्न**=सोने की क्रिया। (**यत् सुप्यते सः स्वप्नः**), **ते जनित्रं विद्म**=तुम्हारे निद्रा स्वरूप के उत्पत्ति को हम जानते हैं, तू, **ग्राह्याः पुत्रःअसि**=मन कि निग्रह वृत्ति, भावना का परिणाम है, **यमस्य**=संयमित जीवन का, **करणः**=कर्म है, परिणाम है।

मन्त्र में आया **स्वप्न** शब्द निद्रा, सोने की क्रिया, गाढ निद्रा का

---

१. पुरश्चरण शब्द के अर्थ, निवेचन एवं अभिधेय पृष्ठ १२९ में द्रष्टव्य हैं।

वाचक है, जिसे सात्त्विक सोना कह सकते हैं। ग्राही शब्द **गृह्णातीति ग्राही**= ग्रहण करने वाली जो मन की रजस्, तमस् विषय निग्रहण की वृत्ति है, उसका वाचक है। मन्त्र का भाव है **स्वप्न**=गाढ निद्रा मन के विषय निग्रह तथा बाह्य संयमन से आती है। निग्रह वृत्ति की ही गाढ़ निद्रा पुत्र रूप परिणाम होती है।

अन्तकोऽसि., अथर्व.१६/५/२ मन्त्र का अर्थ है-**स्वप्न**=गाढ़ निद्रा दुष्वप्न का **अन्तकः असि**=नाशक होती है, **मृत्युः असि**=दुःष्वप्न्य की मृत्यु स्वरूप होती है।

तं त्वा., अथर्व.१६/५/३ मन्त्र का अर्थ है-हे **स्वप्न**=गाढ निद्रे! **तं त्वा**=उस तुझ, दुष्वप्न्य **अन्तक**=नाशक, हिंसक को तथा उसी दुष्वप्न्य के अन्तक और मृत्यु रूप में, **सं विद्म**=भली प्रकार जानते हैं, **सः स्वप्नः**=वह तू गाढ़ निद्रा **नः**=हमारी **दुष्वप्न्यात्**=दुःस्वप्न, दुष्परिणाम, दुष्कर्म रूपी रोगों, कष्टों से, **पाहि**=रक्षा करो

मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा दुःस्वप्न की विनाशक होती है। गाढ़ निद्रा न होने पर सोने में दुःस्वप्न, बुरे विचार आदि आते हैं।

सुस्वप्न के कारण

अथर्व वेद के इन मन्त्रों में दुःस्वप्न नाशन का पुरश्चरण नहीं है अर्थात् उपेन्द्र का **जादू टोना नहीं है**। इन मन्त्रों में तो **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा आने के कारणों को निर्दिष्ट किया गया है। वे कारण हैं-**ग्राही**=मन का विषय निग्रहण तथा **यम**=इन्द्रिय संयमन। **मनः शरीरश्रम सम्भवा**, चरक.सूत्र.२१/५८, अर्थात् मन और शरीर जब थक जाते हैं, तब जो स्वप्न[१]=पूर्ण निद्रा आती है, वह गाढ़ निद्रा कही जाती है। यह कहकर चरकाचार्य ने वेदोक्त गाढ़निद्रा का स्पष्टीकरण किया है

अथर्व वेद के इस १६ वें काण्ड के ५ वें सूक्त के आगे के ४ से ८ मन्त्र पर्यन्त क्रमशः मन्त्रों में **स्वप्न**=अच्छी नींद, सुस्वप्न सोना क्रिया कैसे होती

---

१. *स्वप्न=निद्रा के भेदों तथा दुःस्वप्न निद्रा के कारण आदि का विषय विस्तार पृष्ठ १८६-१८८ एवं १९३, १९४ में द्रष्टव्य है।*

है ? और उसके **ग्राह्याः** के अतिरिक्त कौन-कौन से कारण हैं ? उन अन्य सभी कारणों का भी वर्णन किया गया है। वे कारण हैं-

निर्ऋत्याः= निर्ऋतिः, निर्गता, ऋतिः गतिः (ऋ गतिप्रापणयोः) यस्याः सा निर्ऋतिः=गति का निराकरण, मन तथा इन्द्रियों की चंचलता का अभाव

अभूत्याः=अभूतिः, न भूतिः धनम् ऐश्वर्यं वा इति अभूतिः=धन का अपरिग्रह

निर्भूत्याः= निर्भूतिः, निर्गता भूतिः इति निर्भूतिः=सम्पत्ति का परित्याग, निराकरण

पराभूत्याः=पराभूतिः,पराभवनं पराभूतिः=विषय पराभव,इन्द्रिय निग्रह

देवजामीनाम्= देवजामयः, देवानां जामयः देवजामयः, जामिरिति अतिरेक नाम, निरु. ४/३/२०, ज्ञान, प्रकाश आदि का **अतिरेक**=अधिकता अर्थात् सात्त्विक चित्तवृत्तियों की अधिकता

अथर्ववेद में कहे हुए **स्वप्न**=सुस्वप्न, अच्छी प्रगाढ़ निद्रा के इन कारणों से स्पष्ट है कि अच्छी नींद के लिए मनोनिग्रह, इन्द्रियनिग्रह आदि आवश्यक प्रवृत्तियाँ हैं। जब ये प्रवृत्तियाँ होती हैं, तब निद्रानाश, अर्धनिद्रा आदि **स्वप्न**=सोने की क्रिया में व्याघात नहीं पहुँचाते। **दुष्वप्न्यम्=** बुरे, भयानक स्वप्न, दुर्विचार भी नहीं आते। परिणामतः **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा, दुःस्वप्न की **अन्तक**=नाशक **मृत्यु**=हिंसक, विघातक कही जाती है।

उपेन्द्र का अथर्वाचार्य स्वप्न को अन्तक एवं मृत्यु भी कहते हैं। क्या बुद्धि हैं ? यह वाक्य उनकी ही बुद्धि के खोखलेपन को प्रकट कर रहा हैं।

अग्नि (देवाः), की समीक्षा

जाग्रदुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम्। अथर्व. १६/६/९ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान्॥ अथर्व.१६/६/१०॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥अथर्व.१६/६/११

जाग्रद्., अथर्व. १६/६/९, **अनागमिष्यतः.** अथर्व. १६/६/१०, **तदमुष्मा.**, अथर्व. १६/६/११ अथर्ववेद के इन मन्त्रों का देवता **अग्निः** है। **अग्नि**[1] शब्द, ईश्वर, विद्युत्, सूर्य, **अग्नि**=आग, राजा औषधि आदि

---

१. *अग्नि शब्द के अर्थ व व्युत्पत्तियाँ 'अग्नि, की समीक्षा' प्रसङ्ग के पृष्ठ २०८, २०९ में द्रष्टव्य हैं।*

गतिशील दाहक, गतिदायक पदार्थों का वाचक है।

जाग्रद्...., अथर्व. १६/६/९ मन्त्र का अर्थ है-हे **अग्ने**=अग्रणी परमेश्वर अथवा कलिहारी औषधि[1]। **जाग्रद्**=जागते समय, **दुष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न दुर्विचार हैं, **स्वप्ने**=सोते समय, **दुष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न, दुर्विचार हैं, उन दुःस्वप्नों को, **परा वहन्तु**[2]=दूर करो।

मन्त्र में जाग्रत् अवस्था तथा **स्वप्न**=शयनावस्था में आने वाले दोनों प्रकार के दुःस्वप्नों को, **अग्नि**=ईश्वर तथा औषधि से प्रार्थना की गई है। यह प्रार्थना जादू टोना नहीं है। स्वप्न मानसिक सन्ताप से होते हैं। मानसिक सन्ताप को **अग्नि**=ईश्वर व औषधियाँ दूर करती हैं।

जाग्रत्[3] एवं स्वप्नावस्था[4] के दुःस्वप्नों का चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में विंस्तार से वर्णन किया गया है। वह स्वप्न विषय तत्-तत् ग्रन्थों में ही द्रष्टव्य है।

आत्मसङ्कल्प (शाप), की समीक्षा

इदमह मामुष्या यणे ३ मुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे। अथर्व.१६/७/८॥

इदमहमामुष्या., अथर्व.१६/७/८ अथर्व वेद के इस मन्त्र में **दुष्वप्न्य**=दुर्विचार दूर करने का संयमी, जितेन्द्रिय राजा, शासक एवं ईश्वर की ओर से प्रतिज्ञा रूप कथन है। जिस प्रतिज्ञा में उपेन्द्र राव कोई दोष तो नहीं ढूँढ पाये, तब कुछ न बना, तो उस प्रतिज्ञा को ही दुष्ट बुद्धि और शाप ही कह डाला-यह कैसी दुष्ट बुद्धि एवं शाप है ?

मन्त्र का देवता **अहम्** है। **अहम्** शब्द आध्यात्मिक पदार्थ परमेश्वर व जीव का वाचक है[5]। मन्त्र का अर्थ है-

अर्थात् **अहम्**=मैं ईश्वर, राजा व जितेन्द्रिय पुरुष, **आमुष्यायणे**=

---

१. कलिहारी=अग्निशिखा, अमूला औषधि पृष्ठ १३७ में द्रष्टव्य है।
२. परा वहन्तु इति अध्याहारः, अथर्व. १६/६/७, मन्त्रात्।
३. दिवास्वप्नं मतिह्रस्वमतिदीर्घं च बुद्धिमान्। चरक. इन्द्रिय. ५/४४
४. स्रोतसां दारुणान् स्वप्नान् काले पश्यति दारुणे॥
नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफला न फलांस्तथा॥ चरक. इन्द्रिय. ५/४१, ४२
५. अहम् शब्द की इस अर्थ वाचकता का कारण 'आत्मसङ्कल्प, की समीक्षा' पृष्ठ २०९ में द्रष्टव्य है।

अमुक गोत्र व अमुक पिता के तथा, **अमुष्याः**=उस माता के, **पुत्रे**=पुत्र में, **इदं दुष्वप्न्यम्** यह जो स्वप्न है, उसे, **मृजे**=दूर करता हूँ, परिमार्जित करता हूँ।

मन्त्र में **दुष्वप्न्य**=बुरे विचारों को दूर करने की प्रार्थना **आमुष्यायणे** और **अमुष्याः** शब्दों के द्वारा की गई है। ये दोनों शब्द समुदाय के संग्राहक हैं। राज्य, परिवार आदि के जिस किसी के भी पुत्रादि में होने वाले स्वप्नों के निवारण करने की प्रार्थना है। राज्य पक्ष में जाग्रत् स्वप्नों की संगति होगी, ईश्वर पक्ष में जाग्रत् तथा **स्वप्न**=शयनावस्था दोनों की संगति होगी। **दुष्वप्न्य**=दुर्विचारों को दूर करना सबका कर्तव्य है, यह मन्त्र का सार है। यह जादू टोना नहीं है। यहाँ मन्त्रों में उपेन्द्र राव को जादू टोना, शाप, दुष्ट बुद्धि किस शब्द में दीख रहे हैं ? यह तो उपेन्द्र राव ही जानें !

आञ्जन, की समीक्षा

यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद गोषु यच्च नो गृहे।
अनामगस्तच्च दुहोर्दे प्रियः प्रति मुञ्चताम्॥ अथर्व.१९/४५/२॥

यदस्मासु., अथर्व.१९/४५/२ मन्त्र का देवता **आञ्जन** है। **आञ्जन**[१] शब्द ईश्वर, जीव, प्रकृति एवं समुद्रीय व पर्वतीय स्थानों में उत्पन्न अञ्जन औषधि का वाचक है।

आञ्जन=अञ्जन पदार्थ के विषय में इससे पूर्व भी तीन प्रसङ्गों में उपेन्द्र राव आरोपों की झड़ी लगा चुके हैं। यहाँ पुनः चतुर्थ किश्त में आञ्जन पदार्थ पर जादू टोना का आरोप मढ़ दिया। आञ्जन विषयक उपेन्द्र राव का यह आरोप पूर्व की भाँति निः सार व काल्पनिक है।

यदस्मासु.,अथर्व.१९/४५/२ मन्त्र का अर्थ है,**यत्**=जो, **अस्मासु**=हम प्रजानन समुदाय में, **दुर्हार्दः**=दुष्ट हृदय वाले पुरुष का, **दुष्वप्न्यम्**=खराब स्वप्न, सोना, दुर्विचार है, **यत् गोषु**=जो हमारी गौओं के विषय में दुष्ट स्वप्न गौ मारने, काटने, छीनने आदि का दुर्विचार है, **च**=और, **यत् नः गृहेषु**=जो

१. *आञ्जन शब्द के अर्थव व्युत्पत्ति 'आञ्जनों की झूठी बड़ाई, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ ५७-६० एवं १८५, २०५ में द्रष्टव्य है।*

हमारे गृह, समाज गृह, राष्ट्र गृह में, **दुष्वप्न्यम्**=गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र को छीनने, हड़पने, पराभूत करने का कुविचार है, **तम्**=उस, दुष्वप्न्य को, कुविचार को आञ्जन औषधि, ईश्वर आदि **प्रियः**=अनुकूल होकर, **प्रति मुञ्चताम्**=दूर करे, ले जाये, स्वयं धारण करें। **दुष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न, दुर्विचार आदि, **अनामगः**=बिना नाम के रहे अथवा नीरोग करने वाले (**अम रोगे**) बने।

मन्त्र का तात्पर्य है कि गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र आदि में जहाँ कहीं भी शारीरिक दुर्विचार हैं, मानसिक दुर्विचार हैं अथवा राष्ट्र घातक दुर्विचार है, उन सब को **आञ्जन**=गतिशील ईश्वर, राजा, औषधि आदि पदार्थ दूर करें। इन पदार्थों में उन दुष्वप्न्यों को दूर करने का सामर्थ्य है। **प्रति मुञ्चताम्** का प्रकरणा नुसार यही अर्थ है कि दुष्वप्न्य स्वयं के प्रति ही रहें, अन्य को बाधा न पहुँचाये, सताये नहीं। दुष्वप्न्य किसी को कष्ट न दे, स्वयं के घेरे में रहे, **यह विचार जादू टोना** कथमपि **नहीं** हो सकता।

आत्मसङ्कल्प, की समीक्षा

समस्मासु यद् दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाभ ॥ अथर्व.१९/५७/२ ॥

अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वय यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥

अथर्व.१९/५७/४ ॥

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्।

नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि।

दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ अथर्व.१९/५७/५ ॥

यदस्मासु., अथर्व.१९/५७/२, **अनास्माकम्**., अथर्व.१९/५७/४, **अनास्माकः**., अथर्व.१९/५७/५ अथर्व वेद के इन मन्त्रों में उपेन्द्र राव का आरोप है कि अथर्व वेद के ये मन्त्र जादू टोना से भरे हैं। इन मन्त्रों का अथर्वा ऋषि तान्त्रिक ओझा है, अथर्वाचार्य दुष्वप्न्य से सम्बन्धित सब बातों को शत्रुओं में स्थापित करना चाहता है।

अथर्ववेद अथवा अथर्वा ऋषि के सम्बन्ध में वी. उपेन्द्र राव ने एतादृशी घिसी पिटी वाक्यावलियाँ ही अपनी पुस्तक के सम्पूर्ण आरोपों में उगली हुई हैं, जो बिना सिर पैर की हैं। वे उन्मत्तता की ही द्योतक हो सकती हैं।

अथर्व वेद के इन मन्त्रों का देवता **यमः** है। **यम** नियन्त्रक ईश्वर, जितेन्द्रिय पुरुष व **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा का सोना आदि का वाचक है[1]। यहाँ प्रसङ्गतः यम जितेन्द्रिय पुरुष अर्थ की संगति लगेगी।

इस शीर्षक में उपेन्द्र राव ने मन्त्रों के इस यम देवता को आत्मसङ्कल्प शब्द से निर्दिष्ट किया है। आत्मसङ्कल्प के विषय को इसी '**दुःस्वप्न का दुष्टविज्ञान**' के सुदीर्घ प्रकरण में दो बार और आरोप युक्त कर चुके हैं, अब पुनः आत्मसङ्कल्प विषय को घेर लिया। पर उन्हें मुँह की ही खानी पडेगी। ये सब जादू टोना के ख्वाब।

यदस्मासु., अथर्व.१९/५७/२ मन्त्र का अर्थ है-जैसे युद्ध में राजा इकट्ठे हो जाते हैं, शनैः-२ऋण इकट्ठे हो जाते हैं, कुष्ठ आदि कुत्सित त्वक् रोग इकट्ठे हो जाते हैं, चन्द्र कलायें इकट्ठी हो जाती हैं, उसी प्रकार **यत्**=जो, **अस्मासु**=हम सब में, **दुःष्वप्न्यम् अगुः**=दुःस्वप्न, दुःस्वप्नों के संस्कार आये हैं, इकट्ठे हो गये हैं, उन सब, **दुष्वप्न्यम्**=दुष्ट विचारों, दुष्परिणामों, दुष्ट संस्कारों को, **द्विषते**=अप्रीति किये जाते हुए सुख के विरोधी पक्ष में, द्वेष किये जाते हुए पक्ष में, **निः सुवाम**=प्रेरित करते हैं, बाहर निकालते हैं।

मन्त्र का भाव है वात, पित्त आदि की विकृति से, निद्रा भंग से जो **दुष्वप्न्य**=अनिच्छित विचार, भाव, संस्कार सोने क्रिया में उद्बुद्ध होते हैं, उन्हें **आत्मसङ्कल्प**=दृढ संकल्प से सुख के विरोधी मानकर दूर हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। आत्मसङ्कल्प, मनोबल, दृढता आदि के द्वारा यदि दुःस्वप्नों का नियमन नहीं किया जाता, तो धीरे-धीरे अनेकों दुर्विचार इकट्ठे

१. *यम शब्द का अर्थ व निवेचन 'यम, की समीक्षा' प्रकरण के पृष्ठ २१६, २१७ में द्रष्टव्य है।*

होकर दुःख सागर में डुबा देते हैं।

दुःष्वप्नों का दुष्परिणाम

स्वप्नों का दुःख सागर किदृक् होता है ? इसको आयुर्वेदिक ग्रन्थों में मृत्यु रूप बताया है। चरक ऋषि का वचन है-

इत्येते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पञ्च तम्।
अरोगः संशयं गत्वा कश्चिदेव प्रमु च्यते॥ चरक.इन्द्रिय.५/४०॥

अर्थात् ये **दारुण**=ऊपर कहे गये भयंकर स्वप्न हैं, इनको देखने वाला रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और यदि **अरोगः**=स्वस्थ व्यक्ति इन दारुण स्वप्नों को देखता है, तो वह भी संशय को प्राप्त हो जाता है। कोई विरला ही इनके चंगुल से बच पाता है।

अनास्माकम्., अथर्व.१९/५७/४ मन्त्र का अर्थ है-हे **स्वप्न**[1]=गाढ़ निद्रा का शयन, सोना ! जैसे अश्व अपनी पीठ पर बँधी जीन=काठी को हिला देता है, झकझोरता है, वैसे, **यत् अनास्माकम्**=जो हमारा नहीं है, उस, **दुष्वप्न्यम्**=दुःस्वप्न को झक झोर दे, हिला दे और जो, **देव पीयुः**= दिव्यता,इन्द्रियों का घातक (**पीयतिर्हिंसाकर्मा**,निरु.४/४/५८),**पियारुम्**= शारीरिक शक्ति घातक, दुःखदायी, **यत्**=जो **दुष्वप्न्यम्**= दुर्विचार, दुःसंस्कार, **अस्मासु**=हम में विद्यमान है, उसे, **वप**[2]=नष्ट कर, **च यत्**=और जो, **गोषु**=इन्द्रियों में, पृथिवी में, गौ पशुओं में, **यत्**=जो, **नः गृहे**=हमारे गृहों में, **दुष्वप्न्यम्**=दुर्विचार हैं, उन्हें छिन्न भिन्न कर।

मन्त्र का भाव है **स्वप्न**=प्रगाढ़ निद्रा, **दुष्वप्न**=अर्ध निद्रा, विकृत निद्रा, दुर्विचार वाली निद्रा की प्रति घातक है, प्रतिबन्धिनी है। **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा हमारी इन्द्रियों, देवत्व के भावों एवं **गृह**=शरीर, पारिवारिक जनों के

---

१. *स्वप्न शब्द मन्त्र के पूर्वचरण में आया है। स्वप्न=सोना क्रिया २ प्रकार की होती है, भद्र और अभद्र, गाढ़ निद्रा और अर्ध निद्रा।*

२. *वपिः प्रकीर्णने दृष्टः, छेदने चापि वर्तते, केशश्मश्रू वपतीति। पात. महाभा. १/३/१*

घातक **दुष्वप्न्य**=दुःख, दुर्विचार को दूर करती है। **गौ**=इन्द्रिय विकृति सम्बन्धी, पृथिवी के छीनने आदि की विकृति सम्बन्धी, गौ पशु के मारने, काटने, रोग आदि सम्बन्धी दुर्विचारों को दूर करती है। **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा कल्याणकारी, सुखदायक सद्विचारों से युक्त होने का सामर्थ्य प्रदान करती है। इस **स्वप्न**=सुखदायी शयन प्राप्ति का संकल्प पूर्वक प्रयत्न करना चाहिये।

अनास्माकस्तद्., अथर्व.१९/५७/५ मन्त्र का अर्थ है-अर्थात् मुझ, **यम**=आत्मनियन्त्रक का, **स्वप्न**=गाढ़ निद्रा तू (**मन्त्र का देवता स्वप्न** है), जो दुष्वप्न, **अनास्माकः**=हमारा नहीं है, अहितकर है, **तत् देवपीयुः**= उस दिव्यता नाशक, **पियारुः**=दुःखकारक दुःस्वप्न को, **प्रति मुञ्चताम्**= हमसे छुड़ा दे, हम सब से दूर कर दे, **इव**=जैसे, **निष्कम्**=स्वर्णमय हार को स्नान करने वाला छोड़ता है, अलग कर देता है, वैसे ही दुःस्वप्न को हमसे पृथक् कर दे। **ततः परि**=तत्पश्चात्, **अस्माकम्**=हमारे से, **नव अरत्नीन्**=नौ हाथ दूर दुःस्वप्न को, **अपमयाः**=दूर ले जा, **सर्वं दुष्वप्न्यम्**=समस्त दुःस्वप्नों, दुष्परिणामों, संस्कारों को, **द्विषते** = द्वेष्य=विरोधी पक्ष में, **निर्दयामसि**=निर्दयपूर्वक बाहर फेंक, भेज।

मन्त्र का निर्देश है **दुष्वप्न्य**=दिव्यता नाशक, दुःखदायक होता है। उस दुःस्वप्न को आत्म दृढता से दूर कर, अपने से नितान्त दूर करना चाहिये। मन्त्र में आया **नव अरत्नीन्** शब्द नौ मुट्ठी परिणाम वाले शरीर का वाचक है, जो नितान्त दूरीकरण को को ज्ञापित कर रहा है। **दुष्वप्न्य**=दुष्ट विचारों, घातक संस्कारों को दूर करना सुरक्षा का कार्य है। यह कार्य तान्त्रिक ओझाओं का जादू टोना का कार्य नहीं है।

प्रति मुञ्चामि एवं द्विषते आदि का तात्पर्य

रोग, हिंसा, दुर्विचार आदि के भावों, कष्टों, संस्कारों को दूर करने के लिए उनसे सुरक्षित होने के लिए वेदमन्त्रों में प्रायः **प्र छिन्धि, प्रति मुञ्चामि**

द्विषते. निरसुवाम, निर्दयामसि–प्रकर्ष रूप से मारो, उसकी ओर मैं छोड़ता हूँ, विरोधी पक्ष में प्रेरित करता हूँ, निर्दय पूर्वक भेजता हूँ आदि जो निर्देश मिलते हैं। एतादृश निर्देशों का वेद भाष्यकार सायणाचार्य, पं. शंकर पाण्डुरंग, दारिल आदि विद्वानों ने तथा ब्लूम फील्ड, कीथ, ह्विटनी आदि पाश्चात्य विद्वानों ने प्रति प्रसङ्ग में इस प्रकार का अर्थ किया है, जैसे कोई प्रतिपक्षी नयननक्ष आदि की आकृति वाला जीवन्त कोई व्यक्ति खड़ा हो। जिस पर शस्त्र, अपशब्द, कुविचार आदि दोनों हाथों से टोकरे भर-भर डालता जा रहा हो!

श्री उपेन्द्र राव ऐसे असहाय प्राणी हैं, जिन के पैरों में खड़े होने का स्वतः का सामर्थ्य ही नहीं है। बस, नकलची बन्दर की भाँति सायण आदि वेद भाष्यकारों ने, पाश्चात्य विद्वानों ने यदि जादू टोना कहा है, तो उपेन्द्र राव के लिए भी वहाँ जादू टोना ही है। उनके लिये **द्विषते** आदि सदृश कथन शत्रु में वैर स्थापित करने के ही प्रतिपादक हैं!

अरे वेदज्ञों! **द्विषते, निर्दयामसि** आदि वचनों का इतना ही तात्पर्य है कि सत्य असत्य, शुभ अशुभ के इन २ पक्षों में से शुभ पक्ष को पकड़े, जो सुखदायी है[१]। सुखदायी पक्ष ग्रहण करके अशुभ पक्ष का परित्याग करें। दुष्वप्न्य, दुर्विचार आदि को अपनी आत्मा में स्थान न दें। उपेन्द्र राव द्वारा '**दुःस्वप्न का दुष्टविज्ञान**' शीर्षक में दिये गये समस्त आरोप दुर्बुद्धि पूर्ण व मानसिक दोष ग्रस्त हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है **अथर्व वेद जादू टोना की दुष्टविधियों का प्रतिपादक या समर्थक नहीं है।**

---

१. *द्विषते सदृश निर्देशों का विशिष्ट तात्पर्य 'स्वप्न, की समीक्षा' प्रसंग के पृष्ठ २०८ में द्रष्टव्य है।*



●●●●●●





डा. सोमदेव शास्त्री

द्वारा

लिखित एवं सम्पादित वैदिक साहित्य

१ वैदिक सन्देश
२ ऋग्वेदादि सन्देश
३ ऋग्वेद सन्देश
४ यजुर्वेद सन्देश
५ सामवेद सन्देश
६ अथर्ववेद सन्देश
७ उपनिषद् सन्देश
८ रामायण सन्देश
९ महाभारत सन्देश
१० गीता सन्देश
११ स्मृति सन्देश
१२ संस्कार सन्देश
१३ सत्यार्थ सन्देश
१४ दर्शनों का तत्वज्ञान
१५ सरल संस्कृत शिक्षक
१६ स्वर सिद्धान्त
१७ पूना प्रवचन सार
१८ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
१९ पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा
२० याज्ञिक प्रक्रिया और सामाजिक संगठन
२१ श्री राम गाथा
२२ सरल संस्कृत पाठमाला
२३ न्याय-वैशेषिक सन्देश
२४ सांख्य योग सन्देश
२५ वेदान्त-मीमांसा सन्देश
२६ आर्य भजनोपदेशक व्यक्तित्व एवं कृतित्व
२७ नारी महिमा
२८ भागवत दर्पण

